घनआनंद और आनंदघन

(ग्रंथावली)

संपादक

विश्वनाथप्रसाद मिश्र,

प्राध्यापक, हिंदी-विभाग,

काशी हिंदू-विश्वविद्यालय।

प्रकाशक

हिंदी की वर्तमान स्वच्छंद काव्यधारा के

'घनआनंद' 'सुजान'-प्रेमी

स्वर्गीय श्रीजयशंकर 'प्रसाद'

को

श्रद्धापूर्वक समर्पित

वाङ्मुख

आनंद, आनदघन और घनआनंद ये तीन नाम बहुत दिनों तक एक ही कवि के समझे जाते थे। हिंदी में संगीत के सबसे बड़े संग्रह-ग्रंथ 'राग-कल्पद्रुम' में 'आनंद' और 'आनंदघन' का अभेद स्वीकृत है। डाक्टर ग्रियर्सन ने 'दि माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव् हिंदुस्तान' (पृष्ठ ६२, संख्या ३४७) में अनुमान लगाया है कि आनंद और आनदघन संभवतः एक ही हैं। पर नागरीप्रचारिणी सभा, काशी की खोज के वार्षिक विवरणों में आनंद और आनंदघन का पार्थक्य माना गया है। बहुत दिनों तक तो इसका पता ही न था कि 'आनंद' कौन हैं, कहाँ के रहनेवाले हैं और इनका समय क्या है। इन्होंने कामविज्ञान पर 'कोकमंजरी' लिखी है, जो इतनी फैली कि उसके अनेक रूप हो गए। इधर की 'खोज' मे उसकी ऐसी प्रतिलिपियाँ मिली हैं जिनमें इनके वंश, स्थान और समय का भी स्पष्ट उल्लेख है—

कायथ-कुल आनंद कबि बासी कोट हिसार।
कोककला इहि रुचि करन जिन यह कियो बिचार॥
रितु बसंत संबत सरस सोरह सै अरु साठ।
कोकमंजरी यह करी धर्म कर्म करि पाठ॥

—(खोज, १९२६–१० एफ्)।

अथवा

रितु बसंत संबत्त सत सोरह आगत साठ।
कोकमंजरी यह करी करम धरम कै पाठ॥

—(खोज, १९२३–१० बी)।

इस प्रकार 'आनंद' विक्रम की सत्रहवीं शती के तृतीय चरण में वर्तमान थे। इधर 'साहित्य-भूषण' के निर्माता श्रीमहादेवप्रसाद ने, जिनके आधार पर डाक्टर ग्रियर्सन ने आनंदघन का जीवनवृत्त दिया है, आनंदघन (या घन-

आनंद) को कायस्थ-कुल का तो अवश्य बतलाया है पर वे इन्हें दिल्ली के मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रँगीले का मुंशी भी कहते हैं। साथ ही यह भी सूचित करते हैं कि अंत में ये वृंदावन चले गए थे और नादिरशाह ने जब मथुरा पर अधिकार किया तो मारे गए (दि माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव् हिंदुस्तान, पृष्ठ ९२, संख्या ३४७)। मुहम्मदशाह का राज्यकाल सं० १७७६ से १८०५ तक था और भारत पर नादिरशाह का आक्रमण सं० १७९६ में हुआ। इस प्रकार इनका काव्य-काल विक्रम की अट्ठारहवीं शती का चतुर्थ चरण ठहरता है। इससे दोनो के समयों में सौ-सवा सौ वर्षों का अंतर है। शिवसिंह सेंगर ने अपने 'सरोज' में 'आनंदघन कवि दिल्लीवाले' का समय सं० १७१५ दिया है (सप्तम संस्करण, पृष्ठ ३८०)। 'सरोज' का यह समय कवि का काव्य-काल ही है, जन्मकाल नहीं. जैसा हम सिद्ध कर चुके हैं (देखिए 'हिंदुस्तानी', भाग १३, अंक २; अप्रैल, १९४३ में मेरा 'शिवसिंह सरोज के सन्-संवत्' शीर्षक लेख)। इस प्रकार भी दोनो के समय में ४० वर्षों का अंतर पड़ता है। दोनो की रचनाओं में तो जमीन-आसमान का नहीं, आकाश-पाताल का अंतर है। इसलिए 'आनंद' और 'आनदघन' पृथक् पृथक् कवि हैं"।

'आनंदघन' भी क्या एक ही थे? 'मिश्रबंधु-विनोद' में उक्त 'दिल्लीवाले आनंदघन' के अतिरिक्त १४४।१ संख्या पर एक दूसरे 'आनंदघन' का विवरण भी इस प्रकार दिया है–"आनंदघन, ग्रंथ–आनदघन-बहत्तरी-स्तवावली, रचना-काल–१७०५, विवरण–यशोविजय के समसामयिक थे।" किंतु श्रीक्षितीश: मोहनजी सेन ने 'वीणा' (नवंबर, १९३८) में 'जैनमर्मी आनंदघन' शीर्षक विस्तृत लेख लिखकर वृंदावन के 'आनंदघन' और 'जैनमर्मी आनंदघन' के एक होने की सभावना प्रकट की है। 'सरोज' में भी एक कवि 'घनआनद' नाम के और उल्लिखित हैं, जिनका समय सं० १६१७ दिया गया है (पृष्ठ ४११)। इन 'घनआनंद' और 'जैनमर्मी आनंदघन' के अभेद की भी सभावना श्रीज्ञानवती त्रिवेदी लिखित 'घनआनंद' नामक समीक्षा-पुस्तक में की गई है (पृष्ठ ११)। इसलिए विस्तार से विचार करने की अपेक्षा जान पड़ती है। 'सरोज' में 'दिल्लीवाले आनदघन' के दो सवैये उदाहरण-स्वरूप दिए गए

हैं (पृष्ठ ११-१२); एक है 'आपु ही ते' प्रतीकवाला सवैया (देखिए प्रस्तुत ग्रंथ का प्रकीर्णक, छंद ६७, पृष्ठ १६८) और दूसरा यह है—

जैहै सबै सुधि भूलि तुम्हैं फिरि भूलि न मो तन भूलि चितैहैं।
एक को आँक बनावत मेटत पोथिय काँख लिये दिन जैहैं।
साँची हौं भाखति मोहिं कका की सौं प्रीतम की गति तेरिहू ह्वैहै।
मो सों कहा अठिलात अजासुत कैहौं ककाजी सों तोहूँ सिखैहैं॥

यह सवैया न तो 'आनंदघन' या 'घनआनंद' के नाम से अब तक और कहीं मिला है और न इसमें कवि के नाम की छाप ही है। हाँ, गुरुजनों से 'केशव पुत्रवधू' के संबंध में जो कथा सुनी थी वही इस सवैये में वर्णित है। कहते हैं कि जब प्रसिद्ध कवि केशवदासजी ने 'रसिकप्रिया' की रचना की तब उसे पढ़कर उनके आत्मज विषय-वासना में ऐसे लगे कि केशव को 'विज्ञान-गीता' की रचना ('प्रबोधचंद्रोदय' नाटक का भावानुवाद) करनी पड़ी। इसे पढ़कर उन्हें प्रबोधोदय हो गया। वे दर्शन के ग्रंथ काँख में दबाए घूमा करते थे और 'एकमेवाद्वितीयम्' की ही चर्चा में लीन रहते थे। शाक्त होने के कारण घर में बकरा भी पाला गया था। केशव की पुत्रवधू थी कवयित्री। अजासुत ने प्रकृत्या उसे आते जाते देख जब अपनी 'बोली बानी' में कंठ खोला तो उसने ककाजी (केशवदासजी) को सुनाते हुए ऐसी रचना पढ़ी जिसमें कहा गया था कि ऐ बकरे मैं काकाजी से कहकर तुझे भी अध्यात्म-विद्या की शिक्षा दिलाऊँगी, जिससे तुझे भी वैराग्य हो जाय, तेरी भी वही गति हो जो मेरे पतिदेव की हुई। इसे केशवदासजी ने सुन लिया और अपने पुत्र को पुनः गार्हस्थ्य-धर्म में संलग्न कराया।

'मिश्रबंधु-विनोद' में ३३५ सख्या पर 'केशव-पुत्रवधू' का उल्लेख है—"रचना-काल १६६० के पूर्व,विवरण—इनकी कविता 'सारसंग्रह' में है।" 'सार-संग्रह' का विवरण भूमिका में यों दिया है—"संवत् १८०० का प्रवीण कवि द्वारा सगृहीत सारसंग्रह, पडित युगलकिशोर मिश्र के पुस्तकालय में है। इसमें प्रायः १५० कवियों की रचनाएँ पाई जाती हैं।" 'विनोद' में 'केशव-पुत्रवधू' की रचना का कोई उदाहरण नहीं है। अतः यह नहीं कहा जा सकता

कि 'सरोज' की उक्त रचना इन्हीं 'केशव-पुत्रवधू' की है। पर यह 'आनंदघन' या 'घनआनंद' की तो नहीं है। भूल से उनके नाम चढ़ गई है। इसमें कवि की छाप भी तो नहीं है।

अब 'सरोज' (पृष्ठ ८२) में 'घनआनंद' के नाम पर उदाहृत रचना देखिए—

> गाइहौं देवी गनेस महेस दिनेसहि पूजत ही फल पाइहौं।
> पाइहौं पावन तीरथ-नीर सु नेकु जहीं हरि को चित लाइहौं।
> लाइहौं आछे द्विजातिन को अरु गोधन-दान करौं चरचाइहौं।
> चाइ अनेकन सों सजनी घनआनँद मीतहि कंठ लगाइहौं॥

यह सवैया भी अन्यत्र 'आनंदघन' या 'घनआनंद' के नाम से नहीं मिलता। इसमें 'घनआनंद' नाम है अवश्य, पर 'आनदघन' और 'घनआनंद' शब्द देखकर ही किसी छंद को 'आनंदघन' या 'घनआनंद' की रचना मान लेने से बहुत धोखा खाना पड़ता है, यह भी समझ रखिए। ब्रज के भक्त कवियों ने इन नामों का व्यवहार श्रीकृष्ण के लिए बराबर किया है। पर इस सवैये में 'घनआनंद' का अर्थ 'श्रीकृष्ण' है, ऐसा भी नहीं जान पड़ता। यह तो किसी विरहिणी की उक्ति जान पड़ती है। विरहिणी पंचदेवोपासना करने का फल प्रिय का संयोग-सुख-लाभ मानकर उन देवों की वदनादि करने का अभिलाष व्यक्त कर रही है। 'हरि' (विष्णु = श्रीकृष्ण) को चित्त में लाने से तीर्थ का पवित्र जल प्राप्त हो जाने की बात आई है। कहा गया है कि दान करने पर 'मीत' कंठ लगाने को मिलेगा। इससे यह 'मीत' 'हरि' या श्रीकृष्ण नहीं है। यह तो रीतिबद्ध रचना करनेवाले किसी कबिंद की कृति जान पड़ती है, सिंहावलोकन या मुक्तपदग्राह्य का चमत्कार ही इसमें मुख्य है, सो भी चौथे चरण तक पहुँचते पहुँचते बेढंगा हो गया है। 'चाइ' के बदले 'चाइहौं' होना चाहिए था। इसलिए यह रीतिमुक्त प्रसिद्ध कवि 'घनआनंद' की कृति नहीं ठहरती। कहीं 'घनआनंद' विशेषण न हो, कवि की छाप हो ही न। जो कुछ भी हो इस संबंध में सवैया है संदिग्ध ही।

अब जैन 'आनंदघन' और वृंदावनवासी 'आनंदघन' की अभिन्नता का विचार कीजिए। जैन 'आनंदघन' (महात्मा लाभानंदजी) का समय भी सत्रहवीं शती विक्रमी का उत्तरार्ध है। उनकी 'चौबीसी' की कई पंक्तियाँ सर्वश्री समयसुंदर (सं० १६७२), जिनराज सूरि (सं० १६७८), सकलचंद्र (सं० १६४०) और प्रीतिविमल (सं० १६७१) के जिन स्तवनादि ग्रंथों में आए चरणों से मिलती हैं (देखिए श्रीमहावीर जैन विद्यालय के 'रजत-महोत्सव संग्रह' में प्रकाशित 'अध्यात्मी आनंदघन अने श्रीयशोविजय' शीर्षक लेख) इससे 'चौबीसी' का समय सं० १६७८ के अनंतर ही ठहरता है। इनकी प्रशस्ति लिखनेवाले श्रीयशोविजय ने सं० १६८८ में दीक्षा ली तथा सं० १७४३ में स्वर्गवासी हुए। इससे १७०० के आसपास ये अवश्य थे। इधर वृंदावनवासी आनंदघनजी को 'छप्पनभोगचंद्रिका' में कृष्णगढ़ के राजकवि जयलाल ने नागरीदासजी का समसामयिक समझा है और उनके सत्संग की चर्चा की है—

१—आनँदघन हरिदास आदि संतन बच सुनि सुनि।
२—आनँदघन हरिदास आदि सों संत सभा मधि।
३—आनँदघन को संग करत तन मन कों वारयो।

—देखिए 'नागरसमुच्चय'।

श्रीनागरीदासजी के जीवनचरित्र में बाबू राधाकृष्णदासजी ने लिखा है कि "हमारे यहाँ एक अत्यंत प्राचीन चित्र है जिसमें नागरीदासजी और घनआनंदजी एक साथ विराजते हैं।"—(राधाकृष्णदास-ग्रंथावली, पृष्ठ १७२)। इससे भी पता चलता है कि आनंदघनजी और नागरीदासजी समसामयिक थे। कदाचित् इसीसे उतारे प्रतिचित्र का उल्लेख भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के 'सुजानशतक' के आरंभ में है। चित्र चिपकाने के लिए चौकोर खाना बनाकर उसके ऊपर नीचे छापा गया है—"यह चित्र श्री आनंदघनजी का है, जिसे श्रीमहाराजकुमार श्रीकृष्णदेवशरण सिंह ने अपने हस्तकमल से उनके लिखे हुए चित्र से छाया का चित्र बनाया है।"

'नागरीदास' नाम के चार महात्मा हुए हैं। राधाकृष्णदासजी ने चौथे नागरीदासजी के साथ, जो सावंतसिंह के नाम से प्रसिद्ध थे, आनंदघनजी के

सत्संग की चर्चा की है। इन नागरीदासजी का कविता-काल सं० १७८० से १८१९ तक माना जाता है (देखिए शुक्लजी का 'हिंदी साहित्य का इतिहास', संशोधित और परिवर्धित संस्करण, सं० १९९९, पृष्ठ ३८०)। इससे वृंदावन-वासी आनंदघनजी का समय अट्ठारहवीं शती का उत्तरार्ध ठहरता है। इसलिए 'जैन आनंदघन' और वृंदावनवासी 'आनंदघन' के समय में भी सौ वर्षों का अंतर है। अतः इनके एक ही होने की संभावना नहीं है।

अब प्रश्न यह है कि क्या 'आनंदघन' और 'घनआनंद' भी एक ही कवि हैं। अब तक दोनो एक ही माने जाते रहे हैं। पर दोनो के पृथक् होने की बहुत संभावना है। इसका मुख्य कारण यह है कि कवित्त-सवैया लिखने वाले 'घनआनद' और पद लिखनेवाले 'आनंदघन' की काव्यशैली में घोर पार्थक्य है। 'घनआनद' के कवित्त-सवैयों में विरोध की प्रवृत्ति, भाषा की प्रांजलता और लाक्षणिक वक्रता का जैसा विधान पाया जाता है वैसा 'पदावली' में नहीं। कवित्त-सवैयों में 'घनआनंद' के साथ साथ 'आनंदघन' छाप का भी प्रयोग है अवश्य, पर गिनती के विचार से ९० प्रतिशत छंदों में 'घनआनंद' शब्द ही प्रयुक्त हुआ है।

यहाँ देखना यह चाहिए कि पक्ष विपक्ष में कैसे कैसे तर्क दिए जा सकते हैं और उनके आधार पर क्या मानना समीचीन या संभाव्य होगा। इस प्रसंग में तीन प्रकार के साक्ष्यों से काम लिया जा सकता है—ऐतिहासिक, सांप्रदायिक और साहित्यिक। सबसे पहले दोनो के एकत्व को लेकर ही इन तीनो प्रकार के साक्ष्यों का विचार कीजिए। ऐतिहासिक साक्ष्य के लिए हिंदी में 'घनआनंद' के संबंध में प्रचलित किंवदंती ही आधार है। उसके अनुसार ये मुगल सम्राट् मुहम्मदशाह रँगीले के मुंशी थे। इस पर विचार करना अभी छोड़ देते हैं कि ये उनके 'खास कलम' (प्राइवेट सेक्रेटरी) थे (देखिए स्वर्गीय लाला भगवानदीनजी का निबंध, 'रसखान और घनानंद' में उद्धृत) या दरबार के 'मीर मुंशी' (त्रिवेदी लिखित 'घनआनद', पृष्ठ १७)। कहा जाता है कि सदारँगीले के दरबार की 'सुजान' नामक वेश्या पर ये आसक्त हो गए थे। अन्य दरबारी लोग इस बात के आधार पर षड्यंत्र करके इन्हें दिल्ली से निष्कासित कराने के हेतु बने। दरबारियों ने बादशाह से एक दिन कह दिया

मुंशीजी गाते बहुत अच्छा हैं। फिर क्या था, बादशाह ने इनका गाना सुनने के लिए हठ पकड़ ली। पर ये नम्रतावश गाना सुनाने में अपनी अशक्ति का ही निवेदन करते रहे। अंत में उन षड्यंत्रकारियों ने बादशाह से चुपके चुपके यह कहा कि ये यों न गाएँगे, यदि 'सुजान' बुलाई जाय, जिस पर ये आसक्त हैं, तभी गाना सुनाएँगे। 'सुजान' बुलाई गई और इन्होंने उसकी ओर उन्मुख होकर सचमुच गाया और ऐसा गाया कि सारा दरबार मंत्रमुग्ध हो गया। बादशाह ने गान का रस लूटने के अनंतर जो होश सँभाला तो इनकी इस गुस्ताखी पर बहुत अप्रसन्न हुआ कि इन्होंने वेश्या का मान बादशाह से अधिक किया। फलस्वरूप उसने इन्हें देशनिकाले का दंड दिया। कहा जाता है कि ये 'सुजान' के निकट गए और उससे भी साथ देने को कहा, पर उसने साथ चलना अस्वीकार कर दिया। अत में ये वृंदावन चले गए और वहाँ वैष्णव संप्रदाय में दीक्षित हो गए। पर 'सुजान' नाम इन्होंने कभी नहीं त्यागा। भगवद्भक्ति में इस शब्द का व्यवहार श्रीकृष्ण और श्रीराधिका के लिए अपनी रचना में बराबर करते रहे। अंत में मथुरा पर होनेवाले नादिरशाह के हमले में ये मारे गए।

इतिहास में मथुरा पर नादिरशाह के हमले की चर्चा नहीं है। अहमदशाह अब्दाली या दुर्रानी के हमले की ही बात आई है। सबसे पहले नागरीदासजी के जीवनचरित्र में बाबू राधाकृष्णदासजी ने यह संकेत किया कि हमला दुर्रानी का था। इधर त्रिवेदीकृत 'घनआनंद' नामक पुस्तक में यह भली भाँति सिद्ध कर दिया गया है कि यह हमला अब्दाली का ही हो सकता है सं० १८४६ के लिखे कृष्णभक्ति विषयक एक पदसंग्रह में इस हमले का उल्लेख इस प्रकार है—'श्रीकामवन के मंदिर मलेछनि करि जो उतपात भयौ ताकौ हेत जो रसिकनि के विचार में आयौ सो लिख्यौ है।' उत्पात का कारण पूजा में त्रुटि बतलाया गया है। रघुराजसिंहजू देव की 'रामरसिकावली' में दी हुई घनआनद की कथा से यह वार्ता कुछ मिलती है।* यह घटना 'घन-

* श्रीवृंदावनदासजी ने इसका संकेत अपनी 'श्रीकृष्ण-विवाह-उत्कठा-वेली' में इस प्रकार किया है—"जमन कछु संका दई ब्रजजन भए उदास। ता समये चलि तहाँ ते कियौ कृस्नगढ़ बास।"—(खोज १९१७–३४ एफ्)।

आनंद' या आनंदघन' दोनो के लिए हो सकती है, यदि वे पृथक् हों तो भी, क्योंकि इनके समय के पार्थक्य का कोई सूत्र नहीं प्राप्त हुआ है।

अब 'मुहम्मदशाह' और 'सुजान' का भी कुछ विचार कीजिए। प्रस्तुत ग्रंथावली में 'आनंदघन' के नाम पर जो रचना दी गई है उसमें 'व्रजभाषा' के अतिरिक्त पूरबी, बंगाली, पंजाबी, राजस्थानी (कहीं कहीं गुजराती-मिश्रित) कई भाषाओं का प्रयोग है, पर प्राधान्य पंजाबी का ही है। 'आनंदघन' की 'इश्कलता' पंजाबी में है, बीच बीच में दोहे व्रजभाषा में भी रखे हैं। मुहम्मदशाह के भी, जो सदारँगीले के नाम से रचना करता था, बहुत से पद पंजाबी में हैं और राग कल्पद्रुम में संगृहीत हैं। प्रश्न होता है कि क्या 'सुजान' भी कुछ गाने या तुक जोड़ती थी। 'सुधासर' नाम के संग्रह में 'घनआनंद' का एक सवैया (प्रकीर्णक, छंद ६७) किसी 'सुजान' के नाम पर चढ़ा हुआ है। उसकी अन्य दो रचनाएँ वहाँ से नीचे उद्धृत की जाती हैं--

कबित्त

पहिलें तौ नैनन सों नैनन मिलाय, फिरि
सैनन चलाय हरि लीनौ चित चाय चाय।
अब क्यौं कहत गुर लोगन की संक मोहिं,
मारत निसंक काम कासों कहौं जाय जाय।
ए रे निरदई कान्ह 'कहत सुजान' तो सों,
तेरे बिन देखें आँखैं रहैं झर लाय लाय।
दूर जौ बसाय तौ परेखो हू न आय,
अरे निकट बसाय मीत मिलत न हाय हाय॥

सवैया

वेद हू चारि की बात कों बाँचि पुरान अठारह अंग मैं धारै।
चित्र हू आप लिखै समझै कबितान की रीति मैं बार ते पारै।
राग कों आदि जिती चतुराई 'सुजान कहै' सब याही के लारै।
हीनता होय जौ हिम्मत की तौ प्रबीनता लै कहा कूप मैं डारै॥

—सुधासर, पन्ना २३४ (खोज-विभाग, 'सभा')।

क्या 'सुजान' ने यह हिम्मत उस समय बँधाई थी जब 'घनआनंद'-शाही दरबार में गाना गाते सकुच रहे थे ? सुजान ही जाने। 'राग-कल्पद्रुम' में 'सुजान' के चार पद हैं (प्रथम भाग, पृष्ठ १०७, २५०, २६४; द्वितीय, २२४) जिनमें से दो में तो 'प्रभु सुजान' छाप है, एक में 'महाराज बहादुर' से मुश्किल आसान करने की आरजू है और एक यह है—

सिपतमणि अल्ला नबीनमणि महम्मद, दोउ जगमणि,
चत्र दिश मासूम पीरनमणि मुरतजा अली कीन।
वासरमणि दिनकर, रजनीमणि चंद्र, तारनमणि ध्रुव,
मलकनमणि जबरइल, यह सब जगत में लीनो बीन।
पातालमणि शेष, शेषमणि अवनी, अवनिमणि नाभ,
नाभमणि अरस, अरसमणि कुरस, लोहमणि कलमा,
तुरंगनमणि बुराक, गजनमणि एरावत, राजनमणि
इंद्र, गिरनमणि सुमेर, चंचलमणि मीन।
किताबमणि कुरान, दीनमणि कलमा, अवदनमणि
आदम कामनमणि हवा रागनमणि भैरो भाषामणि
व्रज की, जोतिमणि दीपक, दीपकमणि नार दोजक
शीतल भलो भिहिस्त एती भात 'सुजान' अस्तुति कीनी।

—राग कल्पद्रुम प्रथम भाग, पृष्ठ २६४।

जान तो यही पड़ता है कि मुहम्मदशाह के दरबार में कोई 'सुजान' (वेश्या) इसे पढ़ या गा रही है। तो क्या 'सुजान' 'यवनी नवनीतकोमलांगी' थी ? होली में 'कन्हैया' बनने का हौसला पूरा करनेवाले सदारँगीले ने 'यवनी वेश्याओं' के नाम देशी रखे थे।

'सुजान' कोई 'तिया' थी इसका पता 'सुजानहित' का छंद २०२ देगा। उसके रूप के दर्शन चाहते हों तो उसी पुस्तक की छंदसंख्या ११४, १३३ देखिए। उसका नाच देखना हो, अभिनय (नाट्य) के दर्शक बनना हो तो उसी का छंद १२०, १३२, १२६ अवलोकन कीजिए। उसकी 'वीणा' सुननी हो तो छंद १३४ पढ़ सुन जाइए। 'साँवली साड़ी' में उसकी छटा देखनी हो तो छंद २३७ का पाठ कीजिए। उसने 'घनआनंद' को एक 'छल्ला' भी दे

रखा था, जिसे देख देख वे वियोग मैँ मरकर भी जी रहे थे (देखिए, छंद ३४०)। वह मिँहदी लगाती थी, उसके कटाक्षपात विलक्षण थे, एक ही वास मैँ विदेश की स्थिति थी, उसने उन्हेँ त्याग दिया आदि के सकेत छद २१२, २६६, २२८, २३१ मैँ मिलैँगे। 'सुजान' के संबंध मैँ विस्तार से पृथक् ही लिखने की आवश्यकता है। इससे इसे भविष्य के लिए छोड़े देते हैँ। अब देखिए मुहम्मदशाह के साथ भी 'सुजान' कहीँ है—

किरपा करो रे मो मन सइयाँ तन मन धन
नोछावर करहूँ परहूँ पइयाँ।
मुहम्मद सा 'सुजान' अब कहि भाग हमारे जागे
लेहु बलैया सुरजन सइयाँ ॥

—राग-कल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृष्ठ १७६।

'राग-कल्पद्रुम' मैँ यह रचना मुहम्मदशाह की ही बताई गई है, पर पद कह रहा है कि रचना उसके किसी दरबारी की है। अब 'सुजान' शब्द मुहम्मद सा' का विशेषण है या पृथक् इसे कौन बताए। हाँ 'कहि' कुछ कह दे तो कह दे, अन्यथा अनुमान का भरोसा ही कितना!

अब सांप्रदायिक साक्ष्य का विचार कीजिए। परंपरा से यह प्रसिद्ध है कि 'घनआनंद' निबार्क-सप्रदाय मैँ दीक्षित थे। पर यह बात उनकी रचना देखने से स्पष्ट सिद्ध नहीँ होती। त्रिवेदीकृत 'घनआनंद' मैँ उन्हेँ वल्लभ-सप्रदाय मैँ दीक्षित कहा गया है। उनकी रचनाओँ मैँ 'हितहरिवंश' की ओर संकेत की बात भी लिखी गई है। वल्लभ सप्रदाय मैँ उनके दीक्षित होने का जो प्रमाण उपस्थित किया गया है वह 'राग-कल्पद्रुम', द्वितीय भाग के पृष्ठ १५० से उद्धृत पद है। पर उस पद मैँ 'आनंदघन' शब्द कवि की छाप नहीँ है। वह पद तो 'गिरिधर कवि' का है। "ऐसी दसा जग छायौ अँधेर, बिना हितमूरति कौन सँभारे" मैँ 'हितमूर्ति' प्रेममूर्ति श्रीकृष्ण के लिए आया है। अतः हितहरिवंशजी के संप्रदाय मैँ दीक्षित होने की बात अनुमिति मात्र है। सांप्रदायिक दृष्टि से कुछ विस्तृत विचार करने पर यह विषय और स्पष्ट हो जायगा। इसके लिए तीन तत्त्वौँ का विचार अपेक्षित होता है—आचार, सिद्धांत और उपासना। आचार का भेद तिलक-मुद्रादि के रूप, धारण आदि मैँ और

पूजाविधि में होता है, जिसके लिए संप्रति कोई आधार इनकी रचना में नहीं मिला। पूर्वोक्त 'चित्र' भी अप्राप्य है, इससे इसका विचार भविष्य के लिए छोड़ते हैं।

अब सिद्धांत पर आइए। आचार्यों के चार प्रमुख सिद्धांतों के अनुसार चार वैष्णव सम्प्रदाय हैं—श्रीरामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवादी श्री-संप्रदाय, श्री निंबार्काचार्य का द्वैताद्वैतवादी सनकादि संप्रदाय, श्रीमध्वाचार्य का द्वैतवादी ब्रह्म-संप्रदाय और श्रीवल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवादी रुद्र-संप्रदाय या पुष्टिमार्ग। इन सभी संप्रदायों का उदय श्रीशंकराचार्य के मायावाद के निरसन के लिए हुआ है। भक्ति इनका प्रधान लक्ष्य है। 'शांडिल्यसूत्र' के अनुसार 'सा (भक्तिः) परानुरक्तिरीश्वरे' को सभी मानते हैं। पर उपासना में किसी विशेष भाव या रस की प्रधानता मानकर चलते हैं। श्रीसंप्रदाय में 'दास्य' स्वीकृत है, माध्व संप्रदाय में 'माधुर्य', निंबार्क-सम्प्रदाय में 'सख्य' और पुष्टिमार्ग में 'वात्सल्य'। तारतम्य के विचार से 'गोविंदभाष्य' में पाँच प्रकार की उपासनाएँ कही गई हैं—शांत, दास्य, वात्सल्य सख्य और माधुर्य। 'माधुर्य' या मधुर रस में पूर्वोक्त चारो निहित हैं, 'सख्य' में पूर्वोल्लिखित तीन और वात्सल्य में दो। अधिक विस्तार न करके यही कहना प्रसंगप्राप्त है कि श्री संप्रदाय और पुष्टिमार्ग से इनका संबंध नहीं जान पड़ता। 'गोपाल' या 'बालमुकुंद' की उपासना का आभास इनकी कृति में कहीं नहीं मिलता। श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव का जो वर्णन है वह सभी सम्प्रदायों के अनुकूल है। प्रत्युत यह कहा जा सकता है कि श्रीराधिकाजी के जन्मोत्सव का वर्णन वल्लभ-कुल से इनका संबंध स्वीकृत करने के पक्ष में नहीं है। वल्लभ-कुल के कवि श्रीकृष्ण के संपर्क में राधा का वर्णन तब करते हैं जब वे गोचारण के लिए बाहर निकलते हैं। सूरदासजी ने भी ऐसा ही किया है। इसलिए देखना चाहिए कि ये निंबार्क संप्रदाय में दीक्षित थे या माध्व संप्रदाय में। उपासना की दृष्टि से इन दोनो संप्रदायों में प्रमुख भेद यह है कि निंबार्क-संप्रदाय में (हितहरिवंशजी के राधावल्लभी या अनन्य सम्प्रदाय और श्रीहरिदासजी के टट्टी सम्प्रदाय में भी) राधाजी की 'स्वकीया-भाव' की उपासना चलती है और माध्व चैतन्य सम्प्रदाय में 'परकीया-भाव'

की। 'स्वकीया-भाव' के अंतर्गत राधा का प्राधान्य है, वहाँ सखी-भाव से ही भक्तों की उपासना चलती है। गोपिकाएँ श्रीराधिकाजी की सखी ही रहेंगी। 'स्वामिनी' जी का स्थान वे न ले सकेंगी। पर माध्व-चैतन्य-संप्रदाय में गोपियाँ और राधिका में यह विभेद नहीं है।

'घनआनंद' की रचना में 'पूर्वानुराग' का वर्णन तथा 'कृपाकंद-निबंध' में 'गोपी-प्रेम' की चर्चा माध्व सप्रदाय के ही अनुकूल पड़ती है। (देखिए छंद-संख्या ६७ से ७०)। छंदसंख्या ६८ में 'आरज-पथ भूली' स्पष्ट है। 'सुजान' से इनका प्रेम भी तो परकीयत्व की ही ओर जाने का आग्रह करता है। 'राधिका-चरन नख-चंद ज्यौं चकोर' (कृपाकंद-निबंध, २४) से भी 'परकीयत्व' झलक रहा है। इससे माध्व-चैतन्य-संप्रदाय में 'घनआनंद' के दीक्षित होने की बहुत संभावना है।

'आनंदघन' की ओर आइए। इनके संबंध में अधिक कहने की आवश्यकता ही नहीं है। 'पदावली' के पद १७० में इन्होंने श्रीचैतन्यदेव की प्रशस्ति ही पढ़ी है। ऐसी स्थिति में 'घनआनंद' और 'आनंदघन' के एक होने की संभावना अधिक है।

अब साहित्यिक जाँच पड़ताल कीजिए। 'छाप' की बात पहले कही जा चुकी है। 'पदावली' में एक ही स्थल पर 'घनआनंद' (पद २३४) आया है, अन्यत्र 'आनंदघन' छाप का ही व्यवहार है या उसके पर्यायवाची 'आनंदमुदीर, आनदमेघ, आनंदअंबुद, मोदघन, आनंदकंद' का। एक स्थल पर 'घन प्यारिया' में 'घन' कदाचित् कवि के नाम का संकेत हो, जैसे कभी कभी केवल 'आनंद' शब्द से ही काम लिया गया है। अनुमान है कि 'पदावली' में जहाँ 'आनंद' पद है वहाँ पाठ गड़बड़ हो जाने से 'घन' किसी प्रकार निकल गया है। कहीं कहीं छाप नहीं भी है और कुछ पद भी अधूरे हैं। 'घनआनंद' की रचना में जहाँ छाप नहीं भी आई है। वहाँ अधिकतर 'सुजान' का व्यवहार है, पर 'आनदघन' के नाम पर संगृहीत रचनाओं में 'इश्कलता' को छोड़कर 'सुजान' पद 'पदावली' में ही तीन-चार बार आया है।

'पदावली' के रचयिता की ही रचनाएँ 'इश्कलता', 'यमुनायश' और 'प्रीतिपावस' भी हैं। इसका पता तो 'धीरसमीर' की कुंज लीला के वर्णन

और 'पदावली' के पद ३१८ में 'प्रीतिपावस' के उल्लेख से चलता है। 'इश्क लता' का छंद ४० और 'सुजानहित' की पदसख्या ४ के भाव की एकता दोनो के एकत्व के प्रमाण में प्रस्तुत की जा सकती है। 'पदावली' के पद ३८,४०, ४४, ८२, ८७, ९६, २०६,२३७,३१६, ३७८,४१६, ४२६, ४५८, ४६२ में प्रयुक्त कुछ 'पद-समूह' घनआनद' के 'पद समूह' से मिलते हैं। 'विरोध' की प्रवृत्ति 'इश्कलता' में नहीं है, पर 'यमुनायश' के छंद ४०, 'प्रीतिपावस' के छंद २३,२६ और 'पदावली' के पद ५६,६५,१३८,१५३,१६८,१७३,२८३, ३६४ में वह यत्किंचित् मिलती है। एक बात और। 'सुजानहित' के छद ५०३ में 'विदिशा' नदी की स्तुति है, त्रिविक्रम का वर्णन है। 'पदावली' के पद २६६ मे 'बावन' के वर्णन में 'त्रिविक्रम पद नख-जल' का उल्लेख मिलता-जुलता माना जा सकता है।

इसके अतिरिक्त छतरपुर के राजपुस्तकालय में जो हस्तलेख था उसमें 'पदावली' का संग्रह भी एक ही जिल्द में किया गया है। छतरपुर के वे महाराज श्री माध्वसंप्रदाय में ही दीक्षित थे, जिन्होंने उक्त हस्तलेख का समग्रह कराया था। उस पुस्तकालय में अन्य महात्माओं के भी पद-सग्रह बहुत हैं। हरिदासजी के टट्टी-संप्रदाय के, हितहरिवंश के राधावल्लभी अनन्य सम्प्रदाय के, माध्व-चैतन्य-सम्प्रदाय के महात्माओं की बहुत अधिक सामग्री महाराज के पुस्तकालय में है। उसका अध्ययन करने से कृष्णभक्ति शाखा के सख्य और माधुर्य भाव की उपासना की खोज का काम बहुत अधिक हो सकता है। अस्तु, 'घनआनंद' के 'सुजानहित' के साथ हस्तलेखों की एक ही जिल्द में 'वियोगबेलि' तो मिलती ही है, 'यमुनायश' और 'प्रीतिपावस' भी मिलते हैं। अतः परंपरा में भी इनका पार्थक्य नहीं रहा। इस प्रकार जितनी संभावना इनके एक होने की है उसका आधार पुष्ट है। छतरपुर की पोथी का जो विवरण 'मिश्रबंधु-विनोद' में दिया गया है उसमें 'परमहंस-वंशावली' का भी उल्लेख है। ये परमहस कौन हैं? इसका पता लगना कठिन है। महाप्रभु गौरांगदेव, हरिदासजी, हितहरिवंश जी में से किसी एक के लिए यह प्रयुक्त हो सकता है। किसके लिए प्रयुक्त है इसका निर्णय कुछ अधिक खोज चाहता है, इससे इसे भी अभी छोड़ते हैं।

भाषागत प्रवृत्ति पर आइए। 'घनआनद' या व्रजनाथ के 'घनजू' 'व्रजभाषा-प्रवीन' और 'भाषा प्रवीन' दोनो थे। 'सुंदरता के भेद', 'भावना के भेद का स्वरूप'-चित्रण करने मे दक्ष थे। 'सुछंद' भी थे। जग की 'कबिताई के धोखे' मे रहने से इनकी रचना हृदयंगम नहीं हो सकती। उसके लिए मानस-नेत्र अपेक्षित हैं। 'घनआनंद' के नाम पर संकलित रचना मे तो ये सब वैशिष्ट्य अवश्य मिलते हैं पर आनंदघन' के नाम पर विभक्त कृति मे नहीं। 'भाषा की प्रवीणता' तो उन्होंने नागरीदास आदि की भाँति अनेक प्रकार की भाषाओं मे रचना करके प्रदर्शित की है।

अब विचार कीजिए कि क्या 'घनआनंद' जिनके कवित्त-सवैयों की जबाँदानी को हिंदी का कोई कवि नहीं पाता वे ही 'पदावली' आदि के भी रचयिता हैं। यदि 'पदावली' उन्हीं की हो तो इसे उन्होंने 'भक्त' होने पर वृद्धावस्था मे ही लिखा होगा, पर 'पदावली' का बंधान चुस्त नहीं है। कुछ ही रचनाएँ बढ़िया हैं। सिद्धांत और अनुभूत स्थिति यह है कि ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है कवि को वृत्ति मे प्रौढ़ता, प्रांचलता आदि का समावेश अधिकाधिक होता जाता है यहाँ बात उलट गई है। यदि पदावली आदि रचनाएँ आरभिक होतीं तो संगति अवश्य बैठ जाती। क्या भक्त हो जाने पर काव्यत्व का ह्रास हो जाता है, क्या पद मे हुई रचना साधारण ही रहती है क्या लीला के पद गाने के होते हैं इससे उनमे भाषा की प्रवीणता नहीं आ पाती। पर 'घनआनंद' की कवित्त-सवैयावाली भक्तिपूर्ण रचनाएँ ऐसी नहीं है। कृपाकंद-निबंध का पद भी ऐसा नहीं है, उसमे विरोध-विशिष्ट प्रवृत्ति पूर्ण रूप मे मिलती है। यदि घनआनद ही पदों मे आनदघन हो गए तो उस 'सुजान' शब्द के प्रयोग की न्यूनता क्यों है जिसे भक्ति-पक्ष मे 'श्याम' या 'श्यामा' के लिए वे कवित्त-सवैयों मे बराबर रखते आए।

रहा संप्रदाय। सो कृष्णगढ़ के महाराज सावंतसिंहजी हुए 'नागरीदास', उन्होंने दीक्षा ली वल्लभ-कुल मे पर उनकी कृतियाँ सखी-सप्रदाय के भक्तों के मेल में पूरी पूरी हैं। यदि पता न हो कि वे वल्लभ-कुल के हैं तो कोई उन्हें उस संप्रदाय का कदापि नहीं मान सकता। 'मिश्रबंधु-विनोद' में वे 'वल्लभीय संप्रदाय' के कहे ही गए हैं, वल्लभ-कुल के नहीं (द्वितीय संस्करण, द्वितीय

भाग, पृष्ठ ५८६)। पर 'नागरसमुच्चय' और उसमें जुड़ी राजकवि जयलाल की 'छप्पनभोगचंद्रिका' उन्हें वल्लभ-कुल का ही कहती है। इससे जब तक पक्का प्रमाण न मिल जाय तब तक 'घनआनंद' और 'आनंदघन' को भी एक मानने को जी नहीं चाहता। ब्रजवासियों का कहना तो यहाँ तक है कि भक्तवर 'आनंदघन' ब्राह्मण थे और उनके वंशज अब तक नंदगावँ में रहते हैं। इसलिए प्रस्तुत संग्रह में 'घनआनंद' और 'आनंदघन' को पृथक् पृथक् ही रखा गया है। इस संबंध की और 'खोज' फिर कभी सामने रखी जायगी, अभी तो इतने ही से संतोष करना पड़ेगा।

अब संकलित सामग्री की छानबीन पर आइए। 'घनआनंद-आनंदघन' की कृतियों के हस्तलेख नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा की गई 'खोज' में संवत् २००० तक इस प्रकार विवृत किए गए हैं—

१ घनआनद-कवित्त—(००–७६)।
२ आनंदघन के कवित्त—(६–१२५, २६–१२ ए)
३ कवित्त—(२६–११६ डी)
४ स्फुट कवित्त—(३२–७ सी)
५ आनंदघनजू के कवित्त (४१–१० ख)
६ सुजानहित—(१२–४ बी)
७ सुजानहित-प्रबंध—(२६–११६ बी)
८ कृपाकंद-निबंध—(२–६६)
९ वियोग-बेलि—(१७–८ बी, २६–११६ बी)
१० इश्कलता—(१२–४६, ३२–७ ए)
११ जमुनाजस—(४१–१० क)
१२ आनंदघनजू की पदावली—(२६–१२ बी, दि० ३१–६)
१३ प्रीतिपावस—(१७–८ ए ; २६–११६ ए)
१४ सुजानबिनोद—(२३–१४)
१५ कवित्त-संग्रह—(३२–७ बी)
१६ रसकेलिवल्ली—(००–७६)
१७ वृंदावन सत—(३२–७ डी)।

इनमें से 'वृंदावन-सत' तो श्रीहरिदासजी की शिष्य-परंपरा में माधव-मुदित के पुत्र भगवतमुदित की रचना है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—

श्रीमाधोमुदित प्रसंस हंस जिन रति-रस गायौ।
तिनको हौं निज अंस रहसि रस तिनतें पायौ॥

इनकी छाप थी 'भगवंत', पर 'आनंदघन' पद ने जैसे औरों को धोखा दिया वैसे ही 'खोज' के साहित्यान्वेषक को भी। निम्नलिखित दोहे में उसने 'आनंदघन' को पकड़ा, 'भगवंत' को भूल ही गया, उनकी बिनती पर भी ध्यान न दिया—

यह बिनती 'भगवंत' की सुनहु रसिक है चित्त।
अपनो मोको जानि कै दया करहुगे नित्त॥
वृंदाबन आनंदघन, अति रस सों रसवंत।
...जिय डरत हौं, यह बिनती 'भगवंत'॥

रचना संवत् १७०७ की है और 'आनंदघन' के काव्यकाल से लगभग सौ वर्ष पहले की है—

'संवत दस सै सात अरु सात वरष है जानि।'

'रसकेलिबल्ली' का नाम तो सुना सुनाया ही है, वैसे ही जैसे 'सुजानसागर' नाम चल पड़ा है और जिसे 'सुजानशतक' में सबसे पहले भारतेंदु बाबू ने तरंगित किया है। अब तो 'घनानंद-कबित्त' को लोग 'सुजानसागर' नाम से ही जानते हैं। 'कबित्त संग्रह' और 'सुजानविनोद' भी परकालीन नूतन संग्रह हैं। इनमें कुछ छंद नए भी मिलते हैं, जो 'घनानंद कबित्त' में नहीं हैं। संख्या १ से ४ तक के सभी हस्तलेख 'घनानंद-कबित्त' ही हैं, जिनका संग्रह 'ब्रजनाथ' नाम के सज्जन ने किया था। इन्होंने संग्रह के आदि और अंत में 'घनआनंद' और उनकी रचना की प्रशस्ति भी लिखी है। ये कदाचित् 'घनआनंद' के शिष्य या उन्हीं के संप्रदाय के कोई भक्त जान पड़ते हैं। 'शिवसिंहसरोज' में 'रागमाला' के कर्ता ब्रजनाथ का उल्लेख है, जिन्होंने राग-रागिनियों के स्वरूप का बोध दोहों में कराया है। रचना देखने से कोई भक्त ही जान पड़ते हैं, इनका

कविताकाल सं० १७८० (जन्मकाल नहीं, जैसा 'मिश्रबंधु-विनोद' में माना गया है) है । यदि ये वे ही व्रजनाथ हों तो 'घनआनंद' के समसामयिक ठहरते हैं। इसलिए 'घनआनद-कवित्त', जो कवि के ५०० छंदों का संकलन है, सबसे प्राचीन संग्रह ठहरता है ।

संख्या ५ का ग्रंथ 'सुजानहित' ही है, जो म्यूनिसिपल म्यूजियम, इलाहाबाद में सुरक्षित है । 'सुजानहित' या 'सुजानहित-प्रबंध' भी कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है, कवि के ५०० छंदों का नूतन संग्रह ही है। इसके हस्तलेख दो प्रकार के मिलते हैं। एक प्रकार के हस्तलेखों में ४४८ छंद हैं, दोहों-सोरठों की गणना नहीं की गई है। उन्हें भी गिन लेने से ४५४ छंद होते हैं । दूसरे प्रकार के हस्तलेखों में लगभग ५०० छंदसंख्या मिलती है और दोहों की गिनती कर लेने से ५०५ छंद होते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि पहले प्रकार के हस्तलेखों की परंपरा किसी अधूरी प्रति के आधार पर चल पड़ी है। 'घनआनंद-कवित्त' और 'सुजानहित' में बहुत थोड़े छंदों का अंतर है। एक तो 'घनआनद-कबित्त' में 'कृपाकंद-निबंध' के बहुत से छंद हैं, दूसरे दानलीला का बड़ा प्रसंग भी उसमें जुड़ा हुआ है । दोनो का मिलान करने से पता चलता है कि 'घनआनंद-कवित्त' की कोई अस्त-व्यस्त प्रति ही सामने रखकर 'सुजानहित' संकलित हुआ है। इसलिए यह बाद का किया हुआ संग्रह जान पड़ता है । इसके संग्रहकर्ता कौन थे ? पता नहीं । पर पुस्तक के नाम से संकेत मिलता है कि वे श्रीहितहरिवंश के संप्रदाय के हो सकते हैं। राधावल्लभी या हितहरिवंश के संप्रदाय के भक्तों और उनकी रचनाओं के नामों के आदि-अंत में 'हित' शब्द जोड़ने का चलन है—हितगुलाब, हितध्रुवदास, हितशृंगारलीला, सेवकहित, परमानंदहित, चंद्रहित आदि । तो क्या 'घनआनंद' का संबंध राधावल्लभी संप्रदाय से था ? स्वयं 'घनआनंद' ने तो यह संग्रह किया नहीं, अन्यथा इस संप्रदाय से इनका संबंध जुड़ने की संभावना अवश्य होती। प्रस्तुत ग्रंथावली में 'घनआनंद-कवित्त' एक तो इसीलिए नहीं रखा गया कि उसके ग्रहण करने से एक प्रकार की पुनरुक्ति हो जाती, दूसरे वह पहले ही पृथक् रूप में प्रकाशित भी कर दिया गया है ।

'कृपाकंद-निबंध' की केवल एक ही प्रति मिलती है । छतरपुरवाले बृहत्

ग्रंथ मेँ भी इसका उल्लेख है। 'व्रजमाधुरीसार' का 'कृपाकांड' यही है। रोमी अक्षरोँ की कृपा से 'कृपाकंद' से 'कृपाकांड' हो जाने का कांड उपस्थित हुआ है। यह व्यवस्थित ग्रंथ है और 'कृपा के कंद' (बादल—कहूँ ऐसे मन-चातक भए जे कृपाकंद के', छंद ५२) श्रीकृष्ण की कृपा के माहात्म्य पर लिखा गया है। 'वियोगबेलि' की कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैँ। इसी का प्रकाशन श्रीकाशीप्रसादजी जायसवाल ने 'विरहलीला' के नाम से काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा कराया था। इसका नाम भी छतरपुरवाले ग्रंथ मेँ है। पर कुछ लोगोँ का यह समझना भ्रम है कि रचना खड़ी बोली की है। भाषा इसकी व्रज की ही है, पर छंद है फारसी का।

'आनंदघनजू की पदावली' के दो हस्तलेख मिलते हैँ। दोनो एक ही हैँ। यह भी संकलन ही है। किसी निश्चित क्रम से 'आरंभिक पद' नहीँ रखे गए हैँ, अंत मेँ कुछ शीर्षक बाँधकर एक प्रकार के पदोँ को एक स्थल पर अवश्य एकत्र कर दिया गया है। गान के पद कहीँ छोटे कहीँ बड़े हैँ। कहीँ कहीँ पद अधूरे ही हैँ। यहाँ 'पदावली' ज्योँ की त्योँ प्रकाशित की जा रही है। 'व्रजमाधुरीसार' मेँ जिस 'बानी' की चर्चा हुई है वह यही पदावली है। छतरपुर के बृहत् ग्रंथ मेँ कुल १०४४ पद बताए गए हैँ। प्रस्तुत 'पदावली' में ४८० पद हैँ, एक पद पुनरुक्त था अतः संख्या ४७९ रह गई। 'स्फुट' के पदोँ को भी जोड़ लेने से अब लगभग आधे पद उपलब्ध हो गए, यदि ये पद उसमेँ भी होँ तो। 'इश्कलता' की दो प्रतियाँ हैँ और 'खोज' के विवरण पत्रोँ का मिलान करने से एक संख्या का अंतर पड़ता है। दूसरी प्रति नहीँ मिली, अतः उसका पता नहीँ चला। 'यमुना-यश' की एक ही प्रति मिलती है। 'प्रीति-पावस' की एक प्रति श्रीदेवकीनंदनाचार्य पुस्तकालय, कामवन मेँ भी पहले थी, पर संप्रति उसका पता नहीँ चला। दोनो प्रतियोँ मेँ कोई अंतर नहीँ है।

इनके अतिरिक्त अनेक कवित्त-संग्रहोँ और पद संग्रहोँ मेँ से भी 'घनआनंद' के छंद और 'आनंदघन' के पद संगृहीत किए गए हैँ। श्रीशंभुप्रसादजी बहुगुना की पुस्तक 'घन-आनंद' से और स्वयं उनके पास बचे बचाए ३०-३२ छंद और मिल गए हैँ। श्रीमयाशंकरजी याज्ञिक के पास 'घनआनंद' की रचनाओँ का अच्छा संग्रह सुनने मेँ आया है, बहुगुनाजी ने उसी मेँ से अधिक-

तर सामग्री संगृहीत की है। यद्यपि 'याज्ञिक संग्रह' नागरीप्रचारिणी सभा, काशी को समर्पित कर दिया गया है तथापि 'घनआनंद'-संबंधी 'वेष्टन' अभी तक श्रीभवानीशंकरजी याज्ञिक के ही पास है, वे 'घनआनद' की रचनाओं का स्वतः संपादन कर रहे हैं। इसलिए हमें उसके अवलोकन का सौभाग्य प्राप्त न हो सका।

इस विवरण से स्पष्ट हो गया होगा कि 'घनआनंद आनदघन' के नाम पर 'सभा' की 'खोज' के विवरणों में जितनी कृतियों का उल्लेख है उन सबका संकलन प्रस्तुत ग्रंथावली में हो गया है।

जैन आनंदघन की रचनाएँ इसमें इसलिए जोड़ दी गई हैं कि उनमें व्रजभाषा के पुराने और प्रांत भेद से चलनेवाले रूपों का पता मिलता है। व्रजभाषा से परिचित न होने के कारण उनकी रचनाओं के जो संस्करण प्रकाशित हुए हैं उनमें बहुत अधिक भ्रांतियाँ हो गई हैं। यद्यपि प्रस्तुत ग्रंथ में संनिविष्ट और संपादित अंश में परिशोधन का पूर्ण उद्योग किया गया है तथापि हस्तलिखित ग्रंथों का आधार प्राप्त न होने से बहुत से स्थान संतोषप्रद संपादित नहीं हो पाए। हाँ 'दई की सँवारी' अब 'दैव की सवारी'(वाहन) नहीं रह गई है।

जैन आनंदघन की दो पुस्तकें मिलती हैं। 'चौबीसी' में चौबीसो तीर्थंकरों की प्रशस्ति है। इनमें से २२ स्तवनों की रचना तो 'आनंदघन' ने स्वयं की है और अंतिम दो उनके टीकाकार ज्ञानविमल और ज्ञानसार की कृति हैं। इसका उल्लेख स्वयं श्रीज्ञानविमल सूरि ने अपनी टीका में किया है। इनकी दूसरी पुस्तक 'बहोत्तरी' है। इसमें 'बहत्तर' के स्थान पर 'एक सौ सात' क्या 'एक सौ ग्यारह' तक पद मिलते हैं। कई पद तो बनारसीदास, द्यानत आदि जैन कवियों के इसमें मिल गए हैं और कुछ कबीर, सूर और आनंदघन (भक्त कवि) के। इनमें से जैन आनंदघन की वास्तविक रचना कौन कौन से पद हैं इसका निर्णय करना कुछ कठिन है। इसके लिए विभिन्न हस्तलेखों के आलोडन की भी आवश्यकता है, जिनका उपलब्ध होना समय-सापेक्ष है। किंतु यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि 'संमेलनपत्रिका', 'वीणा', 'विश्वभारती', 'प्रवासी', 'सुशील' आदि पत्र-पत्रिकाओं में श्रीक्षितीशमोहनजी सेन के जो निबंध जैन आनदघन को मर्मी (रहस्यवादी, मिस्टिक) सिद्ध करने के लिए लिखे गए हैं इनकी प्रवृत्ति से वैसा नहीं जान पड़ता। 'आनंदघन' में अध्यात्म

जैन धर्म का ही अध्यात्म है, निर्गुनिया संतों मेँ जो सूफियों का रहस्यवाद घुस गया है उसका प्रभाव अन्य जैन साधुओं की रचना मेँ चाहे हो भी पर इन जैन आनंदघन मेँ इसका प्रभाव 'बहत्तर' के स्थान पर शताधिक पदों ने एकत्र होकर ही डाला है। इसपर भी पृथक् से विचार करने की आवश्यकता है, प्रस्तुत पुस्तक मेँ उसकी विशेष चर्चा अनावश्यक भी है।

संपादन के संबंध मेँ इतना ही निवेदन है कि वर्ण-विन्यास वही रखा गया है जो अनेक प्रतियों के आलोड़न के अनंतर स्थिर हुआ है और जिसका अनुगमन पहले 'घनानंद-कवित्त' मेँ बहुत कुछ किया भी गया है। सबसे अधिक ध्यान 'घनआनद' की रचना के संपादन मेँ दिया गया है। कुछ प्रतियाँ के बहुत बाद मेँ उपलब्ध होने से उनका उपयोग पूरा पूरा न हो सका। यह कार्य अगले संस्करण की प्रतीक्षा करता रहेगा। 'पदावली' मेँ पद के विषय का निर्देश बाईं ओर छोटे अक्षरों मेँ संपादक की ओर से किया गया है। दाहिनी ओर 'राग, ताल' का उल्लेख हस्तलेख के अनुसार है। जहाँ किसी विषय या राग आदि का उल्लेख न मिले, वहाँ उसे पूर्वोक्त पद के अनुसार समझना चाहिए। 'अतःशीर्षक' मूल के ही हैं। इसी पद्धति का अनुगमन आगे अन्यत्र भी किया गया है। 'आनदघन' की रचना अधिकतर ज्यों की त्यों रखी गई है, पर परेशानी का अदाज इतने से ही कर लीजिए कि 'रति दी हाडे' को 'रात-दिहाडे' (इश्कलता, १६) समझने के लिए कई 'रात-दिहाडे' लग गए। यही नहीँ 'राधा की जनम-बधाई झुलसि झुलसि हौसनि गाऊँ' (पदावली, ३६१) से बहुत देर तक 'झुलसना' पडा, तब कहीँ 'हुलसि हुलसि' हुलसते हुए प्राप्त हुआ। पुराने ग्रंथों के लेखक का किन अक्षरों को कौन सा अक्षर पढ़ लेने की सभावना है इसकी एक सूची ही बनानी पड़ी, तब पुस्तक बहुत कुछ परिष्कृत हो सकी। यदि ऐसा न किया गया होता तो 'मैन से बभूतट' के सामने बौरी बुद्धि किनारे ही बैठी रह जाती, 'बहु नट' (पदावली, ३३४) का नाच न देख पाती, न दिखा सकती। अति विस्तार व्यर्थ है, इतना ही कहना अलं है कि इसमेँ गाढ़ी कमाई करनी भी पड़ी है और लगानी भी। रक्त को इतना गाढ़ा कर देना पड़ा है कि तालू चटक गया, आँखों को इतना गड़ाना पड़ा कि उन्होंने दुराग्रह या 'सत्याग्रह' आरंभ किया। इसलिए

'आँखें जौन देखैं तौ कहाँ हैं कछू देखति ये ऐसी दुखहाइनि की दसा आय देखियै ।'

प्राचीन काव्यों का जो अनुराग स्वर्गीय 'दीन' जी और आचार्य शुक्लजी जगा गए हैं शरीर शिथिल होकर उसे त्यागने की विधि सोचता, पर मन न मानता। तन और मन के विग्रह की प्रतिकूल परिस्थिति में यथेप्सित कार्य कर सकना दुरूह हो जाता था। पर मेरा रोम रोम असीसता है काशी नागरीप्रचारिणी सभा के 'अनुशीलन-विभाग' में 'हिंदी में भारतीय प्रेम-प्रबंधों की परंपरा' विषय पर संप्रति अनुसंधायक का कार्य करनेवाले अपने प्रिय शिष्य श्रीबटे-कृष्ण बी० ए० (आनर्स), एम ए० को जिन्होंने इस महत्कार्य के संपादन में छाया की भाँति मेरा साथ कभी नहीं छोड़ा और जो प्रकृति के उपद्रव में— झंझा और करका में—भी पुस्तकों की प्रतिलिपियाँ करने से पराङ्मुख नहीं हुए। यदि तरह तरह की सूचियाँ उन्होंने न बना दी होतीं और हस्तलेखों से मिलान करने में रात को रात और दिन को दिन समझा होता तो ग्रंथ इस रूप में कदापि प्रस्तुत न हो सकता।

भक्तभूषण अलंकारानुरागी श्रीशिवकुमारजी केडिया तो 'बेसुध' होने पर भी 'सुध' में चढे रहेंगे। यदि छतरपुर की यात्रा में उनका साथ न मिला होता तो विफलता को भी सफलता मानने का साहस कैसे बटोर पाता और क्या पूरी टिप्पणियाँ लगाई जा सकतीं। राजस्थानी, पंजाबी और गुजराती के पदों में तो कई प्रश्नचिह्न लगाकर ही काम चलाना पड़ता। कलामर्मज्ञ राय कृष्णदासजी, कविवर श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त और पुरातत्त्वप्रेमी श्रीव्रज-मोहनजी व्यास के पत्रों का बहुत बड़ा सहारा रहा। सर्वाधिक अनुग्रह प्राप्त हुआ माध्वसंप्रदायाचार्य सर्वतंत्रस्वतंत्र दर्शनाद्याचार्य श्रद्धेय गोस्वामी दामोदर-लालजी शास्त्री का। जिस अनुग्रह के बल पर छतरपुर तक जाने और राज-पुस्तकालय के अवलोकन की अनुमति ही नहीं विचार-विमर्श में सहमति भी मिली। काशी हिंदू विश्वविद्यालय में जैन धर्म के शिक्षक श्रीदलसुख भाईजी और रामघाट, काशी के जैनसाधु श्रीहीराचद्र सूरि जी महाराज का भी कृतज्ञ हूँ जिनसे जैनधर्म और जैन आनंदघन संबंधी यथासाध्य सामग्री प्राप्त हुई।

प्रसाद-परिषद् के उत्साही कार्यकर्ता श्रीभगवतीशरण सिंह की दौड़-धूप सदा स्मृति-पथ पर रहेगी, पर उन्हें धन्यवाद! इसे तो वे अतिचार समझते

हैं। जिन महानुभावों के पुस्तकालय के हस्तलेखों की प्रतिलिपियाँ या मूल प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं और जिनके ग्रंथों से किसी प्रकार की सहायता मिली है उन सबके प्रति मैं कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

अंत में यह कह देना आवश्यक है कि छतरपुर राजपुस्तकालय के ग्रंथ का जो विवरण या सामग्री इस प्रकार है—"इनका ५४२ बड़े पृष्ठों का एक भारी ग्रंथ संवत् १८८२ का लिखा हुआ दरबार छतरपुर के पुस्तकालय में देखने को मिला, जिसमें १८११ विविध छंदों तथा १०४४ पदों द्वारा निम्नलिखित विषय वर्णित हैं—प्रियाप्रसाद, व्रजव्योहार, वियोगवेली, कृपाकंदनिबंध, गिरिगाथा, भावनाप्रकाश, गोकुलविनोद, व्रजप्रसाद, धामचमत्कार, कृष्ण-कौमुदी, नाममाधुरी, वृंदावनमुद्रा, प्रेमपत्रिका, व्रजवर्णन, रसवसंत अनुभव-चंद्रिका, रंगबधाई, परमहंसवंशावली और पद।"—मिश्रबंधुविनोद, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ५७४)—उसमें से रेखांकित पुस्तकें तो पूरी मिल गई हैं और शेष का भी लगभग आधा अंश आपके सामने है। यदि उक्त ग्रंथ नष्ट न हो गया होगा तो अभी मुझे उसके मिलने की पूरी आशा और विश्वास है।

समीक्षा संबंधी बात मैंने जानबूझकर नहीं छेड़ी है। विस्तृत आलोचना अलग से प्रकाशित करने का विचार है और शीघ्र ही। यदि इस ग्रंथावली के पढ़ने से हिंदी के प्राचीन काव्य के अनुरागियों के चित्त का किंचिन्मात्र भी प्रसादन हुआ तो मेरा श्रम सार्थक सिद्ध होगा। यद्यपि संपादन में अक्षर-अक्षर का ध्यान रखा गया है तथापि 'अच्छर मन को छरै बहुरि अच्छर ही भावै' के अनुसार 'स्खलन' की आशंका से मैं अपने को मुक्त नहीं समझता। 'सरस' हृदय साहित्यिकों से तो कुछ कहने की आवश्यकता नहीं, वे 'समाधान' कर लेते हैं। उनमें 'समाधान' कर लेने की सज्जनता है ही क्योंकि उनके 'सरसत्व' में 'वैपरीत्य' का दोष नहीं है। हाँ, काव्यानुशीलन के लिए आगे आनेवालों से यह अवश्य कहना है—

'एजू सुनौ मित्त चित्त गुन मैं पिरोय इन्है,
राखौ कंठ मुकता-कवित्त करि हार है'।

प्रबोधनी, २००२
ब्रह्मनाल, काशी

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

'मूल' के आधार-ग्रंथ

हस्तलिखित

सुजानहित-प्रबंध— (१) राजपुस्तकालय, बनारस राज्य ।
(२) म्युनिसिपल म्यूजियम, इलाहाबाद ।
(३) भदावर राज्य, नवगावँ, आगरा ।
(४) विद्या-विभाग, काँकरौली ।

कृपाकंद-निबंध—सरस्वती-भंडार, बनारस राज्य ।

वियोग-बेलि—(१) श्रीराधाचंद्र वैद्य, भरतपुर ।
(२) भदावर राज्य, नवगावँ, आगरा ।

इश्कलता—श्रीरामचंद्र सेनी, बेलनगंज, आगरा ।

यमुना-यश—म्युनिसिपल म्यूजियम, इलाहाबाद ।

प्रीति-पावस—भदावर राज्य, नवगावँ, आगरा ।

पदावली—मानस-संघ, रामवन, सतना ।

प्रकीर्णक—(१) आनंदघन-कबित्त, रत्नाकर-संग्रह, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ।
(२) घनानद-कवित्त, वही ।
(३) सुधासर, खोज-विभाग, नागरीप्रचारिणी-सभा, काशी ।

मुद्रित

हिंदी

घनानंद-कवित्त—विश्वनाथप्रसाद मिश्र ।
शृंगार-संग्रह—सरदार कवि ।
सुजान-शतक—भारतेंदु हरिश्चंद्र ।
मिश्रबंधु-विनोद—मिश्रबंधु महोदय ।

'खोज' के विवरण--(मुद्रित तथा अप्रकाशित)

सुजानसागर—श्रीजगन्नाथदास 'रत्नाकर'।

विरहलीला—श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल।

रसखान और घनानंद—श्रीअमीरसिंह ('सभा' द्वारा प्रकाशित)।

राग-कल्पद्रुम (तीनो भाग)—श्रीकृष्णानंद व्यास।

राग-रत्नाकर—श्रीभक्तराम।

व्रजनिधि-ग्रंथावली—'सभा' द्वारा प्रकाशित।

घन-आनंद—श्रीशंभुप्रसाद बहुगुना।

व्रज-भारती (पत्रिका)—श्रीजवाहरलाल चतुर्वेदी।

गुजराती

आनंदघनअष्टपदी—गुर्जर-साहित्य-संग्रह।

आनंदघन-चौबीसी (सटीक)—(१) जैनधर्म प्रचारक-सभा, भावनगर।

(२) किसी प्राचीन प्रेस की छपी।

(मूल)—(३) श्रावक भीमसिंह माणेक।

(सटीक)—(४) ,, ,, ,,

आनंदघन-बहोत्तरी (सटीक)—(१) आनंदघन-पद्य-रत्नावली, प्रथम विभाग, सं० मोतीचंद गिरधरलाल कापडिआ।

(२) आनंदघन-पद-संग्रह, श्रीअध्यात्म ज्ञान-प्रसारक-मंडल, बंबई।

(मूल)—(३) श्रावक भीमसिंह माणेक।

——

सूची

संपादक की कुछ प्रमुख कृतियाँ

वाङ्मय-विमर्श
बिहारी की वाग्विभूति
हिंदी में नाट्यसाहित्य का विकास
काव्यांग-कौमुदी
भूषण-ग्रंथावली
पद्माकर पंचामृत
घनानंद-कवित्त
कवितावली
केशव-ग्रंथावली (अप्रकाशित)
दास-ग्रंथावली ,,
ग्वाल-ग्रंथावली ,

घनआनंद और आनंदघन

(ग्रंथावली)

घनआनंद

(प्रेमी कवि)

प्रशस्ति

सवैया

नेही महा ब्रजभाषा-प्रवीन, औ सुंदरतानि के भेद कौं जानै।
जोग-बियोग की रीति मैं कोविद, भावना-भेद-स्वरूप कौं ठानै।
चाह के रंग मैं भीज्यौ हियो, बिछुरैं मिलैं प्रीतम सांति न मानै।
भाषा-प्रवीन, सुछंद सदा रहै सो घन जी के कवित्त बखानै॥ १॥
प्रेम सदा अति ऊँचो लहै सु कहै इहि भाँति की बात छकी।
सुनि कै सब के मन लालच दौरै, पै बौरै लखैं सब बुद्धि-चकी।
जग की कविताई के धोखैं रहै, ह्याँ प्रवीनन की मति जाति जकी।
समझै कविता घनआनँद की हिय-आँखिन नेह की पीर तकी॥ २॥

कवित्त

नेह-मकरंद-भरे कैधौं अरबिंद-वृंद,
निरखत नसत सकल ताप ही के हैं।
कैधौं सुबरन के कलस ये सुधा सौं भरे,
स्वाद पाएँ लगत सवाद सब फीके हैं।
कैधौं अदभुत जलधर 'ब्रजनाथ' कहै,
नव-रस-रंग बरसत अति नीके हैं।
चोर चित्त-वित्त के कि पैठि बरजोर हियैं,
कैधौं बिलसत ये कवित्त घन जी के हैं॥ ३॥
प्रगटे सुघन सुबरन स्वाति-जल जेते,
बसे छंद-बंद-रीति सुकति-अधार हैं।
सुंदर बिमल बहु अरथ-निधान देखौ,
अचिरज-नेह-भरे झलकै अपार हैं।
कहै 'ब्रजनाथ' बहु जतननि आप हाथ,
बरनौं कहा लौं ये तौ परम सुढार हैं।

ए जू सुनौ मित्त चित्त-गुन मैं पिरोय इन्हैं,
राखौ कंठ मुकता-कवित्त करि हार हैं ॥ ४ ॥

सवैया

स्वाद महा खर दाखनि चाखत ज्यौं जन-नैननि रोप बढ़ावै।
ज्यौं तरुनी-तन-रूप निहारत पंड बढ़ै, हिय सोच उपावै।
चित्र-विचित्र के भेद सराहत ज्यौं दृगमंद न काहू सुहावै।
त्यौं घनआनँद-बानि बखानत मूढ़ सुजाननि आनि सतावै ॥ ५ ॥
कोटि विषै करि ओट महा नहि नेह की चोटहि जो पहचानै।
बात के गूढ़ न भेदन जानत मूढ़ तऊ हठि बादन ठानै।
चाह-प्रवाह अथाह परे नहिं आप ही आप विचच्छन मानै।
पूँछ-विषान विना पसु जो सु कहा घनआनँद-बानी बखानै ॥ ६ ॥
बिनती कर जोरि कै बात कहौं जौ सुनौ मन-कान दै हेत सौं जू।
कविता घनआनँद की न सुनौ पहचान नहीं उहि खेत सौं जू।
जु पढ़ै बिन क्यौं हूँ रह्यौ न परै तौ पढ़ौ चित मैं करि चेत सौं जू।
[रस-स्वादहि पाय विषाद बहाय रहौ रमि कै इहि नेत सौं जू] ॥ ७ ॥
गोपिन के रस को चसको जब लौं न लग्यौ तब लौं मन गुंज न।
नीरस की रसिकाई कहा सब ही विधि है सठ रे भठ-भुंजन।
प्रेम-पिकीन की प्यास भर्यौ घनआनँद छायौ जहाँ हित-पुंजन।
सीरी सुदेस सदा सुखमैन बसै जमुना-तट की उन कुंजन ॥ ८
हरि-राधा जहीं जहीं राजत हे वह ठौर जथारुचि रंजन है।
सु सँजोग वियोग महा रस-रूप तिही तित ही मन मंजन है।
न मिलै बिछुरै कतहूँ न कहूँ घनआनँद यौं भ्रम-भंजन जै।
लखि लै सुख-संपति दंपति मैं ब्रज की रज आँखिन अंजन कै ॥ ९ ॥
गोकुल की बर बानिक नैन सदा लखिबोई करै अनिमेखनि।
मंडित मोद अखंडित रूप भरौ मन रोमहि रोम सुदेखनि।
मोहन ही सब के धन जीवन प्रीति रची रस-रीति बिसेखनि।
पान करौ चित चातिक ह्वै घनआनँद चाह उमाह बिसेखनि ॥ १० ॥

—['घनानंद-कवित्त' से उद्धृत]

सुजानहित-प्रबंध

सवैया

रूपनिधान सुजान सखी जब तैं इन नैननि नेकु* निहारे।
दीठि थकी अनुराग छकी मति लाज के साज-समाज बिसारे।
एक अचंभो भयौ घनआनँद हैं नित ही पल-पाट उघारे।
टारैं टरैं नहीं तारे कहूँ सु लगे मनमोहन-मोह के तारे ॥ १ ॥
आँखि ही मेरी पै चेरी भई लखि फेरी फिरै न सुजान की घेरी।
रूप-छकी, तित ही बिथकी, अब ऐसी अनेरी पत्याति न नेरी।
प्रान लै साथ परी पर-हाथ बिकानि कौ बानि पै कानि बखेरी।
पायनि पारि लई घनआनँद चायनि बावरी प्रीति की बेरी ॥ २ ॥
रूपनिधान सुजान लखे बिन आँखिन दीठि की पीठि दई है।
ऊखिल ज्यौं खरकै पुतरीन मैं, सूल की मूल सलाक भई है।
ठौर कहूँ न लहै ठहरानि को मूदैं महा अकुलानिमई है।
बूड़त ज्यौ घनआनँद सोचि, दई बिधि ब्याधि असाधि नई है ॥ ३ ॥
हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।
नीर सनेही कौं लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यौं समभै जड़, मीत के पानि† परे कौं प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै ॥ ४ ॥
मेरोई जीव जौ मारत मोहिं तौ प्यारे कहा तुम सौं कहनो है।
आँखिन हूँ पहचानि तजी कछु ऐसोई भागनि को लहनो है।

[१] तारे = पुतलियाँ। तारे = ताले। [२] अनेरी = विलक्षण। नेरी = थोड़ा भी। [३] ऊखिल = पराया, अपरिचित। सलाक = शलाका, सलाई (अंजन लगानेवाली)। ज्यौ = जी। [४] समानै = सम, तुल्य। पानि =

पाठांतर—* नीके। † पानैं।

घनआनँद यौं रस-रीझनि भीजि कहूँ बिसराम बिलोक्यौ न वा।
अलबेली सुजान के पायनि-पानि पर्यौ न टर्यौ मन मेरो झवा ॥१६॥

रस-आरस भोय उठी कछु सोय लगी लसैं पीक-पगी पलकैं।
घनआनँद ओप बढ़ी मुख औरै सु फैलि भवीं सुथरी अलकैं।
अँगराति जम्हाति लसैं सब अंग अनंगहि अंग दिपैं झलकैं।*
अधरानि मैं आधिय बात धरैं लड़कानि की आनि परैं छलकैं ॥१७॥

बंक बिसाल रँगीले रसाल छबीले कटाछ-कलानि मैं पंडित।
साँवल सेत निकाई-निकेत हियैं हरि लेत है आरस-मंडित।
बेधि कै प्रान करैं फिरि दान सुजान खरे भरे नेह अखंडित।
आनँद-आसव-घूमरे नैन मनोज के चोजनि ओज प्रचंडित ॥१८॥

देखि धौं आरसी लै बलि नेकु लसी है गुराई मैं कैसी ललाई।
मानौ उदोत दिवाकर की दुति पूरन चंदहि भैंटन† आई।
फूलत कंज कुमोद लखैं घनआनँद रूप अनूप निकाई।
तो मुख लाल गुलालहि लाय कै सौतिन के हिय होरी लगाई ॥१९॥

रूप धरे धुनि लौं घनआनँद सूझति बूझ की दीठि सु तानौ।
लोचन लेत लगाय कै संग अनंग अचंभे की मूरति मानौ।
है किधौं नाहिं लगी अलगो सी लखी न परै कबि क्यौं हूँ प्रमानौ।
तो कटि-भेदहि किंकिनि जानति तेरी सौं प्यारी सुजान हौं जानौ ॥२०॥

पैरों के हाथ मैं पड़ा हुआ (वश मैं होकर)। झवा = पैर की मैल रगड़कर निकालनेवाला ईंट का टुकड़ा, झाँवा। [१७] रस-आरस = आनंद मैं लीन होने से उत्पन्न आलस्य। सुथरी = सुंदर, मनोहर। लड़कानि = मस्ती। [१८] आनँद० = आनंद की मदिरा पीकर मत्त। चोज = मस्ती। [१९] लाल = प्रिय। [२०] रूप० = ध्वनि के रूप की भाँति सूक्ष्म या अलक्ष्यरूप धारण किए हुए है। बूझ० = बुद्धि की दृष्टि से, मानस नेत्रों से। तानौ = उसकी तान ; फैलाओ। भेद = रहस्य। हौं जानौ = मेरी समझ मैं ऐसा ही आता

* लजाति लखैं अँग अंग अनग दिपैं झलकैं। † भेंटन।

क्यौँ हँसि हेरि हरयौ हियरा अरु क्यौँ हित कै चित चाह बढ़ाई।
काहे कौँ बोलि सुधासने बैननि चैननि मैन-निसैन चढ़ाई।
सो सुधि मो हिय मैँ घनआनँद सालति क्यौँ हूँ कढ़ै न कढ़ाई।
मीत सुजान अनीत की पाटी इते पै न जानियै कौने पढ़ाई ॥२१॥
गुन बाँधि लियौ हिय हेरत ही फिरि खेल कियौ अति ही उरझै।
गसिगौ कसि प्रीति के फंदनि मैँ घनआनँद छंदनि क्यौँ सुरझै।
सुधि लेत न भूलि हू ताकी सुजान सु जानि सकौँ न दुरी गुरझै।
अब याही परेखैँ उदेग-भरयौ दुख-ज्वाल-परयौ जुरझै मुरझै ॥२२॥
रूप के भारन होति है सौँहीँ लजौँहियै दीठि सुजान यौँ भूली।
लागियै जाति, न लागी कहूँ निसि, पागी तहीँ पलकौ गति भूली।
बैठियै जू हिय पैठत आजु कहा उपमा कहियै समतूली।
आए हौ भोर भएँ घनआनँद आँखिन माँझ तौ साँझ सी फूली ॥२३॥

कबित्त

प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान कहौ,
कैसैँ रहैँ प्रान जौ अनखि अरसायहौ।
तुम तौ उदार दीन हीन आनि परयौ द्वार,
सुनियै पुकार याहि कौ लौँ तरसायहौ।
चातिक है रावरो अनोखे-मोह-आवरो,
सुजान-रूप-बावरो बदन दरसायहौ।
बिरह नसाय दया हिये मै बसाय आय,
हाय कब आनँद को घन बरसायहौ ॥ २४ ॥
निरखि सुजान प्यारे रावरो रुचिर रूप,
बावरो भयौ है मन मेरो न सिखैँ सुनै।

है। [२१] मैन-निसैन = कामना की सीढ़ियाँ पर। [२२] छंदनि = छल-कपट से। दुरी० = छिपी गाँठ को। परेखैँ = पछतावे मैँ। जुरझै = जलता है। [२३] फूली = झुकी हुई है। समतूली = योग्य, तुल्य। साँझ० = अर्थात् आँखैँ लाल हैँ। [२४] अनोखे० = आप के विलक्षण प्रेम के कारण व्याकुल। [२५] सिखैँ = सीखैँ। उझलि = उड़ेलना, वर्षा। उनै = छाया हुआ।

मति अति छाकी गति थाकी रतिरस भीजि,
रीझ की उझलि घनआनँद रह्यौ उनै।
नैन बैन चित-चैन है न मेरे बस, मेरी
दसा अचिरज देखौ बूड़ति गेह गुनै।
नेह लाय कैसैं अब रूखे ह्वजियत हाय,
चंद ही के चाय च्वै चकोर चिनगी चुनै ॥ २५ ॥

तरसि तरसि प्रान जानमनि-दरस कौं,
उमहि उमहि आनि आँखिनि बसत है।
बिषम बिरह के बिसिष हियें घायल ह्वै,
गहवर घूमि घूमि सोचनि ससत है।
निसिदिन लालसा लपेटे ही रहत लोभी,
मुरझि अनोखी उरझनि मैं गसत है।
सुमिरि सुमिरि घनआनँद मिलन-सुख,
कटनि सौं आसा-पट कटि लै कसत है ॥२६॥

काहू कंजमुखी के मधुप ह्वै लुभाने जानै,
फूले रस-भूले घनआनँद अनत ही।
कैसें सुधि आवै बिसरे हू हो हमारी उन्हें,
नए नेह पाग्यौ अनुराग्यौ है मन तहीं।
कहा करैं जी तें निकसति न निगोड़ी आस,
कौने समझी ही ऐसी बनिहै बनत ही।
सुंदर सुजान बिन दिन इन तम सम,
बीतै तमी तारनि कौं तारनि गनत ही ॥ २७ ॥

एड़ी तें सिखा लौं है अनूठियै अँगेट आछी,
रोम रोम नेह की निकाई मैं रही है सनि।
सहज सुछबि देखें दबि जाहिं सबै बाम,
बिन ही सिँगार औरै बानिक बिराजै बनि।

गुनै = गुण ; रस्सी। [२६] ससत है = दम घुट रहा है। गसत है = ग्रस्त होता है। कटनि = ढब से। [२७] तमी = (तमिस्रा) रात। तारनि० =

गति लै चलत लखैं मतिगति पंगु होति,
दरसति अंगरंग-माधुरी बसन छनि।
हँसनि-लसनि घनआनँद जुन्हाई छाई,
लागै चौंध चेटक अमेट-ओपी भाहैं तनि ॥२८॥
रतिरंग-रागे प्रीति-पागे रैन-जागे नैन,
आवत लगेई घूमि भूमि छवि सौं छके।
सहज बिलोल परे केलि की कलोलन मे,
कबहूँ उमगि रहे कबहूँ जके थके।
नीकी पलकनि पीक-लीक-झलकनि सोहै,
रस-बलकनि उनमदि न कहूँ सके।
सुखद सुजान घनआनँद पोखत प्रान,
अचिरजखानि उघरे हू लाज सौं ढके ॥ २९ ॥
अनखि चढ़े अनोखी चित्त चढ़ै उतरै न,
मन-मग मूँदै जाको बेह सब ओर ते।
कूबरो सुकौ, न ठौन रंग-भीनी हौन जानै,
लाड़नि सु लसि हुलसति मति चोरतें।
बड़े मैन-मतवारे नैननि के बीच परी,
खरियै निडर ऊँची रहै रूप-डोर तें।
सहज बनी है घनआनँद नवेली नाक,
अनबन नथ सौं सुहाग की मरोर तें ॥ ३० ॥
केलि की कलानिधान सुंदरि सुजान महा,
आन न समान छवि-छाँह पै छिपैयै सौनि।
माधुरी-मुदित मुख उदित सुसील भाल
चंचल बिसाल नैन लाज-भीजियै चितौनि।

ाँखों से तारों को गिनते हुए। [२८] अँगोट = अंगदीप्ति। चेटक = जादू।
ामेट० = घुमाव से चमकती। [२९] बलकनि = उफान, प्रवाह। [३०]
ाह = छिद्र। सुकौ = शुक भी। ठौन = ठवनि, मुद्रा। मति० = बुद्धि को
ुराती हुई। रूप० = सौंदर्य की डोर। अनबन = बेढंगी। [३१] सौनि =

पिय - अंग - संग घनआनँद उमंग हिय,
सुरति - तरंग रस - बिबस उर-मिलौनि ।
झूलनि अलक, आधी खुलनि पलक, स्रम-
स्वेदहि झलक भरि ललक सिथिल हौनि ॥ ३१ ॥

अंग अंग स्याम-रंग-रस की तरंग उठै,
अति घहराय हिय प्रेम-उफनानि की ।
उमगनि भरी पूर-पानिप-सुढार ढरी,
मीठी धुनि करै ताप हरै अँखियानि की ।
महाछबि-भीर तीर गए तैं न टर्यौ जाय,
मोहनता-निधि बिधि पुहमी पै आनि की ।
भान की दुलारी घनआनँद जीवन-ज्यारी,
बृंदाबन-सोभा सीवँ सुख-सरसानि की ॥ ३२ ॥

सवैया

जा मुख हाँसी लसी घनआनँद कैसें सुहाति बसी तहाँ नाँसी ।
जा हिय तें हतियै नहिं तू हँसि बोलन कीकत कीजत हाँसी ।
पोखि रसै जिय सोखत क्यौं गुन बाँधि हू डारत दोष की फाँसी ।
हाहा सुजान अचंभो अजान ज्यौं भेदि कै गाँसहि बेधत गाँसी ॥ ३३॥

रीझि बिकाई निकाई पै रीझि थकी गति हेरत हेरन की गति ।
जोबन घूमरे नैन लखैं मतवारी भई मति वारि कै मोमति ।
बानी बिलानी सुबोलनि मैं अनचाहनि-चाह जिवावति है हति ।
जान के जी की न जानि परै घनआनँद या हू तें होति कहा अति ॥ ३४॥

सोने (कुंदन) का लाल वर्ण । लाज० = लज्जा से युक्त । [३२] पूर = प्रवाह । पानिप = जल ; शोभा । आनि = लाकर । भान = वृषभानु (राधा के पिता) । ज्यारी = जिलानेवाली । [३३] नाँसी = मारने की बान । भेद० = हृदय से पीड़ा की गाँठ काटकर अब भाले की नोक चुभो रहे हैं । [३४] रीझि० = स्वयं रीझ ही उस सौंदर्य पर रीझकर बिक गई । थकी० = उसके देखने की गति (ढंग) देखकर मेरी गति रुक गई । घूमरे = मतवाले । मोमति = अपनत्व को निछावर करके । अन० = न चाहनेवाली की

आड़ न मानति चाड़-भरी उघरी ही रहै अति लाग-लपेटी।
ढीठि भई मिलि ईठि सुजान न देहि क्यौं पीठि जु दीठि सहेटी।
मेरी ह्वै मोहिं कुचैन करै घनआनँद रोगिनि लौं रहै लेटी।
ओछी बड़ी इतराति लगी मुँह नेकौ अघाति न आँखि निपेटी॥ ३५॥
तब तौ छबि पीवत जीवत हे अब सोचन लोचन जात जरे।
हित-पोष के तोष सु प्रान पले बिललात महादुख-दोष-भरे।
घनआनँद मीत सुजान बिना सब ही सुख-साज-समाज टरे।
तब हार पहार से लागत हे अब आनि कै बीच पहार परे॥ ३६॥
चाह-बढ़्यौ चित चाक-चढ़्यौ सो फिरै तित ही इत नेकु न धीजै।
नैन थकै छबि-पान छकै घनआनँद लाज त्यौं रीझनि भीजै।
मोह मैं आवरी ह्वै बुधि बावरी सीख सुनै न दसा-दुख छीजै।
देह दहै न रहै सुधि गेह की भूलि हू नेह को नावँ न लीजै॥ ३७॥
पहिलैं अपनाय सुजान सनेह सौं क्यौं फिरि तेह कै तोरियै जू।
निरधार अधार दै धार-मँझार दई! गहि बाँह न बोरियै जू।
घनआनँद आपने चातिक कौं गुन-बाँधिलैं मोह न छोरियै जू।
रस प्याय कै ज्याय बढ़ाय कै आस बिसास मैं यौं बिष घोरियै जू॥ ३८॥
रति-सौं चें ढरी अछवाई भरी पिँडुरीन गुराइयै पेखि पगै।
छबि घूमि घुरै न मुरै मुरवान सौं लोभी खरो रस भूमि खगै।
घनआनँद एँड़िनि आनि मिड़ै तरवानि तरे तें भरै न डगै।
मन मेरो महाउर चायनि च्वै तुव पायनि लागि न हाथ लगै॥ ३९॥

चाह मारकर भी जिला रही है। जान० = जान (सुजान; जी) के जी की बात नहीं समझ पड़ती। [३५] आड़ = परदा। चाड़ = उत्कट इच्छा। लाग = लगन। सहेटी = घुमक्कड़। निपेटी = भुक्खड़। [३६] हित० = प्रेम का पोषण। [३७] न धीजै = ठहरता ही नहीं। आवरी = व्याकुल। दसा० = मेरी दशा दिनदिन दु:ख से क्षीण ही होती जाती है। [३८] तेह = रोष। गुन = गुण, डोर। बाँधिलैं = बँधे हुए को या बाँध लेकर। बिसास = विश्वास। [३९] अछवाई = अच्छाई, सुंदरता। मुरवा = एड़ी के ऊपर चारो ओर का घेरा। खगै = लीन हो जाता है। मिड़ै = चिपक जाता है। भरै = समय काटता

कवित्त

तोरै लाज-दामै सु छुड़ावै धाम-कामै,
बिसरावै बिसरामै सुधि सोखति सयान की।
चेटक लगावै मैन-आगिहि जगावै, प्रान
पैठि उमगावै ऐंठि मेटति गुमान की।
धुनि मैं बतावै मौन, थकनि जतावै गौन,
हौं न जानौं कौन बिधि सीखी तीखी तान की।
मुँह लागी गाजै घनआनँद बिराजै आज,
बाजै बन बंसी स्यामसुंदर सुजान की ॥ ४० ॥

सवैया

रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहिं आन तिहारियै।
एक ही जीव हुतौ सु तौ वार्‌यौ सुजान! सकोच औ सोच सहारियै।
रोकी रहै न, दहै घनआनँद बावरी रीझ के हाथनि हारियै ॥४१॥

रूप लुभाय लगी तब तौ अब लागति नाहिं सुभाय निमेखौ।
जो रस-रंग अभंग लह्यौ सु रह्यौ नहिं पेखियै लाखनि लेखौ।
हौ घनआनँद एहो सुजान तऊ ये दहै दुखदाई परेखौ।
आखिन आपनी आँखिन देख्यौ कियौ अपनो सपनेऊ न देखौ ॥४२॥

पीर की भीर अधीर भईं अँखियाँ दुखिया उमगीं झरना लौं।
रोकि रही उर-मेंड़ वही इन टेक यही जु गही सु दही हौं।

है। [४०] दाम = रस्सी। चेटक = जादू। मैन = काम। धुनि० = ध्वनि मैं मौन हो जाने का सकेत करती है, उसे सुननेवाला मौन साधने को विवश होता है। थकनि० = उसकी गति (गौन) रुकने का इंगित करती है। [४१] आन = शपथ। सहारियै = सहारा दीजिए। [४२] आँखिन० = अपनी आँखों से तो अपनी आँखें देख लीं (अपने ज्ञान की पहुँच से असंभव कार्य भी संभव कर लिया) पर अपना किया स्वप्न मैं भी (भूलकर भी) नहीं देखते। [४३] उर० = उस प्रवाह को रोकने के लिए छाती की जो मेंड़ थी वह भी बह गई,

भीजि बरैं घिय-धार परैं हिय आँसुनि यौं पजरै बिरहा दौं।
आनँद के घन मीत सुजान ह्वै प्रीति मैं कीनी अनीति कहा गौं ॥४३॥
फैलि रही धर अंबर पूरि मरीचिनि-बीचिनि-संग हिलोरति।
भौंर-भरी उफनाति खरी सु उपाव की नाव तरेरनि तोरति।
क्यौं बचियै भजि हू घनआनँद बैठि रहैं घर पैठि ढँढोरति।
जोन्ह प्रलै के पयोनिधि लौं बढ़ि बैरिनि आज बियोगिनि बोरति ॥४४॥

कबित्त

आई है दिवारी चीते काजनि जिवारी प्यारी,
खेलैं मिलि जूवा पैज पूरें दाव पावहीं।
हारहि उतारि जीतैं मीत-धन लच्छिन सो,
चोप-चढ़े बैन चैन-चहल मचावहीं।
रंग सरसावै बरसावै घनआनँद,
उमंग-ओपे अंगनि अनंग दरसावहीं।
दियरा जगाय जागें पिय पाय तिय रागें,
हियरा जगाय हम जोगहि जगावहीं ॥ ४५ ॥

सवैया

प्रान-पखेरू परे तरफैं लखि रूप-चुगो जु फँदे गुन-गाथन।
क्यौं हतियै हित पालि सुजान दया बिन ब्याध-बियोग के हाथन।
सालत बान समान हियैं सु लहे घनआनँद जे सुख साथन।
देहु दिखाय दई मुखचंद लग्यौ अब औधि-दिवाकर आथन ॥४६॥
रंग लियौ अबलानि के अंग तैं च्वाय कियौ चित चैन को चोवा।
और सबै सुख सोंधे सकेलि मचाय दियौ घनआनँद ढोवा।

छाती फट गई। दौं = अग्नि। गौं = घात। [४४] धर० = पृथ्वी से आकाश तक। मरीचि० = किरणों की लहरें। तरेर = थपेड़ा। ढँढोरति = ध्यान देकर ढूँढ़ती है। [४५] चीते = मनचाहे। जिवारी = जिलानेवाली। पैज = प्रतिज्ञा। हार = माला, पराजय। दियरा० = और तो दीपक जगाकर जागते हैं, पर हम हृदय को (प्रेमसाधना में) जगाकर योग (सयोग) जगाते हैं। उसे सिद्ध कर रहे हैं। [४६] चुगो = चारा। आथन लग्यौ = अस्त होने लगा।

प्रान-अबीरहि फेंट भरे अति छाक्यौ फिरै मति की गति खोवा ।
स्याम सुजान बिना सजनी ब्रज यौं बिरहा भयौ फाग बिगोवा ॥४७॥
रूप-चमूप सज्यौ दल देखि भज्यौ तजि देसहि धीर-मवासी ।
नैन मिलें उर के पुर पैठतै लाज लुटी न छुटी तिनका सी ।
प्रेम-दुहाई फिरी घनआनँद बाँधि लिये कुल-नेम गुढ़ासी ।
रीझ सुजान सची पटरानी बची बुधि बापुरी ह्वै करि दासी ॥४८॥

कबित्त

आस ही अकास-मधि अवधि-गुनै बढ़ाय,
चोपनि चढ़ाय दीनौ कीनौ खेल सो यहै ।
निपट कठोर एहो ऐंचत न आप-ओर,
लाड़िले सुजान सौं दुहेली दसा को कहै ।
अचिरजमई मोहिं भई घनआनँद यौं,
हाथ साथ लाग्यौ पै समीप न कहूँ लहै ।
बिरह-समीर की झकोरनि अधीर, नेह-
नीर भीज्यौ जीव तऊ गुड़ी लौं उड़्यौ रहै ॥४९॥
बिरह-दवागिनि उठी है तन-बन-बीच,
जतन सलिल के सु कैसें नीचियै परै ।
अंतर-पुढ़ाई फटै चटकत साँस-बाँस,
आस-लाँबी-लता हू उदेग-झर सौं जरै ।
दुख-धूम-धूँधरि मैं घिरे घुटैं प्रान-खग,
अब लौं बचे हैं जौ सुजान तनकौ ढरै ।
बरसि दरस घनआनँद अरस छाँड़ि,
सरस परस दै दहनि सब ही दरै ॥५०॥
जल-बूड़ी जेरैं दीठि पाई हू न सूझि परैं,
अमी पियें मरैं मोहिं अचिरज अति है ।

---

[४७] ढोवा = ढुलाई । बिगोवा = विनष्ट । [४८] मवासी = गढ़पति । गुढ़ासी = (गूढ़ाशय) विप्लव करनेवाले । सची = बनाई । [४९] गुनै = डोर को । दुहेली = दुःखमयी । [५०] पुढ़ाई = दृढ़ता ; पुष्टता । झर = ज्वाला ।

चीर सौं न ढकैं, बानी बिन बिथा बकैं,
दौरि परैं न निगोड़ी थकै वड़ी भूतागति है।
लगे तारे खुलैं आँखैं तारी त्यौं न पगैं पिय,
नींद-भरी जगैं इन्हैं अनोखियै रति है।
गुन बँधे कुल छूटे आपौ दै उदेग लूटैं,
उत जुरैं इत टूटैं आनँद बिपति है॥ ५१॥

रूप-गुन-मद-उनमद नेह-तेह-भरे,
छल-वल-आतुरी चटक-चातुरी पढ़े।
घूमत घुरत अरबीले न मुरत क्यौं हूँ,
प्रानन सौं खेलैं अलबेले लाड़ के बढ़े।
मीन-कंज-खंजन-कुरंग-मान-भंग करैं,
सींचे घनआनंद खुले सकोच सौं मढ़े।
पैने नैन तेरे से न हेरे मैं अनेरे कहूँ,
घाती बड़े काती लियैं छाती पै रहैं चढ़े॥ ५२॥

अंजन गंजत दीठि, मंजन मलीन करै,
रंजन-समाज-साज सजै उर-पीर को।
भूषन दगत, गुन दूषन लगत गात,
पूषन मुकुर, अंग सोखै संग चीर को।
जीयो विष-ज्वाल जीतै, बीतै घनआनँद यौं,
बन भौन कौन है धरैया अब धीर को।
रंग-रस-बरस सुजान के दरस बिन,
तीर तैं सरस बहै परस समीर को॥ ५३॥

सवैया

जोरि कै कोरिक प्राननि भावते संग लियैं अँखियानि मैं आवत।
भीजे कटाछन सौं घनआनँद छाय महारस कौं बरसावत।

अरस = आलस्य, नीरसता। [५१] भूतागति = भूत का सा व्यापार, विलक्षण बात। गुन = गुण, डोर। [५२] तेह = रोष। अरबीले = अड़नेवाले। अनेरे = आततायी, दुष्ट [५३] मंजन = मार्जन, स्नान। रंजन = प्रसन्न करनेवाले व्यापार।

ओट भएँ फिरि या जिय की गति जानत जीवनि ह्वै जु जनावत।
मीत सुजान अनूठियै रीति जिवाय कै मारत मारि जिवावत ॥५४॥
लाखनि भाँति भरे अभिलाषनि कै पल पाँवड़े पंथ निहारैं।
लाड़िली आवनि लालसा लागि न लागत हूं मन मैं पन धारैं।
यौं रस भीजे रहैं घनआनँद रीझै सुजान सरूप तिहारैं।
चायनि बावरे नैन कबै अँसुवान सौं रावरे पाय पखारैं ॥५५॥
सोवत भाग जगे सजनी दिन कोटिक या रजनी पर वारे।
नेहनिधान सुजान सजीवन औचक ही उर-बीच पधारे।
सौतिन तैं पिय पाय इकौसैं भरे भुज सोच-सकोच निवारे।
बैरिनि दीठि जरौ घनआनँद यौं जिय लै पल-पाट उघारे ॥५६॥

कवित्त

दरसन-लालसा-ललक-छलकनि पूरि,
पलकनि लागै लगि आवनि अरबरी।
सुंदर सुजान मुखचंद को उदै बिलोकैं,
लोचन-चकोर सेवैं आरति परब री।
अंग-अंग-अंतर-उमंग-रंग भरि भारी,
बाढ़ी चोप चुहल की हिय मैं हरबरी।
बूड़ि बूड़ि तरैं औधि-थाह घनआनँद यौं,
जीव सूक्यौ जाय ज्यौं ज्यौं भीजत सरबरी ॥ ५७ ॥
वैस की निकाई सोई रितु सुखदाई, तामैं
तरुनाई उलहत मदन मैमंत है।
अंग अंग रंग-भरे दल फल फूल राजैं,
सौरभ सरस मधुराई को न अंत है।
मोहन-मधुप क्यौं न लट्टू ह्वै लुभाय भट्टू,
प्रीति को तिलक भाल धरे भागवंत है।

---

[५४] भीजे = सरस। [५५] पन = प्रतिज्ञा। [५६] इकौसैं = अकेले, एकांत मैं।
[५७] अरबरी = व्याकुलता। आरति = दुःख। परब = पुण्यकाल, पूर्णिमा।
हरबरी = हड़बड़ी, उतावली। भीजत = बढ़ती है। सरबरी = शर्वरी, रात।

सोभित सुजान घनआनँद सुहाग-सींच्यौ,
तेरे तन-बन सदा बसत बसंत है ॥ ५८ ॥

ललित तमालनि सौं वलित नवेली बेलि,
केलि-रस झेलि हँसि लह्यौ सुखसार है।
मधुर बिनोद स्वेद-जलकन मकरंद,
मलय समीर सोई मोद-उदगार है।
वन का बनक देखि कठिन बनी है आनि,
वनमाली दूर आली सुनै को पुकार है।
बिन घनआनँद सुजान अंग पीरे परि,
फूलत बसंत हमैं होत पतझार है ॥ ५९ ॥

देखैं अनदेखनि-प्रतीति पेखियति प्यारे,
नीठ न परत जानि दीठ किधौं छल है।
दीपति-समीप की बिछोह माहिं पोहियत,
आरसी-दरस लौं परस ध्यान जल है।
पटी अटपटी दसा सोच-चटपटी-बीच,
बूड़त बिचारो जीव थाह क्यौं हूँ न लहै।
कहा कहौं आनँद के घन जानराय हौ जू,
मिले हूँ तिहारे अनमिले की कुसल है ॥ ६० ॥

तू ही गति मेरे मति नौछावरि करी, तेरे
रूप हेरें चोप-कूप गिरी लेजु लाज की।
सुनियै सुजान आन तेरीयै पखेरू-प्रान,
परे प्रीति-सिंधु आस तो हित जहाज की।
कीजै मनभाई इती कहि मैं जताई, तेरे
हाथ ही बड़ाई घनआनँद सु काज की।
हाहा दीन जानि याकी बीनतीयै लीजै मानि,
दीजै आनि औषद वियोग-रोगराज की ॥ ६१ ॥

५८] वैस = (वयस्) उम्र। [५९] झेलि = प्राप्त करके, भोग करके। तझार = पतझड़ ; प्रतिष्ठा की हानि। [६०] नीठ = कठिनाई से। दीठ =

सवैया

ह्वै निसवादिल जात रसौ मन तेरे सुभाव मिठासहि पागैं।
आनँद जान कहौं तुव आनन लागि न आन सों लोयन लागैं।
चैन मैं सैन करैं सब ओर तें भावते भाग जौ तो मिलि जागैं।
रंग रचैं सुठि संग सचै घनआनँद अंगन क्यौं सुख त्यागैं ॥६२॥

कबित्त

सब सों चिन्हारिहि बिसारि पल टारैं नाहिँ,
इक टक जोहिबे की जक जागियै रहै।
देखि देखि सुख भोय हँसि परैं रोय रोय,
चौंकैं चकि चाहनि मैं चिंता पागिय रहै।
तोरि लाज-साकैं घिरे हैं सोभा-साकैं,
सु क्यौं हूँ न निकास आस-पास खागियै रहै।
ऐसी कछु बानि चाह-बावरे दगनि आली,
दरस-मुकुंद-लालसाई लागियै रहै ॥ ६३ ॥

पल-दल-संपुट मैं मुँदै मन मोद मानै,
आरस-बिभावरी ह्वै होत भौंरहाई है।
द्वै सरोज बीच एक बसत रसत कैसैं,
लसत सु ऐसैं अचिरज अधिकाई है।
बाहिर तें रूप-मकरंद-पान करै पुन्य,
बड़ी भूतागति हेरैं मो मति हिराई है।
नयोई रसिक घनआनँद सुजान यह,
किधौं प्यारी तेरे नैन-सैन की निकाई है ॥ ६४ ॥

(दृष्ट) प्रत्यक्ष, सत्य। छल = भ्राति। अनमिले० = न मिलने का ही पोषण होता है, मिलने में भी पृथक् रहते हैं। [६१] लेजु = रस्सी। [६२] निसवादिल = स्वादहीन। सुठि = सुंदर। [६३] साँकैं = शृंखलाएँ। साँकैं = संकट मैं। आस० = आशा का फंदा पड़ा रहता है। [६४] भौंरहाई = भौंरों

सवैया

रस-रूसनैं रूखियै ऊठ अनूठियै लागति जागति जोति महा।
अनबोलनि पै बलि कीजियै बानी सु बोलनि की कहियै धौं कहा।
ननिहारनि हेरि न हारति दीठि औ पीठि दियें समुहात लहा।
घनआनँद प्यारी सुजान दै कान अहा सुनियै हित-बात हहा ॥ ६५ ॥

कवित्त

उर-गति ब्यौरिबे कौं सुंदर सुजान जू को,
लाख लाख बिधि सों मिलन अभिलाखियै।
बातैं रिस-रस-भीनी कसि, गसि गाँस झीनी,
बीनि बीनि आछी भाँति पाँति रचि राखियै।
भाग जागै जौ कहूँ बिलोकैं घनआनँद तौ,
ता छिन की छाकनि के लोचन ही साखियै।
भूलै सुधि सातौ दसा-बिबस गिरत गातौ,
रीझि बावरे ह्वै तब औरै कछू भाखियै ॥ ६६ ॥

सपने की संपति लौं भई है मलोलेमई,
मीत को मिलन-मोद जानौं न कहाँ गयौ।
जकी ह्वै थकी है जड़ताई जागि पागि पीर,
धीर कैसें धरौं मन सो धन झराँ गयौ।
हाय हाय अंगन की हीनता कहाँ लौं कहौं,
गए न लगेई संग रंग ह्व जहाँ गयौ।
राखे आप ऊपर सुजान घनआनँद पै,
पट के फटत क्यौं रे हियै फटि नाँ गयौ ॥ ६७ ॥

रावरे गुननि बाँधि लियौ हियो जान प्यारे,
इते पै अचंभो छोरि दीनी जु सुरति है।

का मँडराना। भूतागति = भूल की सी दशा, विलक्षण बात। [६५] ऊठ = उमग। ननिहारनि = (आप का मुझे) न देखना। [६६] गाँस० = छोटी फाँस। सुधि० = पाँचो ज्ञानेंद्रियाँ, मन और बुद्धि। [६७] झराँ = खो गया,

उघरि नचाय आपु चाय मैं रचाय हाय,
क्यौं करि बचाय दीठि यौं करि दुरति है।
तुम हूँ ते न्यारी है तिहारी प्रीति-रीति जानी,
ढीले हू परे तैं गरें* गाँठि सी घुरति है।
कैसें घनआनँद अदोपनि लगैयै खोरि,
लेखनि लिखार की परेखनि मुरति है॥ ६८॥

पौढ़े घनआनँद सुजान प्यारी परजंक,
धरे घन अंक तऊ मन रंक-गति है।
भूपन उतारि अंग अंगहि सम्हारि, नाना
रुचि के विचार सौं समोय सीझी मति है।
ठौर ठौर लै लै राखैं औरै और अभिलाखैं,
वनत न भाखैं तेई जानैं दसा अति है।
मोद-मद-छाके घूमैं रीझि भीजि रस भूमैं,
गहैं चाहि रहैं चूमैं अहा कहा रति है॥ ६९॥

हित कै हँकारौ तौ हुलासनि सहित धावै,
अनखि विडारौ तौ विचारो न कछू कहै।
पाल्यौ प्यार को तिहारौ नीकें तुम ही निहारौ,
हाहा जनि टारौ याहि द्वारौ दूसरौ न है।
आनँद के घन हौ सुजान आन दियैं कहौं,
मान दै न कीजै मान, दान दीजियै यहै।
देखें रूप रावरो भयौ है जीव वावरो,
उमंगनि उतावरो ह्वै अंगनि पर्यौ दहै॥ ७०॥

चोरी चला गया। पह = पैं। [६८] जानी = समझी। [६९] धन = धन्या, प्रिया। सीझी = भिनी हुई। [७०] आन = शपथ। मान० = प्रेमी का आदर करके उससे रूठिए मत। [७१] झरै = झड़ी ही। भीज = आर्द्रता।

* पै दियैं।

सवैया

मुख-चाहनि-चाह-उमाहन को घनआनँद लाग्यौ रहैई झरै।
मनभावन मीत सुजान-सँजोग बने बिन कैसें वियोग टरै।
कबहूँ जौ दई-गति सौं सपनो सो लखौं तौ मनोरथ-भीज भरै।
मिलि ह्वै न मिलाप मिलै तनकौ उर की गति क्यौं करि व्यौरि परै ॥७१॥
ए मन मेरे कहा करी तैं तजि दीन चल्यौ जु प्रबीन ह्वै तो सौ।
ल्यायौ न काहुवै आँखि तरे हौं कहूँ कबहूँ करि तेरो भरोसौ।
मीत सुजान मिल्यौ सु भली करी बावरे मोसौं भयौ कित रोसौ।
सोचत हौं अपने जिय मैं सपने न लहौं घनआँनद दोसौ ॥७२॥
आपु न अंगन संग को रंग भयौ रिस आनि कै अंग पजारत।
रावरे चैन को ऐन हियो है सु रैनदिना यह मैन उजारत।
और अनीति कहाँ लौं कहौं घनआँनद जो कछु आपदा पारत।
कैसें सुहाति सुजान तुम्हैं हितू मानि दई कोऊ ऐसे बिसारत ॥७३॥
रीझ तिहारी न बूझि परै अहो बूझति हैं कहो रीझत काहैं।
बूझि कै राझत हौ जु सुजान किधौं बिन बूझ की रीझ सराहैं।
रीझ न बूझौ तऊ मन रीझत बूझि न रीझे ह्वै और निबाहैं।
सोचनि जूझत मूझत ज्यौ घनआँनद रीझ और बूझहि चाहैं ॥७४॥

कबित्त

लहकि लहकि आवै ज्यौं ज्यौं पुरवाई पौन,
दहकि दहकि त्यौं त्यौं तन ताँवरे तचै।
बहकि बहकि जात बदरा बिलोकें हिय,
गहकि गहकि गहबरनि हियैं मचै।
चहकि चहकि डारै चपला चखनि चाहें,
कैसे घनआँनद सुजान बिन ज्यौ बचै।
महकि महकि मारै पावस-प्रसून-बास,
त्रासनि उसास दैया कौ लौं रहियै अचै ॥ ७५ ॥

---

[७३] आपु० = अंगों की सी बनावट काम में नहीं, वह अनग है। ऐन = घर। [७४] बूझ = बुद्धि। मूझत = बेसुध होता है। [७५] ताँवरे =-

ललित उमंग-बेली आलबाल-अंतर तेँ,
आनँद के घन सींची रोम रोम ह्वै चढ़ी।
आगम-उमाह-चाह छायौ सु उछाह-रंग,
अंग अंग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ी।
बोलत बधाई दौरि दौरि कै छबीले दृग,
दसा सुभ सगुनौती नीके इन पै पढ़ी।
कंचुकी तरकि मिले सरकि उरज, भुज
फरकि सुजान चोप-चुहल महा बढ़ी ॥ ७६ ॥

सवैया

घनआनँद-जीवनमूल सुजान की कौंधन हूँ न कहूँ दरसैँ।
सु न जानियै धौं कित छाय रहे दृग-चातिग-प्रान तपै तरसैँ।
बिन पावस तौ इन ध्यावस हो न सु क्यौं करि ये अब सो परसैँ।
बदरा बरसै रितु मैं घिरि कै नित ही अँखियाँ उघरी बरसैँ ॥ ७७ ॥
लहौं जान पिया लखि लाखन प्रान पै वारिबे की अभिलाष मरौं।
सु कहौं किहि भाँति अनोखियै पीर अधीर ह्वै नैननि नीर भरौं।
घनआनँद कीजै बिचार कहा महा रंक लौं सोच-सकोच ररौं।
चित-चोपन चाह के चौचँद मैं हहराय हिराय कै हारि परौं ॥ ७८ ॥

कबित्त

कोऊ मुँह मोरौ जोरौ कोरिक चवाई क्यौं न,
तोरौ सब कोऊ करि सोरौ मेरैं को सुनै।
नेह-रस-हीन दीन अंतर मलीन-लीन,
दोष ही मैं रहै गहै कौन भाँति वे गुनै।
रूप-उजियारे जान प्यारे पर प्रान वारे,
आँखिन के तारे न्यारे कैसें धौं करौं उनै।

ताप से। गहबरनि = व्याकुलता। चहकि० = जला देती है। अचै = पीकर [७६] सगुनौती = अर्थात् मंगलपाठ। [७७] कौंधा = चमक, झलक ध्यावस = स्थिरता, धैर्य। [७८] चौचँद = शोर। [७६] चवाई = बदनाम

टरै नहीं टेक एक यहै घनआनँद जौ,
निंदक अनेक सीस खीसनि परे धुनै ॥ ७६ ॥
नीके नैन ऐन पाय चैन पाय लाज हू को,
सोभा के समाज हेरैं हिय सियरात है।
एरी मेरी सहज लड़ीली अरबीली सुनि,
तेरो अंग-संग लहैं लाड़ौ लड़कात है।
रूप-मद-छाके तें गँवेली गरबीली ग्वारि,
तोहि ताकें रूपौ उमगनि उमदात है।
आनँद के घन सौं न कीजै मान जान प्यारी,
दान दीजै पिय सौं न मानै यौंही जात है ॥ ८० ॥
सोभा को निकेत नेति भाखत निगम जाहि,
ताके सुख हेत मीनकेत रसखेत है।
सकल बननि सिरमौर ठौर ठौर जाकी,
राखैं चख-ढौर और थाकै चित-चेत है।
राधा-पद-अंकित बिराजि रही मही महा,
श्रीपति-निवास हू तें दीपति उपेत है।
मधुर विनोद जहाँ आनँद-पयोद-झर,
रसिक पपीहा प्रान प्यासनि समेत है ॥ ८१ ॥

सवैया

तेरी निकाई निहारि छकै छवि हू को अनूपम रूप कढ़्यौ है।
ईठि ह्वै दीठि पै नीठि कटाछनि आय मनोज को चोज पढ़्यौ है।
आनँद के घन राग सौं पागि सुजान सुहागहि भाग बढ़्यौ है।
लाड़ तें लाड़िली होति है और पै तो तन लाड़हि लाड़ चढ़्यौ है ॥ ८२ ॥
घूँटै घटा चहुँघा घिरि कै गहि काढ़ैं करेजो कलापिन कूकै।
सीरी समीर सरीर दहै, चहकै चपला चख लै करि ऊकैं।

करनेवाले। खीस = लज्जा। [८०] अरबीली = हठी। लाड़ौ = प्यार भी बहल जाता है। गँवेली = गाँव की रहनेवाली। [८१] ताके० = रसमय कामदेव उसी के सुख के लिए है। राखै० = नेत्र उसे ही देखते हैं। उपेत = युक्त।

एहो सुजान तुम्हैं लगे प्रान सु पावस यौं तजि थ्यावस सूकें।
ह्वै घनआनँद जीवनमूल धरौ चित मैं कित चातिक-चूकैं ॥८३॥
अंजन त्यौर ही ताक्यौ करै नित पान लखै मुख त्यौं रँग-चायनि।
औरौ सिंगार सदा घनआनँद चाहैं उमाह सौं आपने दायनि।
तू अलवेली सरूप की रासि सुजान बिराजति सादे सुभायनि।
ऐ परि नाच कै साँच छक्यौ जु लट्टू भयौ लाग्यौ फिरै तुव पायनि ॥८४॥
मो दृग-तारनि जौ पै तिहारो निहारिबोई है महासुख-लाहौ।
तौ पै कहा हो हठीले सुजान ये चाहैं परे तुम नेकौ न चाहौ।
रावरी बानि अनोखियै जानि कै प्रान रचे तिहिं रंग सराहौ।
कै बिपरीति मिलौ घनआनँद या बिधि आपनी रीति निबाहौ ॥८५॥

कवित्त

ऊतर सँदेसो मिलैं मेल मानि लीजत हो,
ताहू को अँदेसो अब रह्यौ उर पूरि कै।
उठी है उदेग-आगि जीजै कौन आस लागि,
रोम रोम पीर पागि डारी चिंता चूरि कै।
निपट कठोर कियौ हियो मोह मेटि दियौ,
जान प्यारे नेरे जाय मारौ कित दूरि कै।
तरफौं बिसूरि कै बिथा न टरै मूरि कै,
उड़ायहौं सरीरै घनआनँद यौं धूरि कै ॥ ८६ ॥

सवैया

मिहँदी रँग पायनि रंग लहै सुठि सौंधो सु अंगनि संग बसै।
तरुनाई पै कोक पढ़ै, सुघराई सिखावति है रसिकाई रसै।
घनआनँद रूप-अनूप-भरी हित-फंदनि मैं गुन-ग्राम बसै।
सब भाँति सुजान न आन समान कहा कहौं आप तैं आप लसै ॥ ८७ ॥

---

[८२] चोज = उमंग। [८३] कलापी = मयूर। चहकै = जलाती है। ऊकैं = उल्का, लुक। थ्यावस = धैर्य। [८४] त्यौर = चितवन। ऐ परि = फिर भी। [८५] चाहैं = चाह में पडे हैं। [८६] नेरे० = निकट (अनुकूल) होकर और फिर दूर (प्रतिकूल) होकर। [८७] सुठि = सुदर, उत्कृष्ट।

कवित्त

कौन की सुजस-जोन्ह अमल अपूरब को,
जग मैं उदोत देखियत दिनरैन है।
जाकी जोति जागै रस पागै हो चकोर-नैन,
बुध कवि मित्रन को पोखै मन चैन है।
नेह-निधि बाढ़्यौ घनआनँद गुननि सुनि,
अचिरज-ऐन सो निहारौं कहूँ मैं न है।
बिरह बिडारि औ बिदारि दुख-तम कब,
सींचौगे स्रवन कहि सुधासने बैन है॥ ८८॥

मोहिं दीठि-कारन हौ दुख-तम-टारन हौ,
प्रीति-पन-पारन हौ कहाँ लौं कहौं जसै।
लोचननि तारे अचिरज-भारे जान प्यारे,
तुम ही तैं पियत तिहारे रूप के रसै।
बात अटपटी बढ़ी चाह-चटपटी रहै,
झटझटी लगै जौ पै बीच बरुनी बसै।
लै लै प्रान वारौं इक टक धारौं यौं बिचारौं,
हाहा घनआनँद निहारौ दीन की दसै॥ ८९॥

जेतो घट सोधौं पै न पाऊं कहाँ आहि सो धौं,
को धौं जीव जारै अटपटी गति दाह की।
धूम कौं न धरै, गात सीरो परै ज्यौं ज्यौं जरै,
ढरै नैन नीर बीर! हरै मति आह की।
जतन बुझै हैं सब जाकी झर आगें, अब
कबहूँ न दबै भरी भभक उमाह की।

सौंधो = सुगंध,इत्र आदि। कोक = कोकशास्त्र के निर्माता। सुरघाई = चतुरता। [८८] अपूरब = पूर्वेतर दिशा ; अद्वितीय। बुध = ग्रह, पंडित। कबि = शुक्र ; काव्यकर्ता। मित्र = सूर्य ; सखा। निधि = समुद्र। [८९] झटझटी = देखते हुए भी न दिखाई पड़ना। [९०] घट = शरीर। बीर = हे सखी। मति० = 'आह' करने की चेतना। झर = ज्वाला। उमाह = उमंग।

जब तेँ निहारे घनआनँद सुजान प्यारे,
तब तेँ अनोखी आगि लागि रही चाह की ॥ ९० ॥
अवधि सिराएँ ताप-ताते ह्वै कलमलाय,
आपु चाय-बावरे उमहि उफनात हैँ।
दरस-दुखारे चैन-बंचित बिचारे हारे,
आँखिन के मारे आय तहीँ मड़रात हैँ।
इते पै अमोही घनआनँद रुखाई, उर
सोचनि समाय कै थहरि ठहरात हैँ।
जानि अनखौँहीँ बानि लाड़िले सुजान की सु,
करि हूँ पयान प्रान फेरि फिरि जात हैँ ॥ ९१ ॥
साहस सयान ज्ञान ताकत तुम्हैँ सुजान,
तब ही सबनि तजी अब हौँ कहा तजौँ।
रावरेई राखे प्रान रहे, पै दहे निदान,
यौँ ही इन काज लाज बिन हौँ खरी लजौँ।
ऐसी कै बिसारी गौँ तिहारी न बिचारी परै,
आनँद के घन हौ अमोही जो ढरौ अजौँ।
कौन बिधि कीजै कैसेँ जीजै सो बताय दीजै,
हाहा हो बिसासी दूरि भाजत तऊ भजौँ ॥ ९२ ॥
घेर्‍यौ घट आय अंतराय-पटनि-पट पै,
ता मधि उजारे प्यारे पानस के दीप हौ।
लोचन-पतंग संग तजै न तऊ सुजान,
प्रान-हंस राखिबे कौँ धरे ध्यान-सीप हौ।
ऐसेँ कहौ कैसेँ घनआनँद बताऊँ दूरि,
मन-सिँघासन बैठे सुरत-महीप हौ।

---

[९१] सिराएँ = बीत जाने पर, ठंढी पड़ने पर। अनखौँहीँ = रूठनेवाली। [९२] सयान = चतुरता। निदान = अंत मेँ। गौँ = बात। बिसासी = विश्वासघाती। भाजत = भागते हो। भजौँ = भजती हूँ। [९३] घट = शरीर ; फानूस की हाँडी। अंतराय = विघ्न। पटनि० = परत पर परत करके लपेटे वस्त्र। पानस =

दीठि-आगे डोलौ जौ न बोलौ कहा बस लागै,
मोहिं तौ बियोग हू मैं दीसत समीप हौ ॥ ९३ ॥

सवैया

मीठे महा गरुवे गुनरासि ह्वै हूजत क्यौं करुवे गहि दोसनि ।
आपुन त्यौं तकियै सकियै कहि हाहा हठीले न रूसियै रोसनि ।
तासौं इती अनखानि कहा घनआनँद जो भिजई है भरोसनि ।
वारियै कोरिक प्रान सुजान हौ पै परि यौं मरियैगो मसोसनि ॥९४॥
हित-भूलनि पै कित भूलि रहे अहो भूलि हू नीके न जानत हौ ।
उहि भूलनि संग लगी सुधि है जु सुजान सदा उर आनत हौ ।
घनआनँद सोऊ न भूलत क्यौं जु पै भूलि ही कौं ठिक ठानत हौ ।
तब भूलि कै लैहौ कछू सुधि तौ चित दै इतनी किन मानत हौ ॥९५॥

कवित्त

रूप की उझलि आछे आनन पै नई नई,
तैसी तरुनई तेह - ओपी अरुनई है ।
उलटि अनंग-रंग की तरंग अंग अंग,
भूषन-वसन भरि आभा फैलि गई है ।
महारस-भीर परैं लोचन अधीर तरैं,
आछी ओक धरैं प्यास-पीर-सरसई है ।
कैसें घनआनँद सुजान प्यारी छबि कहौं,
दीठि तौ चकित औ थकित मति भई है ॥९६॥

फानूस । पतग = फतींगा । सुरत० = स्मृति के शासक । [९४] मीठे = मधुर , प्रिय । करुवे = कड़वे ; विमुख । त्यौं = ओर । भिजई = सरस की । पै परि = फिर भी । [९५] भूलि रहे = मगन हो रहे हैं । सुधि = आप मेरे भूलने में अपनी चेतना लगाए हुए हैं, अतः मेरी सुध इसी बहाने आप के मन पर चढ़ती रहती है । सोऊ० = यदि भूलने का ही निश्चय कर लिया है तो मेरे भूलने को ही क्यों नहीं भूल जाते । भूलि कै = भूले भटके । [९६] उझलि = उमडाव । तेह = तीखापन । उलटि = एक पर एक चढ़कर । ओक = अंजली ।

नीकी नासापुट ही की उचनि अचंभे-भरी
मुरि कै इचनि सौं न क्यौं हूँ मन तें मुरै।
रूप-लाड़ जीवन-गरूर चोप-चटक सौं,
अनखि अनोखी तान गावै लै मिहीं सुरै।
सहज हँसौंहीं छबि फबति रँगीले मुख,
दसननि जोतिजाल मोतीमाल सी रुरै।
सरस सुजान घनआनँद भिजावै प्रान,
गरबीली ग्रीवा जब आनि मान पै ढुरै ॥ ६७ ॥

अलग भयौ है लगि तुम्है और ठौरन तें,
सुलग्यौ करत ऐसी गति लागी मो हियै।
क्यौं हूँ न परत गह्यौ रह्यौ गहि एक टेक,
आनँद के घन आप अधिक अमोहियै।
खरक दुहेली हो असुझ रूप रावरे की,
दीठि पाय काँटौ कहौ कौन विधि टोहियै।
जब तें सुजान प्रानप्यारे पुतरीनि-तारे,
आँखिन बसे हौ सब सूनो जग जोहियै ॥ ६८ ॥

सवैया

दृग छाकत हैं छवि ताकत ही मृगनैनी जबै मधुपान छकै।
घनआनँद भीजि हँसै सु लसै झुकि झूमति घूमति चौंकि चकै।
पल खोलि ढकै लगि जात जकै न सम्हारि सकै बलकैऽरु बकै।
अलबेली सुजान के कौतुक पै अति रीझि इकौसी ह्वै लाज थकै ॥ ६९ ॥

---

[६७] न मुरै = हटती नहीं। मिहीं० = मंद मधुर स्वर से। रुरै = छा जाती है। ढुरै = मुद्रा के साथ मुड़ती है। [६८] सुलग्यौ० = सुलगता (जलता) रहता है ; भली भाँति लगता है। खरक = खटक। दुहेली = दुखद। दीठि० = दृष्टि रहते भी काँटा कैसे टटोल सकूँ, क्योंकि आप के रूप की खटक असूझ जो है। [६९] मधु = शराब। भीजि = शरूर चढ़ने पर। बलकै = नशे में उमंगित होती है। इकौसी = अकेली। [१००] आन = अन्य। आन = शपथ। ज्यारी =

कवित्त

जब तें निहारे इन आँखिन सुजान प्यारे,
तब तें गही है उर आन देखिवे की आन।
रस-भीजे बैननि लुभाय कै रचे हैं तहीं,
मधु-मकरंद-सुधा नावौ न सुनत कान।
प्रानप्यारी न्यारी घनआनँद गुननि कथा,
रसनौ रसीली निसिबासर करत गान।
अंग अंग मेरे उन ही के संग रंग रँगे,
मन-सिंघासन पै विराजै तिन ही को ध्यान ॥१००॥

सवैया

पानिप-मोती मिलाय गुही गुन-पाट पुही सु जु ही अभिलाखी।
नीके सुभाय के रंग भरी हित-जोति खरी न परै कछु भाखी।
चाह लै बाँधी दै प्रीति की गाँठि सु है घनआनँद जोवन* साखी।
नैननि पानि विराजति जान जू रावरे रूप अनूप की राखी ॥१०१॥
सोभा-सुमेरु की संधितटी† किधौं सोभित मान-मवास की घाटी।
कै रसराज-प्रवाह को मारग वेनी विहार सौं यौं दृग दाटी।
काम-कलाधर ओप दई मनौ प्रीतम-प्यार-पढ़ावन-पाटी।
जान की पीठि लखैं घनआनँद आनन आन तें होत उचाटी ॥१०२॥
ढिग बैठे हू पैठि रहै उर मैं घर कै दुख को सुख दोहत है।
दृग-आगे तें वैरी टरै न कहूँ जगि जोहन-अंतर जोहत है।

जिलानेवाली। [१०१] पानिप = शोभा। गुन = गुण ; डोर। पाट = रेशम। ही = हृदय। चाह = इच्छा। नैननि० = नेत्रों के हाथ में। राखी = रक्षा का डोरा। [१०२] सुमेरु = पहाड ; मेरुदंड। संधितटी = सधिस्थल। मवास = पहाडी किला। रसराज = श्रृंगार ; जलराशि। विहार० = हिलने से। दाटी = प्रतीत होती है। ओप० = घोटकर चमकाई। पाटी = पट्टी, पटिया। आन = अन्य। उचाटी = उच्चाटित। [१०३] ढिग = पास। जोहन० = देखने के समय

* जीवन। † सिंधुतटी।

घनआनँद मीत सुजान मिलैं बसि बीच तऊ मन मोहत है।
यह कैसो सँजोग न बूझि परै जु बियोग न क्यौं हूँ बिछोहत है ॥१०३॥

कबित्त

गहैं एक टेक टारि दीने हैं बिबेक सब,
कौन प्यास-पीर-पूरे नीरहि रितौत हैं।
कैसें कही जाय हेली इनकी दुहेली दसा,
जैसें ये बियोगी निसिबासर वितौत हैं।
कहिबे कौं मेरे पै अनेरे ये रे जाहिं नाहिं,
अति ही अमोही मोहि नेकौ न हितौत हैं।
जब ते निहारे घनआनँद सुजान प्यारे,
तब तैं अनोखे दृग काहिं न चितौत हैं ॥ १०४ ॥

तैं मुँह लगाई तातैं मोहि मौन ही की कथा,
रसना के उर एकरस रही बसि है।
तेरी सोई जान सोई जानै जिन जोही छबि,
क्यौं धौं इन नैनन ते नींद गई नसि है।
छोरि छोरि डारे जे जे भूषन बिदूषन से,
तहीं तहीं लगि लोभी मन गयौ गसि है।
आरस-रसीली घनआनँद सुजान प्यारी,
ढीली दसा ही सौं मेरी मति लीनी कसि है ॥ १०५ ॥

चलदल-पात की प्रभा को है निपात जातैं,
यातैं बाय बावरो डराय काँपिबो करै।
थोरे थिर गुन मैं बिराजै चिर आभा ऐन,
नैन हेरैं हेरनि हिये मैं भूख लै भरै।

बीच मैं से झाँकता रहता है। [१०४] रितौत = खाली करते हैं, (आँसू) टपकाते हैं। हेली = हे अली। दुहेली = दुखद। अनेरे = विलक्षण, अपरिचित। न हितौत = हित नहीं करते, अनुकूल नहीं रहते। काहिं = किसी को भी। [१०५] सोई = सोई हुई। सोई = वही। गसि गयौ = चिपट गया।

नेकौ सनमुख भएँ दीजै सब तन पीठि,
नीठि हाथ लागै मन पायन कहूँ परै।
ताकैं तो उदर घनआनँद सुजान प्यारी,
ओछी उपमानि कोगरूर ओरे लौं गरै ॥ १०६॥

बेध्यौ ल विसासी मोहि गाँसी नेकु हाँसी ही मैं,
घूमि घूमि मेरो घनो मरम महा पिराय।
होत न लखाय क्यौं हूँ घाय हाय कहा करौं,
जरौं विषज्वाल पै न काल कैसें हूँ निराय।
जीवन की मूरि जाहि मान्यौ तिन चूरि करी,
खरी विपरीति दई हेरि हौं गई हिराय।
है री घनआनँद सुजान बैरी पैंड़े पर्यौ,
दे री अब उतर यौं धीर ह्वै चल्यौ धिराय ॥ १०७॥

सवैया

जिन ही बरुनीन सों बेध्यौ हियौ तिन ही दृग-हाथ सिवावत हौ।
बिष-भोए कटाछिन ही हँसि दै जु सुजान सुधाहि पिवावत हौ।
अनबोले रहौ जु अनोखे अजौं रस मैं अब रोष दिवावत हौ।
घनआनँद चूकौ न दाव कहूँ फिरि मारन चाव जिवावत हौ ॥१०८॥

उर आवति है अपने कर ह्वै बर बेनी बिसाल* सौं नीकैं कसौं†।
अति दीन ह्वै नीचियै दीठि कियें अनखैंहिं सुभाव के त्रास त्रसौं।

[१०६] चलदल० = पीपल का पत्ता, जिसकी उपमा पेट से दी जाती है। निपात = पतन। बाय = वायु। ऐन = भरपूर। पीठि देना = विमुख होना। नीठि = कठिनाई से। तो = तेरा। [१०७] मरम = मर्मस्थल। घाय = घाव। न निराय = निकट नहीं आता। पैंड़े० = पीछे पड़ा। धिराय = धीरे धीरे, धैर्य-पूर्वक। [१०८] तिन० = उन्हीं नेत्रों के हाथ से मेरा कटा हृदय सिलाते हैं, उन्हीं नेत्रों को देखकर चित्त प्रसन्न होता है। बिष० = विषयुक्त। अजौं =

घनआनँद यौँ बहु भाँतिनि हौँ सुखदान सुजान-समीप बसौँ।
हित-चायनि च्वै चित चाहत नै नित पायनि ऊपर सीस घसौँ ॥१०९॥
साँच के सान-धरे सुर-बान पै छूटैँ बिना ही कमान सौँ जोटैँ।
दीसैँ जहीँ के तहीँ सु चलैँ अति घूमति है मति या चख-चोटैँ।
घाव को चाव बढ़ै घनआनँद चाड़नि लै उर आड़नि ओटैँ।
प्रान सुजान के गान-बिँधे घट लोटैँ परे लगि तान कचोटैँ* ॥११०॥
रावरे रूप की रीति नई यह जोहन राखत लै गहि गोहन।
जान न देत कहूँ कबहूँ तिन लेत है दो करि दीठि को दोहन।
सूझ सबै जु टरै घनआनँद बूझि परै न महा मति-मोहन।
देखै कहा जौ न दीसौ इते पर हाहा सुजान तिहारियै सौँहन ॥१११॥

कबित्त

मोहिँ दुख-दोष सोखै पोखै सुख तोहि, मोहिँ
चिंता-चिता चूरि तोहि राखै निधरक है।
र्‌वाय कै जगावै मोहिँ बिहँसावै स्वावै तोहि,
तेरैँ भूल भरै मोहिँ सालै ज्यौँ करक है।
तोहि चैत-चाँदनी मैँ सरसै हरष-सुधा,
मोहिँ जारै मारै ह्वै बिषाद को अरक है।
कहूँ घनआनँद घमड़ उघरत कहूँ,
नेह की बिषमता सुजान अतरक है ॥११२॥
जोबन-रूप-अनूप-मरोर सौँ अंगहि अंग लसै गुन-ऐंठी।
चातुरी-चोख मनोज के चोजनि घूघरिवारियै ऊठ अमैंठी।

अब भी। [१०९] नै = झुककर। [११०] सुर० = स्वररूपी वाण। जोटैँ = प्रतिपक्षी पर। चाड़ = उत्कंठा। कचोटैँ = व्यग्र होते हैँ। [१११] गोहन = साथ। दीठि० = दृष्टि को दुह लेता है। सौँहन = शपथैँ। [११२] र्‌वाय = रुलाकर। करक = कड़क, टीस। अरक = अर्क, सूर्य। अतरक = अतर्क्य। [११३] गुन = गुण ; डोर। चोख = फुरती। ऊठ = उठान।

* की चोटैँ।

सूधे न चाहै कहूँ घनआनँद सोहै सुजान गुमान-गरैंठी।
पैठत प्रान खरी अनखीला- सु नाक चढ़ाएई डोलत टैंठी ॥११३॥
गोरे डडा पहुँचानि बिलोकत रीझि रँग्यौ लपटाय गयौ है।
पन्ननि की पहुँचीन लखैं इन आभा-तरंगनि संग रयौ है।
नीलमनीनि हियैलैं बनी रुचि-रूप-सनी सु घनीन छयौ है।
चारु चुरीनि चितै घनआनँद चित्त सुजान के पानि भयौ है ॥११४॥

कबित्त

प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै बिचार,
बापुरो हहरि वार ही तें फिरि आयौ है।
ताही एकरस ह्वै बिवस अवगाहैं दोऊ,
नेही हरि-राधा जिन्हैं देखैं सरसायौ है।
ताकी कोऊ तरल तरंग-संग छूट्यौ कन,
पूरि लोकलोकनि उमगि उफनायौ है।
सोई घनआनँद सुजान लागि हेत होत,
ऐसैं मथि मन पै सरूप ठहरायौ है ॥११५॥

लालसा ललित मुख-सुषमा निहारिबे की,
बरनी परै न ज्यौं भरी है नैन छाय कै।
ठौर के सँकोच दीठि हू कौं अति सोच बाढ़्यौ,
बिना तुम्हैं कहौ और कहाँ रहै जाय कै।
बानिक-निकाई नीकैं हेरियै सुजान हौ जू,
कीजियै कहा धौं सोऽब दीजियै बताय कै।
एक ठावँ दुहुनि बसैयै सुख-दुख कैसैं,
हाहा घनआनँद सुरस बरसाय कै ॥ ११६ ॥

अमैंठी = उमेठी हुई। गरैंठी = टेढ़ी। टैंठी = (प्राकृत टेंटा) चंचल। [११४] गोरे = अर्थात् सोने के। डडा = कँगना। पहुँचा = कलाई। पहुँची = एक गहना। रयौ = लीन हो गया। हियैलैं = कदाचित् पछेली। [११५] वार = इस ओर का तट, किनारा। सरूप = प्रेम का रूप। [११६] सुरस = जल; आनंद,

सोभा-लोभ लागि अंग-रंग-संग प्रीति पागि,
जागि जागि नेकौ न निमेष टेक तें टरी।
बोलनि चितौनि चारु डोलनि कलोलनि सौं,
चाहि चाहि रंक लौं सु संपति हियें धरी।
ऐसें ही मैं असह बिरह कित हू तें आय,
बावरे-सुभाय-बस कुटिलाई है करी।
अब घनआनँद सुजान [1]प्रानदान भेटौं,
बिधि बुधिआगर पै जाचत वहै घरी ॥११७।

प्रानन के प्रान एहो सुंदर सुजान सुनौ,
कान धरि बात, नेकु मेरी ओर चाहियै।
रूप दरसाय चोप चाय सरसाय हाय,
ल्याए करि हाँसी मैं बिसास हरि ता हियै।
भीजे घनआनँद बिराजौ निधरक तुम,
ताहि चिंता-चिता-बीच ऐसें अब दाहियै।
सब बिधि लायक नवल नेही नायक हौ,
कहाँ लौं रसीले गुनगननि सराहियै ॥११८॥

सवैया

देखि सुजान छए घनआनँद ढीठ भए सु न नीठ सकोचत।
चाह के दाह भरे कित तें नित पीर अधीर ह्वै नीरद मोचत।
लोभी तऊ अकुलाय कै प्यासनि रूप के पानिप-लेस कौं लोचत।
नैन असोचिन की गति हेरि कै बीतत री निसिबासर सोचत ॥११९

तेरी बिना ही बनाय की बानिक जीतै सची-रति-रूप-भलापन।
को कबि सो छबि कौं बरनै रचि राखनि अंग सिंगार-कलापन।
कान ह्वै तान को रूप दिखावति जान जबै कछु लागै अलापन।
नाचहि भाव को भेद बतावत, है घनआनँद भौंह-चलापन ॥१२०

प्रेम। [११७] प्रानदान = जीवनदायिनी। [११८] भीजे = सरस, सुखी [११९] नीठ = कठिनाई से भी। नीरद = बादलों सी अश्रुवृष्टि। पानिप = पानी; शोभा। [१२०] बनाव = सजावट। सची = इंद्राणी। भलापन =

कवित्त

मोहिं मेरे जिय की जनायबो अजानता है,
जानराय जानत हौ सकल-कला-प्रवीन।
औगुन विचारौ जौ पै तौ गुन कहा तिहारौ,
आप त्यौं निहारौ पन पारौ जू सँभारौ दीन।
जतन कहा बताऊँ तुम ही तैं तुम्हैं पाऊँ,
रावरोई जस गाऊँ बावरे लौं हितलीन।
रहौं लगि आस घनआनँद मिलन-प्यास
एहो रसरासि ज्याय लीजै ढरि निज मीन ॥ १२१ ॥

सब विधि लायक असेष सुखदायक हौ,
तुम हीं पै बनै वेसम्हारनि सम्हारिबो।
निघटत नाहिं मो घटाई, उघटत क्यौं हूँ
रावरी बड़ाई आहि प्रीतिपन पारिबो।
एहो घनआनँद सुजान एक टेक हीं सौं,
चातिक विचारे को है जीवनि विचारिबो।
यातें निसदिन सब रस दरसाएँ, और
टक जक लाएँ लाभी करत निहारिबो ॥ १२२ ॥

नेही-सिरमौर एक तुम ही लौं मेरी दौर,
नाहिं और ठौर, काहि साँकरै सम्हारियै।
दरसन-दान दीजै भावते सुजान, रहे,
आसा लागि प्रान आन बोलत तिहारियै।
गुनमाला फेरौं, निगुनी ह्वै नित हित हेरौं,
विरह-अधीर टेरौं पीरहि निवारियै।

उत्तमता। कलापन = समूह। चलापन = चचलता। [१२१] अजानता = अज्ञान। जानराय = ज्ञानियों में श्रेष्ठ। रसरासि = आनंद की राशि; समुद्र। [१२२] निघटत० = घटती नहीं। उघटत = कहने से। जीवनि = जीना। [१२३] साँकरें = संकट में। आन = दुहाई। माला = समूह; जपमाला

पन तन ताकौ जो हो काचो सो तौ आहि पाकौ,
आनँद के घन प्रीति-साकौ न बिगारियै ॥ १२३ ॥
मेरी मति- बावरी ह्वै जाय जानराय प्यारे,
रावरे सुभाय के रसीले गुन गाय गाय।
देखन के चाय प्रान आँखिन मैं झाँकैं आय,
राखौं परचाय पै निगोड़े चलैं धाय धाय।
बिरह-बिषाद छाय आँसुन को झर लाय,
मारै मुरझाय मैन-तावरेन ताय ताय।
ऐसैं घनआनँद बिहाय न बसाय दाय,
धीरज बिलाय बिललाय कहौं हाय हाय ॥ १२४ ॥
बैनन मैं बोलै, नैन-ऐन चैन सौं कलोलै,
गैन-संग डोलै पै न परस-परोस है।
हेरति हिरावैं, एकै ठौर हू न लहौं ठावैं,
झुरि मुरि झावदार ऐसी पीर को सहै।
पाय न परति बात प्रान पौढ़ि करै घात,
जानराय प्यारे को नवेलो रस-रोस है।
आपने किये की छाँह बैठियै बखानै जग,
वे तो घनआनँद मो देखन को दोस है ॥ १२५ ॥
रूप-मतवारी घनआनँद सुजान प्यारी,
घूमरे कटाछि घूम करैं कौन पै घिरैं।
नाच की चटक लसै अंगनि मटक-रंग,
लाड़िली लटक-संग लोयन लगे फिरैं।
अभिनै-निकाई निरखत ही बिकाई मति,
गति भूली डोलै-सुधि सोधौ न लहौं हिरैं।

तन = ओर। साकौ = ख्याति। [१२४] निगोडे = बुरे (गाली); पैर से हीन। तावरेन = ताप, ज्वर। न बसाय = वस नहीं चलता। [१२५] ऐन = घर। गैन = गमन। परस० = स्पर्श की निकटता। झावदार = परिपूर्ण। पाय० = समझ मैं नहीं आती। प्रान० = प्राणों मैं लेटकर, बसकर। [१२६] घूमरे =

राते तरवानि तरें चूरे चोप-चाड़-पूरे,
पाँवड़े लौं प्रान रीझि ह्वै कनावड़े गिरैं ॥ १२६ ॥

अंग अंग छाई है उद्वेग-उरझानि महा,
साँस लैबो आली गिरि हू तें गरुवौ लगै।
जोबन-सरूप-गुन सूल से सलत गात,
तूल तिनका लौं ह्वै गुमान हरुवौ लगै।
सुंदर सुजान प्रान प्यारे के निहारे बिन,
दीठि तौ अदीठि सी उजार घरुवौ लगै।
और जे सवाद घनआनँद बिचारै कौन,
बिरह बिषाद-जुर जीवो करुवौ लगै ॥ १२७ ॥

जे दृग सिराए घनआनँद दरस-रस,
ते अब अमोही दुख-ज्वाल जारियत है।
तोखे हित-पोखे नित जेई प्रान राखि साथ,
तेई कै अनाथ यौं अकेले मारियत है।
कौन कौन बात को परेखो उर आनियै हो,
जान प्यारे कैसें विधि-अंक टारियत है।
थाती लौं तिहारी प्रीति छाती पै बिराजि रही,
हेरि हेरि आँसुन-समूह ढारियत है ॥ १२८ ॥

गोकुल-नरेस नंद बंस को प्रसंस बंदि,
सोभा-सुखकंद प्रेम - अमिय - निवास है।
जो नित चकोर-चोप तो हित भख्यौ ही रहै,
सुनियै सुजान कौन माधुरी - बिलास है।
उदित जुन्हाई ऐसें मेरे मन आई,
जैसें बाढ़्यौ घनआनँद सुदृष्टि-झर आस है।

मत्त। अभिनै = अभिनय, नाट्य। सोधौ = खोज भी। कनावड़े = दबैल। [१२७] सलत = घुसते हैं। तूल = रूई। हरुवौ = हल्का। [१२८] सिराए = शीतल हुए। परेखो = पछतावा। विधि॰ = भाल में ब्रह्मा के लिखे अक्षर। [१२९] बंदि = तू वंदना कर। झर = झड़ी। कीरति के॰ = कीर्ति (राधिका की

जगत मैँ जोति एक कीरति की होति है, पै,
राधिका तौ कीरति के कुल को प्रकास है ॥ १२९ ॥

सवैया

फल होत दियेँ सम कै अधिकै बरनैँ कबि कोबिद यौँ सब ही।
बिपरीत लखी यह रीति अहो, परतीति-गही मति मोह बही।
उत कौँ घनआनँद गौँ है यही, इत की जु सुजान बनी सु सही।
दुख दै सुख पावत हौ तुम तौ चित के अरपे हम चित लही ॥१३०॥
नैन कहै सुनि रे मन! कान दै क्यौ इतनो गुन मेटि दयौ है।
सुंदर प्यारे सुजान को मंदिर बावरे तू हम ही तेँ भयौ है।
लाभी तिन्हैँ तनकौ न दिखावत ऐसो महामद छाकि गयौ है।
कीजियै जू घनआनँद आय कै पाय परौँ यह न्याय नयौ है ॥१३१॥
नाच लटू ह्वै लग्यौ फिरै पायनि चायनि चाहि लड़ीलियै डोलनि।
त्यौँ सुर-साँच-सवाद सनेँ मन भूठियै लागति बीन की बोलनि।
नेकु हँसैँ सु करोरिक चंदनि चेरो करै दुति-दंत-अमोलनि।
ऐसी सुजान लखैँ घनआनँद नैन परं रस-मैन-कलोलनि ॥१३२॥
मादिक रूप रसीले सुजान को पान कियैँ छिनकौ न छकै को।
भूल कौँ सौँपि तबै जु सबै सुधि काहू की कानि कनौड़त कै को।
प्राननि वारि निवारि कै लाजहि ऐसी बनै बिन काज, सकै को।
बावरे लोगन सौँ घनआनँद रीझनि भीजि कै खीजि बकै को ॥१३३॥
जान प्रवीन के हाथ को बीन है मो चित-राग-भर्यौ नित राजै।
सो सुर साँच कहूँ नहिँ छाड़त ज्यौँ ही बजावै लियेँ मन बाजै।
भावती मीड़ मरोर दियेँ घनआनँद सौगुने रंग सौँ गाजै।
प्यार सौँ तार सु ऐंचि कै तोरत क्यौँ, सुघराइयै लाजत लाजै ॥१३४॥

माता का नाम) के वश को प्रकाशित करनेवाली। [१३०] सम० = बराबर या अधिक। [१३१] तनकौ० = उन्हें मन में ही छिपा रखा है। [१३२] लड़ीलियै = सुहानेवाली। [१३३] मादिक = मदिरा। न छकै० = कौन मत्त नहीं हो जाता। कानि कै को कनौडत = मर्यादा का विचार करके कौन दबता है। सकै० = कौन सँभाल सकता है। [१३४] राग = प्रेम , गान।

कबित्त

पीरी परी देह छीनी राजत सनेह-भीनी,
कीनी है अनंग अंग अंग रंग-बोरी सी।
नैन पिचकारी ज्यौं चल्यौई करैं दिनरैन,
बगराए बारनि फिरति झकझोरी सी।
कहाँ लौं बखानौं घनआनँद दुहेली दसा,
फागमई भई जान प्यारे वह भोरी सी।
तिहारे निहारे विन प्राननि करत होरा,
विरह-अँगार निमगारि हिय होरी सी॥ १३५॥
चोप-चाह चाँचरि, चुहल चोख चटकीली,
अटक निवारैं टारैं कुलकानि-कीचि कै।
घात लै अनूठी भरैं चेतक* चितौन-मूठी,
धूँधरि चिलक-चौंध बीच† कौंध सौं टिकै।
भीजे घनआनँद सुजान के खिलार दृग,
नैसिक निहारैं जिनकी निकाई पै बिकै।
रूप-अलबेली सु नवेली एरी तेरी आँखैं,
ताकि छाकि मारैं हुरिहाइँ न कहूँ छिकै॥ १३६॥
सुंदर सुजान प्रानप्यारे महा कोमल ह्वै,
दीन के हृदै कौं दैया दुखनि कहा दरौ।
सुजस-मयंक हौ पै लागत कलंक वड़ो,
बापुरे चकोर कौं जौ त्यागिबोई आदरौ।

राइयै = चतुरता को। [१३५] दुहेली = कष्टमयी। होला = होरा, लपट भुना अनाज का हरा पौदा। निमगारि = उत्पन्न करके। [१३६] चाँचरि = री राग, होली का गान। चेतक = जादू भरी। धूँधरि = धुंध। चिलक = क दमक। हुरिहाइँ = होली खेलनेवाली। न छिकै = छिँकती नहीं। [१३७] नै = निमित्त। निधि = समुद्र। गादरौ = शिथिल। मूँदि० = बादलों के हट

* देतक। † बीज।

मेरे दोष देखौ तौ परेखो है अलेखो ए जू,
मीन ढोलै निधि कैसैं बूझियत गादरौ।
चातिक बिचारो घनआनँद पुकार जानै,
मूँदि क्यौं सकत है बिदरि गएँ बादरौ॥ १३७॥

सवैया

सोए हैं अंगनि अंग समोए सु भोए अनंग के रंग निस्यौं करि।
केलि-कला-रस-आरस-आसव-पान-छके घनआनँद यौं करि।
प्रेमनिसा मधि रागत पागत लागत अंगनि जागत ज्यौं करि।
ऐसे सुजान बिलास-निधान हो सोएँ जगे कहि ब्योरियै क्यौं करि॥१३८॥
कहियै किहि भाँति दसा सजनी अति ताती कथा रसनाहि दहै।
अरु जौ हिय ही मधि घूँटि रहौं तौ दुखी जिय क्यौं करि ताहि सहै।
घनआनँद जान न कान करैं इत के हित की कित कोऊ कहै।
उत ऊतर-पायँ लगी मिहँदी सु कहा लगि धीरज हाथ रहै॥१३९॥
कोऊ न देखै न काहू दिखावत आपनो आनन जान अमैंड़े।
बैठि सभा मधि न्यारे रहैं, पुनि रोकत चेटक लौं दृग-पैंड़े।
कौन पत्याय कहैं घनआनँद हैं सब सूधे सयान सौं ऐंड़े।
रूप अनूपम को पुर दूरि, सु बावरे नैनन के मग बैंड़े॥१४०॥
नैन किये अति आरति-ऐन सु रैनिदिना चित-चोप बिसेखै।
नीके सुधानिधि-रूप छक्यौ रचि आगि चुगै सब त्यागि परेखै।
जैसैं सुजान लखैं घनआनँद नेही न आन हियैं अवरेखै।
ऐसैं उजागर है जग मैं परि चंदहि एक चकोरहि देखै॥१४१॥

जाने पर भी वह अपने नेत्र बंद न करेगा, उनके दर्शन के लोभ मैं खोले रहेगा या हट जानेवाले बादलौं को नेत्रौं मैं कब तक बंद किए रह सकता है। [१३८] निस्यौं करि = निश्चिंत होकर या स्यौं करि = काम के रग से भीगे। सोएँ० = सोने मैं भी जगे रहते हैं। [१३९] ऊतर० = उत्तर के पैर मैं मेहँदी लगी है, उत्तर नहीं देते। [१४०] अमैंडे = मर्यादा न माननेवाले। चेटक = जादू। बैंडे = टेढे। [१४१] न अवरेखै = नहीं ले आता। उजागर = प्रकाशपिंड। [१४२]

कवित्त

नेही की विलोकनि बिलोय सार साधि लेइ,
रूपौ रिझवार जानि काढ़ै गुन द्‌व के।
चाड़ सिर चढ़त बढ़त अति लाड़िलो है,
कैसैं गनै बनै जेऽव ओटपाय तव के।
खेल अलवेले हियो खूँदैं घनआनँद यौं,
जान प्यारे मतवारे भारे सुगरब के।
कहिबे कौं कोऊ किन देखौ न परेखौ, वे तौ
चाँदनी के चोर मोरपच्छ अच्छ सब के॥१४२॥

सवैया

साँवरे छैल की आछी अँगेट पै काम करोरिक वारियै जोहि कै।
नैननि बेधि रँगीले गुनै गसि माल रचै मन-मानिक पोहि कै।
दाय के चाय चुए भरि भाय सौं छाय रह्यौ घनआनँद सोहि कै।
नैसिक हेरियै मेरियै सौंह ढरारे सुजान यौं चेरियै मोहि कै॥१४३॥
बिन बूझ असूझ बिरंचि रचे सपने हूँ न लागनि गैल गईं।
जिन बावरी रोग-बियोग-भरी रचि ये हम कौं तम-जोग दईं।
घनआनँद मीत सुजान लखें अभिलाषनि लाखनि भाँति रईं।
मुख माधुरी-पान कौं आतुर पै अखियाँ दुखियाँ कित भोरी भईं॥१४४॥
चातुर ह्वै रस-आतुर होहु न बात सयान की जात क्यौं चूकै।
ऐसी अठाननि ठानत हौ कित, धीर धरौ न, परौ जिन ढूकै।

बिलोय = मथकर। चाड़ = उत्कंठा। ओटपाय = उपद्रव। परेखौ = फल। चाँदनी० = उजाले में चोरी कर लेनेवाले। मोरपच्छ० = सब के नेत्र मोरपखों की सी आँखें हो जाते हैं, बेकाम। [१४३] अँगेट = अंगदीप्ति। गुनै० = गुण-रूपी डोर से युक्त करके। दाय = दाँव। नैसिक = थोड़ा। सौंह = सामने। ढरारे = ढलनेवाले। [१४४] तम० = अंधकारमय। रईं = युक्त हुईं। [१४५] अठान = अकरणीय। परौ० = घात मत लगाओ। न छियौ = छूओ मत। उतू = एक औजार जिससे बेलबूटे बनाते हैं या चुनावट डालते हैं। उसके कोमल शरीर

देखि जियौ, न छियौ घनआनँद, कौंवरे अंग सुजान-बधू के।
चोली-चुनावट-चीन्हैं चुभैं चपि होत उजागर दाग* उतू के ॥१४५॥

कबित्त

गाँसनि गसीले गरुवाई औ गरूर भरे,
जकरि पकरि और ओरनि तें छोरी हौं।
मोहन महा ढरारे, सोहन मिठास भारे,
जोहन उररि पैठि बैठि उर भोरी हौं।
नेहनिधि लाड़िले नवेली रीति रावरी है,
तीर आएँ बिरह-गहर लै झकोरी हौं।
तरिबो सुन्यौ हो गुन गहैं घनआनँद पै,
जान प्यारे गुननि तिहारे गहि बोरी हौं ॥१४६॥

सवैया

चाह† अनोखी कहा कहियै सजि‡ बैठे सरै न करै कछु कीबो।
देखत देखत सूझि परै नहिँ बूझत बूझत बौरई लीबो।
एहो सुजान दुहेली दसा दुख हाथ लगे हू न छीजत छीबो+।
है घनआनँद साच महा मरिबो अनमीच बिना जिय जीबो ॥१४७॥

कबित्त

तेरी अनमाननि ही मेरे मन मानि रही,
लोचन निहारैं हेरि सौं हैं न निहारिबो।
कोरि कोरि आदर को करत निरादर है,
सुधा तें मधुर महा झुकि झिझकारिबो।
जीवन की ज्यारी घनआनँद सुजान प्यारी,
जीव जीति-लाहो लहै तेरे हठि हारिबो।

पर चोली में बने उतू के दाग भी उभड आते हैं। [१४६] उररि = बरबस हृदय में धँसकर। गहर = गहराई। [१४७] बौरई = पागलपन। दुख० = छूने में दुःख मिलता है पर छूना कम नहीं होता, कष्ट पाकर भी मन उधर से नहीं मुडता। अनमीच = बिना मृत्यु के। [१४८] अन० = न मानना।

* होत। † बात। ‡ सुनि। + दीबो।

रूखी रूखी बातनि हूँ सरसै सनेह सुठि,
हिये तैं टरै न ये अनखि कर टारिबो ॥१४८॥

सवैया

रूप छक्यौ तुम्हैं देखि सुजान थक्यौ तजि लाज-समाजन की दब ।
मोहि लियौ हँसि हेरि छबीले कहीं अति प्यार-पगी बनियाँ जब ।
सोच-बिचार के साज टरे घनआनँद रीझनि भीजि रच्यौ तब ।
आस-भर्‌यौ गहि द्वार पर्‌यौ जिय या घर आय कै जाय कहाँ अब ॥१४९॥

कबित्त

आरति के ऐन, द्यौसरैन राजैं नेही नैन,
चढ़े चोप छाजैं साजैं दीठि ईठि त्यौं अचूक ।
पूरे पन-राचे छाकि पाकि चूरे मत काचे,
तचि साँच आँच के टरैं न टक तें कछूक ।
रूप-उजियारे जान प्यारे है निहारे जिन,
भीजे घनआनँद कनौड़-पुंज लाय ऊक ।
नेमी अंध हौंस मरैं चाहैं तिन रीस करैं,
ऐसैं अरबरैं ज्यौं चकोर होन कौं उलूक ॥ १५० ॥
ललित लसौंहीं सु ढरौंहीं नेकु सौंहीं भएँ,
त्यौं ही रहि गह गौं ही डोलति न डीठि है ।
हठ पटरानी प्रान पैंठिवे कौं फिरि बैठै,
देखि विन बोलनि मैं रस की बसीठि है ।
सुख सनमान देति मुरि दीनैं कीनैं मान,
जान प्यारी बिरच हूँ राचनि-मजीठि है ।
मन दै मनाऊँ सो न पाऊँ घनआनँद पै,
मोहिं यौं बिमन करै एरी तेरी पीठि है ॥१५१॥

जीति० = जीत का लाभ । सुठि = उत्कृष्ट या अत्यत । अनखि = झुँझलाकर । [१४९] दब = दबाव । [१५०] ईठि त्यौं = प्रिय की ओर । मत० = कच्चे मत (सिद्धांत)। कनौड = संकोच । ऊक = लुक । रीस = बराबरी । अरबरैं = हडबडी मचाते हैं । [१५१] बसीठि = दूतत्व । बिरचैं० = विमुख होने पर भी

सवैया

मृदु मूरति लाड़-दुलार-भरी अँग अंग बिराजति रंगमई।
घनआनँद जोबन-माती दसा छबि ताकत ही मति छाक छई।
बसि प्रान सलोनी सुजान रही चित पै हित-हेरनि छाप दई।
वह रूप की रासि लखी तब तें सखी आँखिन कैं हरतार भई ॥१५२॥

कवित्त

माधुरी गहर उठै लहर-लुनाई जहाँ,
कहाँ लौं अनूप रूप-पानिप बिचारियै।
आरसी जौ सम दीजै बूझौ कौं अरूझ कीजै,
आछे अंग हेरि फेरि आपौ न निहारियै।
मोहनी की खानि है सुभाय ही हँसनि जाकी,
लाड़िली लसनि ताकी प्राननि तें प्यारियै।
रीझौ रीझि भीजै घनआनँद सुजान महा,
वारियै कहा सकोच सोचन ही हारियै ॥१५३॥

रसहि पिवाय प्यासे प्राननि जिवाय राखै,
लाज सौं लपेटी लसै उघरि हितौन की।
निपट नवेली नेह-भेली लाड़-अलबेली,
मोह-ढरहरी भरी बिरह-रितौन की।
लोने लोने कोने छ्वै छबीली अँखियानि के सु,
रंचकौ न चूकै घात औसर-बितौन की।
परी घनआनँद बरसि मेरी जान तेरी,
हियो सुख सींचै गति तिरछी चितौन की ॥१५४॥

सोभा-बरसीली सुभ सील सौं लसीली,
सु रसीली हँसि हेरैं हरै बिरह-तपति है।

मजीठ का सा न मिटनेवाला राग (प्रेम, रंग) है। [१५२] छाक = नशा। हरतार = हठपूर्वक देखने का तार, सिलसिला, टकटकी। [१५३] गहर = गहराई, गहरी। पानिप = पानी ; शोभा। [१५४] उघरि० = प्रेम का उद्घाटन।

अति ही सुजान प्रान पुंज-दान बोलनि मे,
देखी पैज-पूरी प्रीति-नीति कौं थपति है।
जाके गुन बँधें मन छूटै और ठौरनि तें,
सहज मिठास लीजै स्वादनि-सँपति है।
पानिप अपार घनआनँद उकति ओछी,
जतन-जुगति जोन्ह कौन पै नपति है ॥१५५॥

छाए परदेस जान प्यारे संग लै सँदेस,
मो मन अँदेस आली साँसनि रुँधै गरै।
मोरनि की कूकें सुनि उठति हिये मैं हूकैं,
चूकैं नहीँ चातिक करेजो काढ़िवे अरै।
दामिनी की कौंध लखि चौंधनि भरत चख,
अंग अंग सीरियौ समीर परसैं जरै।
घेरि घूँटि मारै चहूँघा तैं घनआनँद यौं,
बादर अडंबरनि डावाँडोल ज्यौं करै ॥१५६॥

जान प्यारे नागर अनूप गुन-आगर हौ,
जगत-उजागर बिलास-रसमसे हौ।
नवल-सनेह-साने आरसनि सरसाने,
विधिना बनाय बाने अंग अंग लसे हौ।
छवि-निखरे ह्वै खरे नीकेई लगत मोहिं,
आनँद के घन गूढ़ गाँसनि सौं गसे हौ।
भोर भएँ आए भाँति भाँति मेरे मन भाए,
पहो घरबसे आज कौन घर बसे हौ ॥१५७॥

भरी० = विरह दूर करने मैं लगी हुई। लोने = सुदर। औसर० = अवसर को ठीक ठीक विताने की घात। [१५५] सील = शिष्टता; आर्द्रता। स्वादनि० = स्वादों का ऐश्वर्य। पानिप = पानी; शोभा। उकति० = उक्ति के छोटे आकार मैं उसके अपार सौंदर्य को भर सकना असंभव है। [१५६] हूकैं = पीडाएँ। करेजो० = कलेजा निकालने पर अड़े हुए। अडंबर = बादल मैं सूर्यकिरणों से ललाई छाना। [१५७] रसमसे = रस मैं मग्न। घरबसे = उपपति (बन जाने-

तिन हूँ तैं हरई भई है गुरुजन आगैं,
पुरजन-पुंज मैं कहानी सी धौं कौन काज।
तो हित बोहित जानि मोहित विहंग मन,
आसा-गुन बँध्यौ हेरि नेह को सरितराज।
कीजै कहा ऐसी अब अति ही अनैसी बात,
हाहा घनआनँद अमैड़नि के सिरताज।
सुंदर सुजान ह्वै सुहाई पै न आई तोहि,
पहो निरमोही नेकौ लाज हू तजे की लाज ॥१५८॥

सवैया

प्रान परे निरमोही के पानि सु जानि परै वाकी नाहीँ न हाँ है।
कै अपने सपने हूँ न सोचत, मो चित ऊखिल ही लौं तहाँ है।
ये मड़रात तऊ घनआनँद जीवनमूरति जान जहाँ है।
हाय दई न बसाय बिसासी सौं ठौर-रहेन कौं ठौर कहाँ है ॥१५९॥
जान सजीवन-प्रान लखैं बिन आतुर आँखिन आवत आधे।
लोग चवाई सबै निरदै अति बान से बैन अयान सौं साधे।
को समझै मन की घनआनँद औरई बेदन बौरई नाधे।
पीर-भर्यौ जिय धीर धरै नहिं कैसैं रहै जल जाल के बाँधे ॥१६०॥

कबित्त

रूप-गुन-आगरि नवेली नेह-नागरि तू,
रचना अनूपम बनाई कौन विधि है।
चलनि चितौनि बंक भौंहनि चपल हौनि,
बोलनि रसाल मैन-मंत्र हू कौं सिधि है।

वाले)। [१५८]हरई = हलकापन।।हत = अपनाव। बोहित = जहाज। मोहित = मुग्ध। सरितराज = समुद्र। अमैड़ = मर्यादा को न माननेवाला। [१५९] पानि० = हाथ मैं, वश मैं। कै० = अपने वश मैं करके या अपने किए को। ऊखिल = अपरिचित, अजनबी। [१६०] आधे = आधे होकर। चवाई = बदनामी करनेवाले। बौरई० = पागलपन ने ठान रखी है (विलक्षण वेदना)। [१६१] विधि = ब्रह्मा, रीति। सिधि = ऋद्धि; ऐश्वर्य। निधि = खजाना।

अंग अंग केलि-कला-संपति-विलास घन-
आनँद उज्यारी-मुख सुख-रंग-रिधि है।
जब जब देखिये नई सी पुनि पेखियै यौं,
जानि परी जान प्यारी निकाई की निधि है ॥१६१॥

अघट घटाई भर्यौ निपट निघरघट,
मो घट क्यौं रावरी बड़ाई लौं निपटिहै।
नीके करि देखौ न परेखो उर आनौ, मानौ,
जान प्यारे पूरी पैज हाहा कैसें हटिहै।
दानी सनमानी दीन-दारिद-दलन ह्वै कै,
अति ही अचंभो* जो कचाई-तन डटिहै।
जियैगौ पियैगौ रस कोऊ† दुखी चातिक तौ,
आनँद के घन को कहौ धौं कहा घटिहै ॥१६२॥

आँखें जौ न देखैं तौ कहा हैं कछु देखति ये,
ऐसी दुखहाइनि की दसा आय देखियै।
प्रानन के प्यारे जान रूप-उजियारे, बिना
मिलन तिहारे इन्हैं कौन लेखें लेखियै।
नीर-न्यारे मीन औ चकोर चंदहीन हूँ तें,
अति ही अधीन दीन गति मति पेखियै।
हौ जू घनआनँद ढरारे रसभरे भारे,
चातिक बिचारे सौं न चूकनि परेखियै ॥१६३॥

जान प्यारे जहाँ हौ तहाँ हैं मेरे प्रान संग,
जीबो कछू भ्रम ही सो मानि लीजियत है।
सुनिबो देखिबो स्वाद आदि दै धरम जेते,
सपने मैं होत जो बिचार कीजियत हैं।

---

[१६२] अघट० = न घटनेवाली तुच्छता से युक्त। निघरघट = ढीठ। परेखो = खेद। तन = ओर। [१६३] न चूकनि० = चूक मैं डालकर परीक्षा मत लीजिए अथवा चातक की भूलों का बुरा न मानिए। [१६४] जीबो० = अपने

* दीन दासन पै आनि दया हियहु लगौ। † जित तित लागी एक तेरी आस।

रावरे सनेह यौं अदेह कीनी लीनी जीति,
आनँद के घन पै अचंभे भीजियत है।
जाकी गति मति औ सुरति सव हारियै जू,
ताहि कहौ कैसें धौं बिसारि दीजियत है ॥१६४॥

सहज-उज्यारी रूप-जगमगी जान प्यारी,
रति पै रतीक आभा है न रोम-रीस की।
चीकने चिहुर नीके आनन बिथुरि रहे,
कहा कहौं सोभा सुभ-भरे भाल सीस की।
वीच वीच मंजुल मरीचि-रुचि फैलि फवी,
केलि-समै उपमा लसति बिसे-वीस की।
मानौ घनआनँद सिँगार-रस सौं सँवारी,
चिक मैं विलोकति वहनि रजनीस की ॥१६५॥

मीत मनभावन रिझावन कौं जान प्यारी,
आई घनआनँद घमड़ि आछी वनि है।
मंजन कै अंजन दै भूषन-वसन साजि,
राजि रही भृकुटी जुटौंही वंक तनि है।
अंग अंग नूतन निकाई-उझलनि छाई,
भौन भरि चली सोभा नदी लौं उफनि है।
देखनि दुलार-भोई वोलनि सुधा-समोई,
मुख को सुवास स्वास निसरति सनि है ॥१६६॥

सवैया

भावते के रस-रूपहि सोधि ल, नीकैं भरयौ उर कै कजरौटी।
रोमहि रोम सुजान विराजत सोचि तचै मति की मति औटी।

जीने को भ्रम समझती हूँ, मेरे जीवन तो आप हैं। धरम = शरीर के धर्म। अदेह = देहाध्यास शून्य। [१६५] रीस = वरावरी। चिहुर = चिकुर, केश। [१६६] घमड़ि = घिराव, सजाव। मंजन = मार्जन, स्नान। उझलनि = वृष्टि। [१६७] कजरौटी = कज्जली रखने का पात्र।

प्रेम बली न करै सु कहा, घनआनँद नेम-गली-गति लौटी।
मीत मराल सरोवर तो मन, तैं पिय को हिय कीनौ कसौटी ॥१६७॥

कबित्त

असा-गुन बाँधि कै भरोसो-सिल धरि छाती,
पूरे पन-सिंधु मैं न बूड़त सकायहौं।
दुख-दव हिय जारि अंतर-उदेग-आँच,
रोम रोम त्रासनि निरंतर तचायहौं।
लाख लाख भाँतिन की दुसह दसानि जानि,
साहस सहारि सिर आरे लौं चलायहौं।
ऐसें घनआनँद गही है टेक मन माहिं,
एरे निरदई तोहि दया-उपजायहौं ॥१६८॥

सवैया

अंतर-आँच उसास तचै अति, अंग उसीजै उदेग की आवस।
ज्यौं कहलाय मसोसनि ऊमस क्यौं हूँ कहूँ सु धरै नहीं थ्यावस।
नैनउ धारि दियें* बरसैं घनआनँद छाई अनोखियै पावस।
जीवनिमूरति जान को आनन है बिन हेरैं सदाई अमावस ॥१६९॥
जान के रूप लुभाय कै नैननि बेंचि करी अधबीच ही लौंड़ी।
फैलि गई घर बाहिर बात सु नीकैं भई इन काज कनौंड़ी।
क्यौं करि थाह लहै घनआनँद चाह-नदी तट ही अति औंड़ी।
हाय दई न बिसासी सुनै कछु, है जग बाजति नेह की डौंड़ी ॥१७०॥

दोहा

जानराय! जानत सबै, अंतरगत की बात।
क्यौं अजान लौं करत फिरि, मो घायल पर घात ॥१७१॥

---

[१६८] न सकायहौं = न डरूँगा। [१६९] आवस = आँस, भाप। कहलाय = गरमी से व्याकुल होता है। थ्यावस = स्थिरता, धैर्य। [१७०] कनौंड़ी = दबैल, बदनाम। औंडी = गहरी। डौंड़ी = डुग्गी। [१७१] अंतरगत = मन।

* नैन उघारि हिये।

सवैया

आनन की सुथराई*कहा कहौं जैसी बिराजति है जिहि औसर।
चंद तौ मंद मलीन सरोरुह एक हू रंग न दीजियै जौ सर।
नैन अन्यारे तिरीछी चितौनि मैं हेरि गिरै रतिप्रीतम कौ सर।
जान हियैं घनआनँद सौं हँसि फैलि फबै सु चँबेली की चौसर॥१७२॥
घूँघट काढ़ि जौ लाज सकेलति लाजहि लाजति है बिन काजनि।
नैननि बैननि मैं तिहि ऐन सु होत कहाऽब सजे पट-साजनि।
सील की मूरति जान रची बिधि तोहि अचंभे-भरी छबि-छाजनि।
देखत देखत दीसि परै नहिं यौं बरसै घनआनँद लाजनि॥१७३॥
लाड़-लसी लहकै महकै अँग रूपलता लगि दीठि-झकोरै।
हास-बिलास-भरे रसकंद सु आनन त्यौं चख होत चकोरै।
मौन भली कहि कौन सकै घनआनँद जान सु नाक सकोरै।
रीझ बिलोएई डारति है हिय, मोहति टोहति प्यारी अकोरै॥१७४॥

कबित्त

रूप-गुन-ऐंठी सु अमैठी उर पैठी बैठी,
लाड़नि निरैठी, मति बोलनि हरैं हरी।
जोबन-गहेली अलबेली अति ही नवेली,
हेली ह्वै सुरति बौरी आँचर टरैं टरी।
परम सुजान भोरी बातनि छकाए प्रान,
भावति न आन वेई हियरा औरैं अरी।
फंद सी हँसनि घनआनँद दगनि गैरैं,
मुख सुखकंद मंद उघरि परैं परी॥१७५॥

---

[१७२] सुथराई = बनावट की सफाई। सर = समता। रति = काम का बाण चौसर = चार लड़ी की माला। [१७३] सकेलति = समेटती है। ऐन = घर लाजनि = लावा ; लज्जा। [१७४] लहकै = हिलती है। टोहति = टटोलती है अकोरै = आलिंगन (की मुद्रा)। [१७५] निरैठी = मस्त। हरैं = धीरे से

* सुघराई।

सवैया

लै ही रहे हौ सदा मन और को दैबो न जानत जान दुलारे।
देख्यौ न है सपने हूँ कहूँ दुख, त्यागे सकोच औ सोच सुखारे।
कैसो सँजोग बियोग धौं आहि! फिरौ घनआनँद ह्वै मतवारे।
मो गति बूझि परै तब ही जब होहु घरीक हू आप तें न्यारे॥१७६॥

खोय दई बुधि, सोय गई सुधि, रोय हँसै उनमाद जग्यौ है।
मौन गहै, चकि चाकि रहै, चलि बात कहै तन* दाह दग्यौ है।
जानि परै नहिँ जान! तुम्हैं लखि ताहि कहा कछु आहि खग्यौ है।
सोचनि ही पचियै घनआनँद हेत पग्यौ किधौं प्रेत लग्यौ है॥१७७॥

कबित्त

घेर-घबरानी उबरानी ही रहति घन-
आनँद आरति-राती साधनि मरति हैं।
जीवनअधार जान-रूप के अधार बिन,
ब्याकुल बिकार-भरी खरी सु जरति हैं।
अतन-जतन तें अनखि अरसानी वीर,
प्यारी पीर-भीर क्यौं हूँ धीर न धरति हैं।
देखियै दसा असाध अँखियाँ निपेटिनि की,
भसमी बिथा पै नित लंघन करति हैं॥१७८॥

चारु चामीकर चंद चपला चंपक चोखी,
केसरि-चटक कौन लेखैं लेखियति है।
उपमा बिचारी न बिचारी, नहिँ जान प्यारी,
रूप की निकाई औरै अवरेखियति है।
सरस-सनेह-सानी राजति रवाँनी दसा,
तरुनाई-तेज-अरुनाई पेखियति है।

[१७६] धौं = न जाने। [१७७] आहि० = लगा हुआ है। [१७८] अतन = कामोपचार से। निपेटिनि = पेटू। भसमी० = भस्म करनेवाली पीड़ा; भस्मक रोग, जिसके होने से खाया हुआ शीघ्र पच जाता है और चाहे जितना खाया जाय तृप्ति नहीँ होती। [१७९] चामीकर = सोना। चटक = रंग।

* तैं न।

मंडित अखंड घनआनँद उजास लियें,
तेरे तन दीपति दिवारी देखियति है ॥१७९॥

सवैया

रूप-खिलार दिवारी कियें नित जोबन छाकि न सूधे निहारै।
नैननि सैन छलै चित सो चित-चाव भस्यौ निज दाव बिचारै।
जीति ही को चसको घनआनँद चेटक जान सयान बिसारै।
जीव बिचारो पस्यौ अति सोचनि हारि रह्यौ सु कहा फिरि हारै ॥१८०॥

कबित्त

बिकच नलिन लखें सकुचि मलिन होति,
ऐसी कछू आँखिन अनोखी उरझनि है।
सौरभ-समीर आएँ बहकि दहकि जाय,
राग-भरे हिय मैं बिराग-मुरझनि है।
जहाँ जानप्यारी-रूप-गुन को न दीप लहै,
तहाँ मेरे ज्यौ परै बिषाद-गुरझनि है।
हाय अटपटी दसा निपट चटपटी सौं,
क्यौं हूँ घनआनँद न सूझै सुरझनि है ॥१८१॥

तब ह्वै सहाय हाय कैसें धौं सुहाई ऐसी,
सब सुख संग लै बिछोह-दुख दै चले।
सींचे रस-रंग अंग-अंगनि अनंग सौंपि,
अंतर मैं बिषम बिषाद-बेलि बै चले।
क्यौं धौं ये निगोड़े प्रान जान घनआनँद के
गौहन न लागे जब वे करि बिजै चले।

अवरेखियति० = ठहराई जाती है। रवाँनी = (रमानी) रमानेवाली अथवा (रवानी) तेजी। [१८०] चित = कौड़ी का चित पड़ना। चेकट = जादू। हारि० = मुग्ध हो रहा है। [१८१] बिकच = खिला हुआ। बिराग = उदासी की मुरझाहट। रूप = सौंदर्य ; चाँदी। गुन = गुण; बत्ती। गुरझनि = गाँठ। चटपटी = वेग। [१८२] बै = बोकर। गौहन = साथ। हेली = क्रीडाशील

अति ही अधीर भई पीर-भीर घेरि लई,
हेली मनभावन अकेली मोहिँ कै चले ॥१८२॥
रोम रोम रसना ह्वै लहै जौ गिरा के गुन,
तऊ जान प्यारी! निबरैँ न मैन-आरतैँ।
ऐसे दिनदीन पै दया न आई दई तोहि,
बिष-भोयो बिषम बियोग-सर मारतैँ।
दरस-सुरस-प्यास भाँवरे भरत रहौँ,
फेरियै निरास मोहिँ क्यौँ धौँ यौँऽब द्वार तैँ।
जीवनअधार घनआनँद उदार महा,
कैसैँ अनसुनी करी चातिक-पुकार तैँ ॥१८३॥

सवैया

पानिप-पूरी खरी निखरी, रस-रासि-निकाई की नीवँहि रोपैँ।
लाज-लड़ी बड़ी सील-गसीली सुभाय हँसीली चितै चित लोपैँ।
अंजन-अंजित-श्री घनआनँद मंजु महा उपमानि हूँ ओपैँ।
तेरी सौँ प्यारी सुजान तो आँखिन देखि ये आँखि न आवति मो पैँ ॥१८४॥

कबित्त

कंठ-काँच-घटी तैँ वचन चोखो आसव लै,
अधर पियालैँ पूरि राखति सहेत है।
रूप-मतवारी घनआनँद सुजान प्यारी,
काननि ह्वै प्राननि पिवाय पीवै चेत है।
छकेई रहत रैनिद्यौस प्रेम-प्यास-आस,
कीनी नेम-धरम-कहानी उपनेत है।
ऐसे रस-बस क्यौँ न सोच और स्वाद कहौ,
रोम रोम जाग्योई करत मीनकेत है ॥१८५॥

या हे अली। [१८३] मैन० = काम-लालसाएँ। दिनदीन = दिनदिन दीन
[१८४] पानिप = शोभा, पानी। श्री = शोभा। ओपैँ = चमकाती हैँ।
[१८५] आसव = शराब। उपनेत = उत्पन्न। मीनकेत = कामदेव।

चातिक चुहल चहुँ ओर चाहै स्वाति ही कौं,
सूरे पन-पूरे जिन्हैं विष सम अमी है।
प्रफुलित होत भान के उदोत कंज-पुंज,
ता बिन बिचारनि ही जोति-जाल तमी है।
चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै अनंदघन,
प्रीति-रीति बिषम सु रोम रोम रमी है।
मोहिं तुम एक, तुम्हैं मो सम अनेक आहिं,
कहा कछू चंदहिं चकोरन की कमी है॥१८६॥

रिसभरी भोरिबे कौं देखी सुनी प्रीति-नीति,
नायक रसीलो बिनै बिनती महा करै।
चोप चाय दायनि सौं अमित उपायनि सौं
ज्यौं ही बनै त्यौं ही लगि प्रापति लहा करै।
मीन जलहीन लौं अधीन ह्वै अनंदघन,
जान प्यारी पायनि पै कब को हहा करै।
दई नई टेक तोहि टारैं न टरति नेकौ,
हार्‍यौ सब भाँति जो विचारो सो कहा करै॥१८७॥

सवैया

जीवन हौ जिय की सब जानत जान! कहा कहि बात जतैयै।
जो कछु है सुख संपति सौंज सु नैसिक हौ हँसि दैन मैं पैयै।
आनँद के घन! लागै अचंभो पपीहा पुकार तें क्यौं अरसैयै।
प्रीतिपगी अँखियानि दिखाय कै हाय अनीति सु दीठि छिपैयै॥१८८॥

कवित्त

चोप चाह चावनि चकोर भयौ चाहत ही,
सुषमा-प्रकास मुख-सुधाधर पूरे को।
कहा कहौं कौन कौन विधि की बँधनि बँध्यौ,
सुकस्यौ न उकस्यो बनाव लखि जूरे को।

---

[१८६] अमी = अमृत। तमी = रात्रि। [१८७] दायँ = दावँ। लहा = लाभ।
[१८८] सौंज = सामग्री। नैसिक = थोड़ा। [१८९] सुकस्यौ = भली भाँति

जाही जाही अंग पर्‌यौ ताही गरि गरि सर्‌यौ,
हर्‌यौ वल वापुरे अनंग-दल-चूरे को।
अब विन देखें जान प्यारे यौं अनंदघन,
मेरो मन भँवै भटू! पात ह्वै वघूरे को ॥१८९॥

दोहा

मोही मोह जनाय कै, अहे अमोही ! जोहि।
सो ही मोही सौं कठिन, क्यौं करि सोही तोहि ॥१९०॥

सवैया

उर-भौन मैं मौन को घूँघट कै दुरि वैठी विराजति वात-वनी।
मृदु मंजु पदारथ भूषन सौं सु लसै हुलसै रस-रूप-मनी।
रसना-अली कान गली मधि ह्वै पधरावति लै चित-सेज ठनी।
घनआनँद वूझनि-अंक वसै विलसै रिझवार सुजान-धनी ॥१९१॥

कवित्त

याहि आएँ आवन की आसा उर आय वसै,
चाहै निरवाहै नित हित-कुसरात कौं।
है री वह वैरी घैरी उघर्‌यौ विगोवनि पै,
ओछो जरि गयौ गोवै कहा भेद-वात कौं।
मधुर सरूप याहि देखियै अनंदघन,
पोखै जानप्यारे-संग रंग-मनजात कौं।
साँझ सही साथिनि सँजोगहि सजाय देति,
लाग्यौ रहै गौहन ही प्रात प्रान-घात कौं ॥१९२॥

कस गया। गरि० = गलकर चुक गया या गड़ गड़कर तव निकला। वघूरे = ववंडर। [१९०] मोही = मोहित किया। जोहि = देखकर। सो ही = वह तेरा प्रेमप्रदर्शक हृदय। मोही = मुझमे कठोर हो गया। सोही = यह वात तुझे कैसे फवती है। [१९१] वनी = दुलहिन। पदारथ = रत्न, पद का अर्थ। वूझनि = वुद्धि, मति। [१९२] कुसरात = कुशल। घैरी = वदनामी करने योग्य। विगोवनि = नष्ट करने के लिए। मनजात = काम। सही = सचमुच,

विष लै बिसार्यौ तन, कै बिसासी अपचार्यौ*,
जान्यौ हुतौ मन ! तैं सनेह कछु खेल सो।
अब ताकी ज्वाल मैं पजरिबो रे भली भाँति,
नीकैं आहि, असह-उदेग-दुख सेल सो।
गए उड़ि तुरत पखेरू लौं सकल सुख,
पर्यौ आय औचक बियोग बैरी डेल सो।
रुचि ही के राजा जान प्यारे यौं अनंदघन,
होत कहा हेरें रंक ! मानि लीनौ मेल सो ॥१९३॥
सूझै नहीं सुरझ उरझि नेह-गुरझनि,
मुरझि मुरझि निसिदिन डाँवाँडोल है।
आह की न थाह दैया कठिन भयौ निबाह,
चाह के प्रबाह घेर्यौ दारुन कलोल है।
वे तौ जान प्यारे निधरक हैं अनंदघन,
तिनकी धौं गूढ़ गति मूढ़मति को लहै।
आगैं न बिचार्यौ अब पाछैं पछताएँ कहा,
मान मेरे जियरा बनी को कैसो मोल है ॥१९४॥
अंतर उदेग-दाह, आँखिन प्रबाह-आँसू,
देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है।
सोयबो न जागिबो हो, हँसिबो न रोयबो हू,
खोय खोय आप ही मैं चेटक-लहनि है।
जान प्यारे प्राननि बसत पै अनंदघन,
बिरह-बिषम-दसा मूक लौं कहनि है।
जीवन मरन, जीव मीच बिना बन्यौ आय,
हाय कौन विधि रची नेही की रहनि है ॥१९५॥

ठीक। [१९३] बिसार्यौ = भूल गए, बिषाक्त बनाया। अपचार्यौ = मनमानी। सेल = बरछी। डेल = ढेला। [१९४] आह की = 'आह' करने की, अपने मान की, हियाव की। बनी = वणिज। [१९५] चेटक = जादू।

* आप चाह्यो।

डगमगी डगनि-धरनि छवि ही के भार,
ढरनि छबीले उर आछी वनमाल की।
सुंदर वदन पर कोरिक मदन वारौं,
चित चुभी चितवनि लोचन विसाल की।
काल्हि इहि गली अली निकस्यौ अचानक ह्वै,
कहा कहौं अटक भटक तिहि काल की।
भिजई हौं रोम रोम आनँद के घन छाय,
बसी मेरी आँखिन मैं आवनि गुपाल की ॥१६६॥

सवैया

नेहनिधान सुजान-समीप तौ सींचति ही हियरा सियराई।
सोई किधौं अब और भई, दई हेरत ही मति जाति हिराई।
है विपरीति महा घनआनँद अंवर तें धर कौं झर आई।
जारति अंग अनंग की आँचनि जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई ॥१६७॥

कवित्त

चाहत हीं रीझि लालसानि भीजि सुख सीझि,
अंग-अंग-रंग-संग भाव भरि भ्वै गईं।
रैनिद्यौस जागैं ऐसी लगीं जु कहूँ न लागैं,
पन अनुरागैं पागैं चंचलता च्वै गईं।
हित की कनौंड़ी लौंड़ी भईं ये अनंदघन,
फिरैं क्यौं पिछौंड़ी नेह-मग डग द्वै गईं।
माधुरी-निधान प्रान-प्यारी जान प्यारी तेरो,
रूप-रस चाखैं आँखैं मधुमाखी ह्वै गईं ॥१६८॥
आँखैं रूप-रस चाखैं चाहैं उर सचि राखैं,
लोभ-लागी लाखैं अभिलाखैं निवैरैं नहीं।
तोहि जैसी भाँति लसै, बरनिवो मन बसै,
बानी गुन गसै, मति-गति विथकै तहीं।

---

[१६६] ढरनि = हिलना। वनमाला = लंबी माला। [१६७] ही = थी। झर = ज्वाला अगिलाई = अग्निदाह। [१६८] चाहत = देखते ही। कनौड़ी = दबैल।

जो दुख देखति हौं घनआनँद रैन-दिना बिन जान सुतंतर।
जानैं वेई दिन-राति, बखानैं तैं जाय परै दिन-राति को अंतर ॥२०६॥

कवित्त

रसिक-सिरोमनि सुजान सुधानिधि हू की,
रसना रसैबे कौं रसीलो सुखधाम है।
जीवन बरसिबे अनंदघन आपुन मैं,
चातिक तें कोटिगुनी जक आठो जाम है।
आरति परोई सोई जानै न बखानें बनै,
देखे दसा औरैं बिसरत बिसराम है।
साधा तन हेरियै निबेरियै सु बाधा वारि,
प्राननि अधार तिन्हैं राधा राधा नाम है ॥२०७॥

हिये मैं जु आरति सु जारति उजारति है,
मारति मरोरैं जिय डारति कहा करौं।
रसना पुकारि कै बिचारी पचि हारि रहै,
कहै कैसैं अकह, उदेग रुँधि कै मरौं।
हाय कौन बेदनि बिरंचि मेरे बाँट कीनी,
निघटि परौं न क्यौं हूँ, ऐसी बिधि हौं गरौं।
आनँद के घन हौ सजीवन सुजान देखौ,
सीरी परि सोचनि, अचंभे सौं जरौं भरौं ॥२०८॥

मुख देखें गौहन लगेई फिरैं भौंर-भौंर,
छूटे बार हेरि कै पपीहा-पुंज छावहीं।

राती = अनुरागमयी, लाल। दसा = विरहावस्था; बत्ती। नेह = प्रेम; तेल। बातैं = बातें; बत्तियाँ [२०६] तेह = तीखापन, आँच। परतंतर = अधीन होकर। जाय० = दिन और रात का सा भेद पड़ जाता है। अनुभव और कथन की स्थितियों में इतना अंतर पड़ जाता है कि दोनों विपरीत सी लगने लगती हैं। [२०७] रसैबे = रसमय करने के लिए। साधा = साध, उत्कंठा। [२०८] निघटि० = गलती तो हूँ पर समाप्त नहीं हो जाती। भरौं = दिन काटती हूँ।

गति-रीझै चायनि सौं पायन-परस-काजै,
रसलोभी विवस मराल-जाल धावहीं।
यातें मन होय प्रान-संपुट मैं गोय राखौं,
ऐसें हूँ निगोड़े नैन कैसें चैन पावहीं।
सींचियै अनंदघन जान प्यारी जैसें जानौ,
दुसह दसा की बातें बरनी न आवहीं ॥२०९॥

अंग-अंग-आभा-संग द्रवित स्रवित ह्वै कै,
रचि सचि लीनी सौंज रंगनि घनेरे की।
हँसनि लसनि आछी बोलनि चितौनि चाल,
मूरति रसाल रोम-रोम-छवि-हेरे की।
लिखि राख्यौ चित्र यौं प्रवाहरूपी नैननि पै,
लही न परति गति ऊलट अनेरे की।
रूप को चरित्र है अनंदघन जान प्यारी,
अकि धौं विचित्रताई मो चित-चितेरे की ॥२१०॥

सवैया

पाप के पुंज सकेलि सु कौन धौं आन घरी मैं बिरंचि बनाई।
रूप की लोभिनि रीझ भिजाय कै हाय इते पै सुजान मिलाई।
क्यौं घनआनँद धीर धरैं बिन पाँख निगोड़ी मरैं अकुलाई।
प्यास-भरी बरसैं तरसैं मुख देखन कौं अँखियाँ दुखहाई ॥२११॥

कवित्त

साखा-कुल टूटै द्वै रँगीली अभिलाषा भरि,
परि है पखान बीच घसनि घनी सहै।
सोच सूखी इते मान आनि कै सलिल बूड़ै,
घुरि जाय चायनि ही हाय गति को कहै।
तऊ दुखहाई देखौ छिदति सलाकनि सौं,
प्रेम की परख दैया कठिन महा अहै।

---

[२०९] गौहन = साथ। गोय० = छिपा लूँ। [२१०] सौंज = सामग्री। अनेरे = विलक्षण। [२११] आन = अन्य, बुरी। [२१२] पखान = पत्थर;

प्रिय-मनसा लौं वारी मिहँदी अनंदघन,
एरी जान प्यारी नेकु पायनि लग्यौ चहै ॥२१२॥

सवैया

साधनि ही भरियै भरियै, अपराधनि बाधनि के गुन छावत।
देखैं कहा? सपनो हू न देखत नैन यौं रैनदिना झर लावत।
जौ कहूँ जान लखैं घनआनँद तौ तन नेकु न औसर पावत।
कौन वियोग-भरे अँसुवा, जु सँजोग मैं आगेई देखन धावत ॥२१३॥

कवित्त

उठि न सकत, ससकत नैन-बान-बिंधे,
इते हू पै विषम बिषाद-जुर लू बरै।
सूरे पन-पूरे हेत-खेत तें हटैं न कहूँ,
प्रीति-बोझ बापुरे भए हैं दबि कूबरे।
संकट-समूह मैं बिचारे घिरे घुटैं सदा,
जानी न परत जान! कैसैं प्रान ऊबरे।
नेही दुखियानि की यहै गति अनंदघन,
चिंता मुरझानि सहैं न्याय रहैं दूबरे ॥२१४॥

दसन-बसन ओली भरियै रहै गुलाल,
हँसनि-लसनि त्यौं कपूर सरस्यौ करै।
साँसनि सुगंध सौंधे कोरिक समोय धरे,
अंग अंग रूप रंग-रस बरस्यौ करै।
जान प्यारी! तो तन अनंदघन-हित नित,
अमित सुहाग-राग, फाग दरस्यौ करै।
इते पै नवेली लाज अरस्यौ करै जु, प्यारो
मन फगुवा दै, गारी हू कौं तरस्यौ करै ॥२१५॥

पद्म। [२१३] अपराधनि = अपराधों से बाधा का जाल फैलाते हैं, अपराध की भाँति मिलने में बाधक बन जाते हैं। [२१४] हेत० = प्रेम का रणक्षेत्र [२१५] दसन० = होंठ। ओली = झोली। हित = निमित्त। फगुवा = होली

सुखनि समाज साज सजे तित सेवैं सदा,
जित नित नए हित-फंदनि गसत हौ।
दुख-तम-पुंजनि पठाय दै चकोरनि पै,
सुधाधर जान प्यारे! भलैं ही लसत हौ।
जीव सोच सूखै गति सुमिरैं अनंदघन,
कितहूँ उघरि कहूँ घुरि कै रसत हौ।
उजरनि बसी है हमारी अँखियानि देखौ,
सुबस सुदेस जहाँ भावते बसत हौ॥२१६॥

तपति उसास, औधि रूँधियै कहाँ लौं दैया,
बात बूझैं सैननि ही उतर उचारियै।
उड़ि चल्यौ रंग कैसैं राखियै कलंकी मुख,
अनलेखैं कहाँ लौं न घूँघट उघारियै।
जरि बरि छार ह्वै न जाय हाय ऐसी बैस,
चित-चढ़ी मूरति सुजान क्यौं उतारियै।
कठिन कुदाय आय घिरी हौं अनंदघन,
रावरी बसाय तौ बसाय न उजारियै॥२१७॥

कहाँ एतो पानिप बिचारी पिचकारी धरै,
आँसू-नदी नैननि उमगियै रहति है।
कहाँ ऐसी राँचनि हरदि केसू केसरि मैं,
जैसी पियराई गात पगियै रहति है।
चाँचरि-चोप हू सु तौ औसर ही माचति, पै
चिंता की चहल चित्त लगियै रहति है।
तपति-बुझावनि अनंदघन जान बिन,
होरी सी हमारे हियैं लगियै रहति है॥२१८॥

का उपहार। [२१६] हित = प्रेम के फंदे फेंका करते हैं। दै = देकर (भेजकर)। उघरि = उचटकर, पृथक् होकर। घुरि = घुलकर, भली भाँति मिलकर। [२१७] बैस = (वयस्) उम्र। रावरी० = यदि आप का वश चले, आप कर सकें तो। [२१८] केसू = किंशुक के फूल। चाँचरि = (चर्चरी) वसंत के गाने।

सवैया

अकुलानि के पानि पर्‌यौ दिनराति सु ज्यौ छिनकौ न कहूँ बहरै।
फिरिबोई करै चित चेटक चाक लौं धीरज को ठिक क्यौं ठहरै।
भए कागद-नाव उपाव सबै घनआनँद नेह-नदी-गहरै।
बिन जान सजीवन कौन हरै सजनी, बरहा-बिष की लहरै ॥२१९॥

कवित्त

रातिद्यौस कटक सजे ही रहै दहै दुख,
कहा कहौं गति या बियोग बजमारे की।
लियौ घेरि औचक अकेलो कै बिचारो जीव,
कछू न बसाति यौं उपाय-बल-हारे की।
जान प्यारे लागौ न गुहार तौ जुहार करि,
जूझिहै निकसि टेक गहैं पनधारे की।
हेत-खेत-धूरि चूर चूर ह्वै मिलैगो, तब
चलैगी कहानी घनआनँद तिहारे की ॥२२०॥

हाहा करि हारी ननिहारी रूखियै महा री,
मो हूँ सों चिन्हारी मानै तनकौ नहीं कहूँ।
साधि कै समाधि सी अराधति है काहि दैया,
अरहि पकरि अति निठुर करै न हूँ।
प्रानपति-आरति जौ जानै तौ सुजान प्यारी,
नावँ न धरैयै नावँ ऐसे औ कहाय हूँ।
राकानिसि आली व्याली भई घनआनँद कौं,
ढरि चल्यौ चंदा पै न ढरी चंदमुख हूँ ॥२२१॥

चहल = चहलपहल या कीच। [२१९] चेटक = कनौड़ा। ठिक ठहरना = ठिकाने लगना। [२२०] बजमारा = वज्र के मारे भी जो न मरे (गाली)। जुहार० = सहायता के लिए चिल्लाकर। तिहारे० = आप के किए की। [२२१] ननिहारी = न देखना [या 'निहारना' को अकर्मक मानें तो न देखना]। हूँ = हाँ। ढरि० = रात बीत चली। न ढरी० = चंद्रमुखवाली होकर भी न ढली (चंद्रमा से ही ढलना सीख लेती)।

जान प्यारी ! हौं तौ अपराधनि सौं पूरन हौं,
कहा कहौं ऐसी गति, आवत गरो रुक्यौ ।
साध मारै सुधा तो सुभाय के मिठासै, ताकी
आसा लै दहति, भै चरन-कंज सौं दुक्यौ ।
इते पै जौ रोष कै रसीली हियो पोढ़्यौ करौं,
तौ न कहूँ ठौर*जी को, वे हू झगरो चुक्यौ ।
ऐसें सोच-आँचनि अनंदघन सुखनिधि,
लपट कढ़ै न नेकौ हाहा जात ज्यौं फुक्यौ ॥२२२॥

सुधा तैं स्रवत विष, फूल मैं जमत सूल,
तम उगिलत चंद, भई नई रीति है ।
जल जारै अंग, और राग करै सुरभंग,
संपति विपति पारै, बड़ी विपरीति है ।
महागुन गहै दोषै, औषद हू रोग पोषै,
ऐसैं जान ! रस माहिं विरस अनीति है ।
दिनन को फेर मोहिं, तुम मन फेरि डाखौ,
अहो घनआनँद ! न जानौं कैसी बीतिहै ॥ २२३ ॥

गरल गुमान की गरावनि दसा को पान
करि करि, द्यौस रैनि प्रान घट घोटिवो ।
हेत खेत-धूरि चूरि चूरि साँस, पावँ राखि,
विष - समुदेग - बान - आगें उर ओटिवो ।
जान प्यारे जौ न मन आनैं तौ अनंदघन
भूलि, तू न सुमिरि परेख चख चोटिवो ।

---

[२२२] साध० = यदि तेरी स्वाभाविक माधुरी की इच्छा करूँ तो वह सुधा ही मारे डाल रही है । यदि (शीतलता के लिए) चरण-कमलों में छिपना चाहूँ तो उनकी आशा जलाती है । उनके प्राप्त होने की भी संभावना नहीं । रोष = जोश, साहस । [२२३] विरस = नीरसता । [२२४] गरावनि = गलानेवाली । पावँ० = डटकर । उर० = छाती पर सहना । परेखँ० = कटाक्ष से

* गैर ।

तिन्हैं यौँ सिराति छाती तोहि वै लगति ताती,
तेरे बाँटे आयौ है अँगारनि पै लोटिबो ॥ २२४ ॥
विकल विषाद-भरे ताही की तरफ तकि,
दामिनी हूँ लहकि वहकि यौँ जर्यौ करै।
जीवन - अधार - पन पूरित पुकारनि सौं,
आरत पपीहा नित कूकनि कर्यौ करै।
अथिर उदेग - गति देखि कै अनंदघन,
पौन बिड़र्यौ सो वन-वीथिनि रर्यौ करै।
बूँदैं न परतिँ मेरे जान जान प्यारी ! तेरे
बिरही कौं हेरि मेघ आँसुनि झर्यौ करै ॥ २२५ ॥

सवैया

पलकौ कलपै कलपौ पलकै सम होत सँजोग बियोग दुहू।
बिपरीति-भरी हित-रीति खरी समझी न परै समझै कछु हूँ।
घनआनँद जान सजीवन सौं, कहियै तौ समै लहियै न सुहूँ।
तित हेरैं अँधेरई दीसै सबै, बिन सूझ तैं पून्यो अबूझ कुहूँ ॥२२६॥

तीछन ईछन वान बखान सो पैनी दसान लै सान चढ़ावत।
प्रानन प्यारे, भरे अति पानिप, मायल घायल चोप चटावत।
यौँ घनआनँद छावत भावत जान-सजीवन-ओर तें आवत।
लोग हैं लागि कबित्त बनावत मोहिँ तौ मेरे कबित्त बनावत ॥२२७॥

चलि आई सदा रसरीति यहै, किधौँ मो निरमोही को मोह नयौ।
घनआनँद प्रान हरैं हँसि जान, न जानि परै उघर्यौ उनयौ।
चित चाह-निबाह की बात रहौ, हित कै नित ही दुख-दाह दयौ।
उर आस बिसासन त्रास तजै बसि एक ही बास बिदेस भयौ ॥२२८॥

घायल होने का पछतावा। [२२५] बिड़र्यौ = नष्ट हुआ सा होकर। [२२६] पलकौ० = संयोग में कल्प भी पल के समान शीघ्र बीतता था। सुहूँ = (शुद्ध) पूरा, ठीक। कुहूँ = अमावस्या। [२२७] मायल = प्रवृत्त। मेरे० = अर्थात् मेरी कविता का उद्गार स्वाभाविक है। [२२८] उनयौ = छाना। बिसासन =

कवित्त

मोरचंद्रिका सी सब देखन कौं धरे रहैं,
सूछम अगाध-रूप-साध उर आनहीं।
जाहि सूझ तिन हूँ सो देखि भूली ऐसी दसा,
ताहि ते बिचारे जड़ कैसें पहचानहीं।
जान प्रानप्यारे के बिलोकें अबिलोकिबे कौं,
हरप-बिपाद-स्वाद-बाद अनुमानहीं।
चाह मीठी पीर जिन्हैं उठति अनंदघन,
तेई आँखैं साखैं और पाँखैं कहा जानहीं ॥२२९॥

रति-सुख-स्वेद-ओप्यौ आनँद बिलोकि प्यारे,
प्राननि सिहाय मोह-मादिक महा छकै।
पीतपट-छोर लै लै ढोरत समीर धीर,
चुंबन की चाड़नि लुभाय रहि ना सकै।
परसि सरस बिधि रुचिर चिबुक त्यौंही,
कंपित करनि केलि-भाव-दावँ ही तकै।
लाजनि लसौंहीं चितवनि चाहि जान प्यारी,
सींचति अनंदघन हाँसी सौं भरीन कै ॥२३०॥

भूलनि करी है सुधि, जान ह्वै अजान भए,
खुलि मिले कपट सौं निपट रसाल हौ।
त्यागहि सादर दीनौ मान सनमान कीनौ,
अनुचित चित धरि उचित लहा लहौ।

बिस्वासघातों के भय से। [२२९] बिलोकैं० = प्रिय के देखने और न देखने को हर्ष और विषाद समझती हैं। साखैं० = वस्तुतः वे ही ठीक आँखें हैं। अन्य तो मोरपंख में की आँखें हैं जो व्यर्थ की होती हैं। [२३०] ओप्यौ = चमकाया हुआ। सिहाय = लालायित होकर। मादिक = मद, शराब। ढोरत० = हवा करते हैं। चिबुक = ठुड्डी। भरीन = भरन अर्थात् वृष्टि द्वारा। [२३१] भूलनि० = मुझे भूलने की ही याद है। मान = रूठना। लहा = लाभ। हित०=

जहाँ जब तुम जैसेँ तहीँ तैसेँ नीके रहौ अजू,
सब बिधि प्रानप्यारे हित आलबाल हौ।
मन तुम मोह्यौ ताहि नेकु राखे रहियौ जू,
पहो घनआनँद जू गरेँ गुनमाल हौ ॥२३१॥

सवैया

जौ उहि ओर घटा घनघोर सोँ चातक मोर उछाहनि फूलते।
त्यौँ घनआनँद औसर साजि सँजोगिनि-भुंड हिँडोरनि भूलते।
ग्रीषम तेँ हतई जु लता द्रुम-अंकनि लागतीँ ह्वै रसमूल ते।
तौ सजनी! जिय-ज्यावन जान सु क्यौँ इत की हित की सुधि भूलते॥२३२॥

कवित्त

उठे बड़े भोर चैन चोर लाह साह दोऊ,
मति-गति-ठगे न सकत चलि गेह कौँ।
छाई पियराई और बिथा हियराई जानै,
जके थके बैन नैन, निदरत मेह कौँ।
दुसह दसाहि देखेँ समै बिसमय होत,
खग मृग द्रुम बेली बिसरत देह कौँ।
जान घनआनँद अनोखो अनियारो नेह,
दुहूँ दिसि बिषम रच्यौ बिरंचि बेह कौँ ॥२३३॥

सवैया

सोएँ न सोयबो, जागेँ न जाग, अनोखियै लाग सु आँखिन लागी।
देखत फूल, पै भूल भरी यह सूल रहै नित ही चित जागी।
चेटक जान-सजीवनि-मूरति रूप-अनूप महारस-पागी।
कौन बियोग-दसा घनआनँद, मो मति-संग रहै अति खागी ॥२३४॥

प्रेम के थाला। [२३२] हतई = मारी हुई। [२३३] मेह = वृष्टि। बेह० = (वेध) छेदन के लिए। [२३४] देखत० = प्रिय को जब तक देखती हूँ तभी तक प्रफुल्लता रहती है। खागी = लगी हुई, मिली हुई।

मीत सुजान मिले को महासुख अंगनि भोय समोय रह्यौ है।
स्वाद जगे रसरंग-पगे अति, जानत वेई न जात कह्यौ है।
ह्वै उर एक भए घुरि कै घनआनँद सुद्ध समीप लह्यौ है।
रूप-अनूप-तरंगनि चाहि तऊ चित चाह-प्रवाह बह्यौ है ॥२३५॥

अति रूप की रासि रसीलियै मूरति जोहौं जबै तब रीझि छकौं।
घनआनँद जान-चरित्र के रंगनि चित्र-विचित्र दसा सौं थकौं।
अनदेखैं दई जु कछू गति देखियै जीव ही जानै न ब्यौरि सकौं।
यह नेह सदेह अदेह करै पचि हारि विचारि विचारि जकौं ॥२३६॥

स्याम घटा लपटी थिर बीज कि सोहै अमावस-अंक उज्यारी।
धूम के पुंज मैं ज्वाल की माल सी पै दृग-सीतलता-सुख-कारी।
कै छवि छायौ सिंगार निहारि सुजान-तिया-तन-दीपति प्यारी।
कैसी फबी घनआनँद चोपनि सौं पहिरी चुनि साँवरी सारी ॥२३७॥

कित जाउँ लै जान-सजीवन! प्रान कौं आन के लेखे न छाँहौं धिजौं।
इहि साल दहौं नित ही दुख-ज्वालऽरु सोचनि लोचन-बारि भिजौं।
दुरि आपुन पै हूँ इकौसैं मिलौं घनआनँद यौं अनखानि छिजौं।
डर डीठि के नीठि न देखि सकौं सु अनोखियै रीझि पै रीझि खिजौं ॥२३८॥

मरिबो बिसराम गनै वह तौ यह बापुरो मीत तज्यौ तरसै।
यह रूप छटा न सहारि सकै यह तेज तवै चितवै बरसै।

[२३५] भोय० = भींगकर मिल गया है। [२३६] न ब्यौरि० = विवेचना करके समझ नहीं सकती। [२३७] बीज = (विद्युत्) बिजली। धूम = धुएँ में लपटों की भाँति। सिंगार = शृंगार (कविपरंपरा में यह श्यामवर्ण माना जाता है)। [२३८] न धिजौं = नहीं समझा जाता। दुरि० = फिर भी स्वयं अपनी ही ओर से छिपकर आप से अकेले में मिलती हूँ। डर० = दृष्टि लग जाने के भय से आप की शोभा भी भली भाँति नहीं देख पाती। अपनी इसी विलक्षण रीझ पर रीझकर खीझती रहती हूँ। [२३९] वह = मीन। यह = मेरा मन। न सहारि० = सँभाल नहीं सकता। यह = मेरा मन।

घनआनँद कौन अनोखी दसा मति आवरी बावरी ह्वै थरसै।
बिछुर मिलैं मीन-पतंग-दसा कहा मो जिय की गति कौं परसै ॥२३९॥

कबित्त

तेरे देखिबे कौं सब ही त्यौं अनदेखी करी,
तू हू जौ न देखै तौ दिखाऊँ काहि गति रे।
सुनि निरमोही एक तोही सौं लगाव मोही,
सोही कहि कैसें ऐसी निठुराई अति रे।
बिष सी कथानि मानि सुधा पान करौं जान!
जीवन-निधान ह्वै बिसासी मारि मति रे।
जाहि जो भजै सो ताहि तजै घनआनँद क्यौं,
हति कै हितूनि, कहौ काहू पाई पति रे? ॥२४०॥

लगी है लगनि प्यारे पगी है सुरति तोसौं,
जगी है बिकलाई ठगी सी सदा रहौं।
जियरा उड्यौ सो डोलै हियरा धक्यौई करै,
पियराई छाई तन, सियराई दौ दहौं।
ऊनो भयौ जीवो अब सूनो सब जग दीसै,
दूनो दूनो दुख एक एक छिन मैं सहौं।
तेरे तौ न लेखो, मोहिं मारत परेखो महा,
जान घनआनँद पै खोयबो लहा लहौं ॥२४१॥

कौन की सरन जैयै आपु त्यौं न काहू पैयै,
सूनो सो चितैयै जग, दैया कित कूकियै।
सोचनि समैयै, मति हेरत हिरैयै, उर
आँसुनि भिजैयै, ताप तैयै तन सूकियै।

तपै = तपता है। आवरी = व्याकुल। थरसै = त्रस्त होती है। [२४०] पति = प्रतिष्ठा। [२४१] जियरा = जीव, प्राण। हियरा = हृदय, छाती। धक्यौई० = जलता ही रहता है। दौ = दावाग्नि। खोयबो० = खोने का ही लाभ होता है, अपने को खो बैठती हूँ। [२४२] आपु त्यौं० = अपनी ओर उन्मुख होनेवाला किसी को नहीं पाती। रितैयै० = मन कहाँ हल्का करूँ।

क्यौं करि बितैयै, कैसें कहाँ धौं रितैयै मन,
बिना जान प्यारे कब जीवन तें चूकियै।
बनी है कठिन महा, मोहिं घनआनँद यौं,
मीचौ मरि गई आसरो न जित दूकियै ॥२४२॥
अधिक बधिक तें सुजान! रीति रावरी है,
कपट-चुगौ दै फिरि निपट करौ बुरी।
गुननि पकरि लै, निपाँख करि छोरि देहु,
मरहि न जियै, महा बिषम दया-छुरी।
हौं न जानौं,कौन धौं ही या मैं सिद्धि स्वारथ की,
लखी क्यौं परति प्यारे अंतर-कथा दुरी।
कैसें आसा-द्रुम पै बसेरो लहै प्रान-खग,
बनक-निकाई घनआनँद नई जुरी ॥२४३॥
विष को डवा* है कै उदेग को अँवा है, कल
पलकौ न वाहै अथवा है चक्र बात को।
बीजुरी को बंधु किधौं दुख ही को सिंधु है, कि
महामोह-अंध दंड अतन-अलात को।
द्रोह को दिनेस कै उजार निज देस, किधौं
आतम-कलेस है कि जंत्र सुख-घात को।
बरी मन मेरो घनआनँद सुजान प्यारे,
कैसें हित सीख्यौ जू तिहारे पच्छपात को ॥२४४॥
मेरो जीव तोहि चाहै, तू न तनकौ उमाहै,
मीन-जल-कथा है कि या हू तें बिसेखियै।

जीवन० = मरूँ भी तो उनके बिना कैसे मरूँ। मीचौ = मृत्यु भी। दूकियै = छिप सकूँ। [२४३] चुगौ = चारा। निपाँख = पंख से हीन, पक्ष या सहायक से रहित। ही = थी। बनक = बन की वस्तु, फँसाने का चारा; सजधज। [२४४] डवा = थैला। अँवा = आँवाँ। चक्र बात० = बवंडर। अतन० =

* दिवा।

ता बिन सो मरै, छूटि परै, जड़ कहा ढरै,
भरौं हौं, न मरौं जान! हियें अवरेखियै।
पलकौ विछोह-आगै. कलपौ अलप लागै,
थिलपौं सदाई, नेकु तलफनि देखियै।
सूनो जग हेरौं रे अमोही! कहि काहि टेरौं,
आनँद के घन ऐसी कौन लेखें लेखियै ॥२४५॥

सवैया

अनमानिबोई मन मानि रह्यौ अरु मौन ही सौं कछु बोलति है।
ननिहारनि ओर निहारि रही उर-गाँठि-त्यौं अंतर खोलति है।
रिस-संग महा रसरंग बढ़्यौ, जड़ताइयै गौहन डोलति है।
घनआनँद जान पिया के हियें कितकौ फिरि बैठि कलोलति है ॥२४६॥

तुम साँची कहौ हित कै चित की कित भूल-भरे इत आय परे।
कि कहूँ पहिली परतीति-मढ़े घनआनँद छाय सुभाय ढरे।
बलि बैठौ सुजान तौ को बरजै धरि पावन पावन नैन करे।
चकि से जकि से निरखौं परखौं सुनिहौं जिहिं रंग-तरंग तरे ॥२४७॥

कहियै सु कहा रहियै गहि मौन, अरी सजनी उन जैसी करी।
परतीति दै कीनी अनीति महा, बिष दीनौ दिखाय मिठास-डरी।
इत काहू सौं मेल रह्यौ न कछू, उत खेल सी ह्वै सब बात टरी।
घनआनँद जान सयान की खानि भुराई हमारेई पैंड़े परी ॥२४८॥

अब यौं उर आवति है सजनी उन सौं सपने हूँ न बोलियै री।
अरु जौ निलजे ह्वै मिलैं तौ मिलौं, मन तें गस-गूज न खोलियै री।

काम के अलातचक्र का दंड है। जत्र = यंत्र। [२४५] भरौं = दिन काटती हूँ। [२४६] उर० = मन की गाँठ के प्रति हृदय खोल रखा है। गौहन = साथ। फिरि० = रूठकर मुँह फेरे बैठी हुई। [२४७] चित की = चित्त की बात। पावन = पैरों को। पावन = पवित्र। [२४८] डरी = डली, टुकड़ा। भुराई० = भोलापन मेरे पीछे पड़ गया है। [२४९] गस० = गाँस की लपेट।

दृग देखन की कछु सौं हैं नहीं, इन गोहन भूलि न डोलियै री।
घनआनँद जान महा कपटी चित काहैं परेखनि छोलियै री ॥२४६॥

कवित्त

मुरझाने सबै अंग, रह्यौ न तनक रंग,
वैरी सु अनंग पीर पारै जरि गयौ ना।
इते पै बसंत सो सहायक समीप याके,
महा मतवारो कहूँ काहू तैं जु नयौ ना।
तीखे नए नीके जी के गाहक सरनि लै लै,
वेधै मन कौं कपूत पिता-मोह-मयौ ना।
पवन-गवन-संग प्राननि पठायहौं तौ,
जान घनआनँद को आवन जौ भयौ ना ॥२५०॥

सवैया

वारनि भौंर-कुमार भजैं, पुहुपावलि हास-विकासहि पूजति।
पाठ कियौ करै आठ हू जाम,सु बोलनि सीखिवें कोकिल कूजति।
वे घनआनँद रीझि छए तकि तो छवि आन क्यौं आँखिन छूजति।
परी* वसंत-लजावनि कंत सौं जान ह्वै मानमई कित हूजति ॥२५१॥
अधरासव-पान के छाक छके कर चाँपि कपोल-सवाद-पगे।
घनआनँद भीजि रहे रिझवार खगे सब अंग अनंग-दगे।
करि खंडन गंडन मंडन दै निरखे तैं अखंडित लोभ लगे।
सुखदान सुजान समान महा सु कहा कहौं आरसी भाग जगे ॥२५२॥

कवित्त

राधा नवयौवन विलास को वसंत जहाँ,
अंग अंग रंगनि विकास ही की भीर है।
प्यारो वनमाली घनआनँद सुजान सेवै,
जाहि देखि काम के हिये मैं नाहिं धीर है।

---

[२५०] पिता = अर्थात् मन। [२५१] भजैं = सेवा करते हैं। [२५२] खगे = लगे। गंडन = कपोलपाली। [२५३] साँसन = श्वासों से।

* और।

अंतर गठीले मुख ढीले ढीले बैन बोलौ,
सुंदर सुजान तऊ प्राननि खरे खगौ।
साँच की सी मूरति ह्वै आँखिन मैं पैठौ आय,
महा निरमोही मढ़े मोह सौं हियो ठगौ।
आनँद के घन उघरे पै छल छाय लेत,
कटुताई-भरे रोम रोमहि अमी पगौ।
चाह-मतवारी मति भई है हमारी देखौ,
कपट करे हूँ प्यारे निपट भले लगौ ॥२६१॥

सवैया

सौंधे की बास उसासहि रोकति, चंदन दाहक गाहक जी को।
नैननि बैरी सो है री गुलाल अबीर उड़ावत धीरज ही को।
राग बिराग धमार त्यौं धार सी,लौटि पर्‌यौ ढँग यौं सब ही को।
रंग-रचावन जान बिना घनआनँद लागत फागुन फीको ॥२६२॥
सुनि री सजनी! रजनी की कथा इन नैन-चकोरन ज्यौं बितई।
मुख-चंद सुजान सजीवन को लखि पाएँ भई कछु रीति नई।
अभिलाषनि आतुरताई-घटा तब ही घनआनँद आनि छई।
सु बिहात न जानि परी भ्रम सी कब ह्वै बिसवासिनि बीति गई ॥२६३॥
मन जैसैं कछू तुम्हैं चाहत है सु बखानियै कैसैं सुजान ही हौ।
इन प्राननि एक सदा गति रावरे, बावरे लौं लगियै नित लौ।
बुधि औ सुधि नैननि बैननि मैं करि बास निरंतर अंतर गौ।
उघरौ जग छाय रहे घनआनँद चातिक त्यौं तकियै अब तौ ॥२६४॥
लगियै रहै लालसा देखन की किहि भाँति भटू निसद्यौस कटै।
करि भीर भरी यह पीर महा बिरहा तनको हिय तैं न हटै।

[२६०] आड़े = सामने। [२६१] खगौ = धँसते हो। उघरे = पृथक् हो। [२६२] सौंधे = सुगंधित पदार्थ। अबीर = अभ्रक का चूर्ण, बुक्का। ही = हृदय। धमार = होली के गान। धार = तलवार। [२६३] बिस-० = विश्वासघातिनी (रात्रि)। [२६४] लौ = लगन। अंतर = मन। गौ = चला गया। उघरौ० = जगत् हट गया। [२६५] बिसमै० = बुद्धि एकबारगी आश्चर्य में

घनआनँद जान-सँजोग-समै, बिसमै बुधि एकहि बेर बटै।
सपनो सो टरै, फिरि सौगुनो चेटक बाढ़त डाढ़त घोटि घटै ॥२६५॥
अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीँ।
तहाँ साँचे चलैँ तजि आपुनपौ झझकैँ कपटी जे निसाँक नहीँ।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक तेँ दूसरो आँक नहीँ।
तुम कौन धौँ पाटी पढ़े हौ कहौ मन लेहु पै देहु छटाँक नहीँ ॥२६६॥

कवित्त

करुवो मधुर लागै वाको विष अंग भएँ,
याहि देखेँ रस हू मैँ कटुता बसति है।
वाके एक मुख ही तेँ बाढ़त बिकार तन,
यह सरबंग आनि प्राननि गसति है।
सुंदर सुजान जू सजीवन तिहारो ध्यान,
तासौँ कोटिगुनी ह्वै लहरि सरसति है।
पापिनि डरारी भारी साँपिनि निसा बिसारी,
बैरिनि अनोखी मोहिँ डाहनि डसति है ॥२६७
कारी कूर कोकिला! कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूकि कूकि अब ही करेजो किन कोरि लै।
पैँड़े परे पापी ये कलापी निसद्यौस ज्यौँ ही,
चातक! घातक त्यौँ ही तू हू कान फारि लै।
आनँद के घन प्रान-जीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली सब घेरौ दल जोरि लै।

लीन हो जाती है। चेटक = माया। [२६६] बाँक = वक्र। निसाँक = नि:शंक। आँक = अंक, चिह्न। मन = हृदय ; ४० सेर। छटाँक = थोड़ा ; सेर का सोलहवाँ भाग। 'छटाँक' को उलटा पढ़ने से 'कटाछ' होता है अथवा छटा + अंक = शोभा की झलक। [२६७] रस = रसीले अर्थात् सुखद पदार्थ। सरबंग = सर्वांग। लहरि = विष का दौरा। डरारी = डरावनी। बिसारी = विषैली। डाहनि = नागिन से होड़ लगाकर। [२६८] कोरि० = खरोंचकर निकाल ले। पैँड़े० = पीछे पड़े। कलापी = मोर। घेरौ० = घेरनेवाली सेना।

जौ लौं करैं आवन बिनोद-बरसावन वे,
तौ लौं रे डरारे बजमारे घन घोरि लै ॥२६८॥

सवैया

वैरी बियोग की हूकनि जारत, कूकि उठै अचकाँ अधरातक।
वेधत प्रान, बिना ही कमान सु बान से बोल सौं, कान ह्वै घातक।
सोचनि ही पचियै बचियै कित, डोलत मो तन लाएँ महातक।
वे घनआनँद जाय छुए उत, पैंडे पर्‌यौ इत पातकी चातक ॥२६९॥

कवित्त

अंतर मैं बासी पै प्रबासी को सो अंतर है,
मेरी न सुनत दैया आपनीयौ ना कहौ।
लोचननि तारे ह्व सुझावौ सब सूझौ नाहिं,
बूझी न परति, ऐसैं सोचनि कहा दहौ।
हौ तौ जानराय, जाने जाहु न अजान यातें,
आनँद के घन छाय छाय उघरे रहौ।
मूरति मया की हाहा सूरति दिखैयै नेकु,
हमैं खोय या बिधि हो कौन धौं लहा लहौ ॥२७०॥

सवैया

कित को ढरि गौ वह ढार अहो जिहिं मो तन आँखिन ढोरत हे।
अरसानि गही उहि बानि कछू सरसानि सौं आनि रिहोरत हे।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ तब यौं सब भाँतिन भोरत हे।
मन माहिँ जौ तोरन ही, तौ कहौ बिसवासी सनेह क्यौं जोरत हे ॥२७१॥

बजमारे = वज्र मारनेवाला ; वज्र का मारा हुआ, दुष्ट। घोरि० = गरज ले। [२६९] हूकनि = पीडाओं से। तन = ओर। तक = टकटकी। पैंडे० = पीछे पड़ा। [२७०] अंतर = मन। अंतर = पार्थक्य। जानराय = ज्ञानियों में श्रेष्ठ। खोय = जीवन नष्ट करके। लहा = लाभ। [२७१] ढार = ढलन। मो० = मेरी ओर (अनुरागपूर्वक) देखते थे। बिसवासी = विश्वासघाती।

घनआनँद प्यारे सुजान ! सुनौ जिहि भाँतिन हौं दुख-सूल सहौं।
नहिं आवनि-औधि, न रावरी आस, इते पर एक सी बाट चहौं।
यह देखि अकारन मेरी दसा कोऊ बूझै तौ ऊतर कौन कहौं।
जिय नेकु बिचारि कै देहु बताय हहा पिय ! दूरि तें पाय गहौं ॥२७२॥

बिरहा-रवि सौं घट-व्योम तच्यौ बिजुरी सी खिवैं इकली* छतियाँ।
हिय-सागर तें दृग-मेघ भरे उघरे बरसैं दिन औ रतियाँ।
घनआनँद जान अनोखी दसा, न लखौं दई कैसें लिखौं पतियाँ।
नित सावन डीठि सु बैठक मैं टपकैं बरुनी तिहि ओलतियाँ ॥२७३॥

इत भायनि भाँवरे भौंर भरैं, उत चायनि चाहि चकोर चकैं।
निसिवासर फूलनि, भूलनि मैं अति, रूप की बात न ब्यौरि सकैं।
घनआनँद घूँघट-ओट भए तब बावरे लौं चहुँ ओर तकैं।
पिय के मुख कौतुक देखि सखी ! निज नैन बिसेष सुजान छकैं ॥२७४॥

कवित्त

मोहन अनूप रूप सुंदर सुजान जू को,
ताहि चाहि मन मोहि दसा महा मोह की।
अनोखी हिलग दैया ! बिछुरै तौ मिल्यौ चाहै,
मिले हू मैं मारै जारै खरक बिछोह की।
कैसें धरौं धीर बीर ! अति ही असाधि पीर,
जतन ही रोग याहि नीके करि टोह की।
देखें अनदेखैं तहीं अटक्यौ अनंदघन,
ऐसी गति कहौ कहा चुंबक औ लोह की ॥२७५॥

---

[२७२] चहौं = देखती हूँ। [२७३] घट = शरीर। खिवैं = चमकती हैं। इकली = अकेली अथवा इक लौ = एक ही ढंग से, निरंतर। ओलतियाँ = छप्पर का छोर, जहाँ से बरसात का पानी टपकता है, ओरी। [२७४] भायनि = भावों से भरकर। न ब्यौरि० = निर्णय नहीं कर पाते। [२७५] हिलग =

* इक लौ।

सवैया

क्यौँ हूँ न चैन परै, दिनरैन सु पैड़े पस्यौ बिरहा बजमारो।
ज्यौं बहरै न कहूँ छिन एक हू, चाहे सुजान सजीवन प्यारो।
ऐसी बढ़ी घनआनँद बेदनि दैया उपाय तें आवे तँवारो।
हौँ ही भरौँ अकली, कहौँ कौन सौँ, जा बिधि होत है साँझ सबारो ॥२७६॥

कबित्त

जोई रात प्यारे-संग बातन न जात जानी,
सोई अब कहाँ तें बढ़नि लियें आई है।
जोई दिन कंत-साथ जीवन को फल लाग्यौ,
सोई बिन अंत देत अंतक दुहाई है।
इनकी तौ रहौ, मेरे अंग अंग औरै भए,
सूखी सुख-लता झालरति मुरझाई है।
आली! घनआनँद सुजान सौँ बिछुरि परें,
आपौ न मिलत महा बिपरीति छाई है ॥ २७७ ॥

सवैया

जिन आँखिन रूप-चिन्हारि भई तिनकी नित नींद ही जागनि है।
हित-पीर सौँ पूरित जो हियरा, फिरि ताहि कहौ कहा लागनि है।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ जियराहि सदा दुख-दागनि है।
सुखमै मुखचंद बिना निरखेँ नख ते सिख लौँ बिष-पागनि है ॥२७८॥

कबित्त

घर बन बीथिन मैँ जित तित तुम्हैँ देखौँ,
इते हू पै जान! भई नई बिरहामई।
बिषम उदेग-आगि लपटैँ अँतर लागैँ,
कैसेँ कहौँ जैसेँ कछू तचनि महा तई।

चाह। खरक = खटक। टोह = खोज। [२७६] तँवारो = मूर्छा। सबारो = सबेरा। [२७७] अंतक = यम। झालरति = झलराते ही, लहराते ही। आपौ = अपनापन; आप, जल ('घन' के साहचर्य मैँ)। [२७८] सुखमै = सुखमय। [२७९] अँतर = अंतर, मन। तपनि = ताप। निदर० = निरादर

फूटि फटि टूक टूक ह्वै कै उड़ि जाय हियो ,
बचिवो अचंभा, मीचौ निदर करे गई।
आनँद के घन लखैं अनलखैं दुहूँ ओर ,
दईमारी हारी हम आप हौ निरदई ॥ २७६ ॥

सवैया

विरच्यौ किहिं दोष न जानि सकौं, जु गयौ मन मो तजि रोषन तैं ।
जिय! ता बिन यौं अब आतुर क्यौं तब तौ तनकौ बिरमायौ न तैं ।
घनआनँद जान अमोही महा अपनाय इते पर त्यागि हतैं ।
अधबीच पर्‌यौ दुख-ज्वाल जरै सठ! को सुख कौं हठि द्वार दतैं॥२८०॥

पूरन प्रेम को मंत्र महा पन, जा मधि सोधि सुधारि है लेख्यौ ।
ताही के चारु चरित्र बिचित्रनि यौं पचि कै रचि राखि बिसेख्यौ ।
ऐसो हियो-हित-पत्र पवित्र जु आन-कथा न कहूँ अवरेख्यौ ।
सो घनआनँद जान अजान लौं टूक कियौ पर बाँचि न देख्यौ ॥२८१॥

जीव की बात जनाइयै क्यौं करि जान कहाय अजाननि आगौ ।
तीरन मारि कै पीर न पावत एक सो मानत रोइबो रागौ ।
ऐसी बनी घनआनँद आनि जु आन न सूझत, सो किन त्यागौ ।
प्रान मरैंगे, भरैंगे बिथा, पै अमोही सौं काहू को मोह न लागौ ॥२८२॥

तोहि तौ खेल, पै मो हिय सेल सो, एरे अमोही बिछोह महा दुख ।
जाहि जु लागै सु ताहि सहैगो, पै क्यौं न पर्‌यौ लहि तू तौ सदा सुख।
एक ही टेक, न दूसरी जानति, जीवन-प्रान सुजान लियें रुख ।
ऐसी सुहाय तौ मेरो कहा वस, देखिहौं पीठि, दुरायहौ जौ मुख ॥२८३॥

करके मृत्यु भी चली गई। निरदई = निर्दय , निर + दई, दैव के शासन से परे। [२८०] बिरच्यौ = उदास हो गया। को० = किस सुख के लिए दरवाजे पर सिपके रहें। [२८१] पन = प्रतिज्ञा। न अवरेख्यौ = नहीं अंकित की। [२८२] आगौ = अग्रगण्य, बढ़कर। पीर० = पीड़ा नहीं समझता। रागौ =

छप्पय

महा-दूध सम गनै, हंस-बक-भेद न जानै।
कोकिल-काक न ग्यान, काँच-मनि एक प्रमानै।
चंदन-ढाक समान, राँग-रूपौ सम तोलै।
बिन बिबेक गुन-दोष, मूढ़-कवि ब्यौरि न बोलै।
प्रेम-नेम, हित-चतुरई, जे न बिचारत नेकु मन।
सपने हूँ न बिलंबियै, छिन तिन ढिग आनंदघन ॥२८४॥

कहियै काहि जताय हाय जो मो मधि बीतै।
जरनि बुझौं दुख-जाल धकौं, निसिबासर ही तै।
दुसह सुजान बियोग बसौं ताही सँजोग नित।
बहरि परै नहिँ समै, गमै जियरा जित को तित।
अहो दई-रचना निरखि, रीझि खीझि मुरझौ सु मन।
ऐसी बिरचि बिरचि को कहा सर्यौ आनंदघन ॥ २८५॥

सवैया

प्यार को सो सपनो हँसि हेरनि ऐसी चितौनि कहौ कहाँ पाई।
बंक महाविष-भोवन प्रान सुधाई-सनी मुसक्यानि-सुधाई।
यौं घनआनँद चेटक मूरति लै जब अंतर-ज्वाल बसाई।
कैसे दुराइहैं जान अमोही, मिलाप मैं एतियौ ऊखिलताई ॥२८६॥

कबित्त

मिलत न क्यौं हूँ भरे रावरी अमिलताई,
हिये मैं किये बिसाल जे बिछोह-छत हैँ।

गाना। [२८३] सेल = बरछा (कष्टदायक)। [२८४] महा = मट्ठा। ढाक = पलाश। राँगा = राग। रूपौ = चाँदी भी। कबि = पंडित। ब्यौरि = विवेक करके। [२८५] बुझौं = बुझती हूँ; शिथिल पड़ती हूँ। धकौं = तपती हूँ। बहरि० = समय कटता नहीं। गमै = भटकता है। सर्यौ = काम निकला। [२८६] विष० = विष मिला देनेवाली। सुधाई = अमृत से ही। सुधाई = सीधापन। चेटक = मायाविनी। ऊखिलताई = अजनबीपन; उष्णता।

प्रीतम अनेरे मेरे घूमत अनेरे प्रान,
विष-भोए विषम-बिसास बान-हत हैं।
प्यार मैं परम पूरो, सुन्यौ हू न हो सु देख्यौ,
जान परी जान ये अमोहिन के मत हैं।
पौन को प्रवेस हो न जहाँ घनआनँद पै,
तहाँ लै कहाँ तैं बीच पारे परबत हैं ॥२८७॥

आनकानी-आरसी निहारिबो करौगे कौ लौं,
कहा मो चकित दसा-त्यौं न दीठि डोलिहै।
मौन हू सौं देखिहौं कितक पन पालिहौ जू,
कूक-भरी मूकता बुलाय आप बोलिहै।
जान घनआनँद! यौं मोहिं तुम्हैं पैज परी,
जानियैगी टेक टरैं कौन धौं मलोलिहै।
रूई दियैं रहौगे कहाँ लौं बहरायबे की,
कबहूँ तौ मेरियै पुकार कान खोलिहै ॥ २८८ ॥

सवैया

घनआनँद जान! सुनौ चित दै हित-रीति दई तुम तौ तजि कै।
इत साहस सौं घन संकट कोटिक आए समाजन कौं सजि कै।
मन के पन पूरन पूरि रह्यौ सु भजै कित या बिधि सौं भजि कै।
यह देखि सनेह-बिदेह-दसा अति हीन ह्वै दीन गए लजि कै ॥२८९॥

कवित्त

रूप-उजियारे जान! प्रानन के प्यारे, कब
करौगे जुन्हैया दैया बिरह-महा-तमैं।

---

[२८७] मिलत० = नहीं भरते (घाव)। अमिलताई = फटे रहने की बान; खटाई (अम्ल) अर्थात् अपट। छत = घाव। अनेरे = दूर; विलक्षण। बिसास = विश्वासघात। पारे = डाले। [२८८] आरसी = (आदर्श) दर्पण। त्यौं = ओर। बुलाय० = आप को बुलाकर तब मेरी मूकता (मौन) बोलेगी। पैज = प्रतिज्ञा। मलोलिहै = पछताएगा। बहरायबे की = बहलाने की; बधिर बने रहने की। [२८९] भजै० = कहाँ भागे। भजि कै = अर्थात् प्रेम करके।

सुखद सुधा तैं हँसि हेरनि पिवाय पिय,
जियहि जिवाय, मारिहौ उदेग से जमैं।
सुंदर सुदेस आँखैं वहुस्यौ बसाय, आय,
बसिहौ छबीले जैसैं हुलसि हियैं रमैं।
ह्वै है सोऊ घरी भाग-उघरी अनंदघन,
सुरस बरसि लाल देखिहौ हरी हमैं ॥२६०॥

सवैया

किंसुक-पुंज से फूलि रहे सु लगी उर दौ जु वियोग तिहारे।
मातो फिरै, न घिरै अबलानि पै, जान मनोज यौँ डारत मारे।
ह्वै अभिलाषनि पात-निपात कढ़े हिय-सूल उसासनि-डारे।
है पतझार बसंत दुहूँ घनआनँद एक ही बार हमारे ॥२६१॥

जीवनि-मूरति जान सुनौ गति, जौ जिय रावरो प्यार न पावतौ।
संगम-रंग अनंग उमंगनि भूमि न आनँद-अंबुद छावतौ ॥
लाड़िलो जोबन त्यौँ अधरासव चोपनि लोभी मनै नहिँ भावतौ।
तौ उर-दाहक प्राननि गाहक रूखे भए को परेखो न आवतौ ॥२६२॥

कबित्त

तोहि सब गावैँ एक तोही कौं बतावैँ बेद,
पावैँ फल ध्यावैँ जैसी भावनानि भरि रे।
जल-थल-व्यापी सदा अंतरजामी उदार,
जगत मैं नावँ जानराय रह्यौ परि रे।
एते गुन पाय हाय छाय घनआनँद यौं,
कैधौं मोहिं दीस्यौ निरगुन ही उघरि रे।

---

[२६०] तमैं = अंधकार को। जमैं = यम को। सुदेस = अच्छी बस्ती। भाग० = भाग्य से उद्घाटित, भाग्य से भरी। सुरस = जल; आनंद। [२६१] मनोज = कामदेवरूपी हाथी। पात० = पत्तों का गिरना। डारे = उच्छ्वासरूपी डाल में। [२६२] आनँद = आनंद का बादल; घनानंद। अधरासव = होंठ का आसव (शराब)। परेखो = पछतावा। [२६३] जानराय = ज्ञानियों में श्रेष्ठ। निरगुन =

जरौं बिरहागिनि मैं करौं हौं पुकार कासौं,
दई गयौ तू हूँ निरदई ओर ढरि रे ॥२९३॥

चंदहि चकोर करै, सोऊ ससि देह धरै,
मनसा हू ररै, एक देखिबे कौं रहै द्वै* ।
ज्ञान हूँ तें आगे जाकी पदवी परम ऊँची,
रस उपजावै तामैं भोगी भोगलात ग्वै ।
जान घनआनँद अनोखो यह प्रेम पंथ,
भूले ते चलत, रहैं सुधि के थकित ह्वै ।
बुरो जिन मानौ जौ न जानौ कहूँ सीखि लेहु,
रसना कैं छाले परैं प्यारे नेह-नावँ ल्वै ॥२९४॥

सवैया

घनआनँद जीवन-रूप सुजान ह्वै पावत क्यौं दृगप्यास नहीं ।
अरु फूलि रहे कुसुमाकर से सु कहूँ पहचान की बास नहीं ।
रसिकाई भरे अपने मन पै सपने रस आस हू पास नहीं ।
पचि कौने बिरंचि रचे हौ कहौ जु हितूनि हतौ हिय त्रास नहीं ॥२९५॥

सूने परे दृग-भौन सुजान जे ते बहुर्यौ कब आय बसायहौ ।
सोचनि ही मुरभयौ पिय जो हिय सो सुख साँचि† उदेग नसायहौ ।

निर्गुण (ब्रह्म) ; गुणहीन , आकाश । दई = दैव, ब्रह्म । निरदई = निर्दय प्रिय , निर + दई, दैव के शासन को न माननेवाला । [२९४] सोऊ = चकोर भी । एक० = वे एक ही हैं केवल देखने में दो हैं , प्रेम की चरमावस्था में प्रिय और प्रेमी में अभेद हो जाता है । भोगी० = विषयी भी जिसमें डूबकर वशीभूत हो जाते हैं । विषयानंद को भूलकर प्रेमानंद में मग्न हो जाते हैं । भूले = बेहोश ; प्रेममग्न । सुधि के० = सतर्क होकर चलनेवाले नहीं चल सकते । कैं = के ऊपर । [२९५] प्यास पाना = प्यास को समझना ('पीर पाना' की भाँति) । कुसुमाकर = फुलवाड़ी । बास = गंध , पता । [२९६] साँचि = भरकर ।

* रवै । † सींचि ।

हाय दई घनआनँद ह्वै करि कौ लौं वियोग के ताप तपायहौ।
एहो हँसी जिन जानौ हहा, हमैं ख्वाय कहौ अब काहि हँसायहौ ॥२६६॥

कबित्त

जहाँ तें पधारे मेरे नैननि ही पाँव धारे,
वारे ये विचारे प्रान पैंड़ पैंड़ पै मनौ।
आतुर न होहु हाहा नेकु फेंट छोरि बैठौ,
मोहिं वा विसासी को है ब्यौरो बूझिवे घनौ।
हाय निरदई कौं हमारी सुधि कैसें आई,
कौन बिधि दीनी पाती दीन जानि कै भनौ।
झूठ की सचाई छाक्यौ त्यौं हित-कचाई पाक्यौ,
ताके गुनगन घनआनँद कहा गनौ ॥२६७॥

नित ही अपूरब सुधाधर-बदन आछो,
मित्र-अंक आएँ जोति-जोलनि जगत है।
अमित कलानि ऐन रैनद्यौस एकरस,
केस-तम-संग रंग-राँचनि पगत है।
सुनि जान प्यारी! घनआनँद तैं दूनो दिपै,
लोचन-चकोरनि सौं चोपनि खगत है।
नीठि दीठि परैं खरकत सो किरकिरी लौं,
तेरे आगैं चंद्रमा कलंकी सो लगत है ॥२६८॥

उघरि नचे हैं, लोक-लाज तें बचे हैं, पूरी
चोपनि रचे हैं, सुदरस-लोभी रावरे।
जके हैं थके हैं मोह-मादिक छके हैं अन-
बोले पै बके हैं दसा, चीतैं चित चाव रे।

---

[२६७] पैंड़ = डग। झूठ० = झूठ की सत्यता से भरपूर, झूठ ही झूठ से भरा। हित० = प्रेम के कच्चेपन से पुष्ट। [२६८] अपूरब = अद्वितीय ; पूर्वेतर दिशा। सुधाधर = चंद्रमा ; सुधा + अधर, अमृतपूर्ण होंठ। मित्र = सूर्य, सखा, प्रेमी। कला = चंद्रमा की १६ कलाएँ, विद्या। नीठि = कठिनाई से। [२६९] मादिक = शराब। चीतैं = सोचते हैं, ध्यान मैं लाते हैं। लोचैं =

अवसर न सोच घनआनँद विमोचैं जल,
लोचैं वही मूरति अरवरानि आवरे।
देखि देखि फूलैं ओट भ्रमन ही भूलैं, देखौ
बिन देखैं भए ये वियोगी दृग वावरे ॥२६६॥

सवैया

कित लोग कथा सु वृथा ही करौ, यह तौ तव ही अनुमान लई।
अपनेई सनेह ठगी, भ्रम दै प्रतिविंबहि मूरति मान लई।
घनआनँद वे हू सुजान हुते, किहि गौं हठ कै सठ-हानि लई।
ब्रज देखत होत सुमारनि कौं तजि भाजि बचे हम जानि लई ॥३००॥

चूर भयौ चित पूरि परेखनि पही कठोर! अजौं दुख पीसत।
साँस हियें न समाय सकोचनि, हाय इते पर बान कसीसत।
ओटनि चोट करौ घनआनँद नीके रहौ निसद्यौस असीसत।
प्राननि बीच बसे हौ सुजान पै आँखिन दोष कहा जु न दीसत ॥३०१॥

ज्यौ वहरै न कहूँ ठहरै मन, देह सो आहि विदेह को लेखौ।
देखति जो दुखिया अखियाँ नित वैरियौ की सुपने सु न देखौ।
हौ तौ सुजान महा घनआनँद पै पहचानि की राखौ न रेखौ।
हाय दई यह कौन भई गति प्रीति मिटे हूँ मिटै न परेखौ ॥३०२॥

कवित्त

दूध-धाराधर भूमि भर लायौ ब्रज पर,
पूत भयौ नंद के सभागो परिवार को।
सुजस प्रकास्यौ दुख-दारिद-तिमिर नास्यौ,
चहूँ ओर बाढ़यौ निधि मंगल अपार को।
नीरस पर्यौ हो सबै जगत रसीले बिन,
आयौ घनआनँद समूह सुखसार को।

कामना करते हैं। अरबरानि = हड़बड़ी, घबराहट। आवरे = शिथिल, दीन। [३००] गौं = घात। सठ० = पूँजी की हानि। [३०१] कसीसत = खींचते हो। [३०२] ज्यौ० = जी बहलता नहीं। [३०३] धाराधर = बादल।

जिये औ जियैंगे भाँति भाँतिन पपीहा-पुंज,
पियैंगे पियूष प्रीति - मंडन उदार को ॥३०३॥
कुल-उजियारी सु दुलारी लली कीरति की,
जाके जनमत मैया मोदनि सिहानी है।
राधा नाम नीको घनआनँद अमी को सोत,
रंचक उचारैं रसरानी होति बानी है।
सबै जग मंगल-निकेत भयौ याहि आएँ,
महा प्रेम - संपति - विलास - ठकुरानी है।
गोकुल प्रकास्यौ व्रजचंद के उदोत आली,
आज देखौं भाँति भाँति रावलि रवानी है ॥३०४॥
ह्वैहै कौन घरी भाग-भरी पुन्य-पुंज-फरी,
खरी अभिलाषनि सुजान पिय भेटिहौं।
अमी-ऐन आनन कौं पान, प्यासे नैननि सौं
चैननि ही करिकै, वियोग-ताप मेटिहौं।
गाढ़े भुजदंडन के वीच उरमंडन कौं
धारि घनआनँद यौं सुखनि समेटिहौं।
मथत मनोज सदा मो मन, पै हौं हूँ कब,
प्रानपति पास पाय ताप-मद फेटिहौं ॥३०५॥
सोए वहुतेरो, मेरो सोच हू निबेरौ हेरौ,
हौं न जानौं कब धौं उनींदे भाग ! जगौगे।
पीर-भरे लोचन ! अधीर हौ, पै जानत जू,
कौन घरी रूप के रसोत जगमगौगे ?।
अंग अंग ! तुम्हैं कौ लौं दहैगौ अनंग कहूँ,
रंग-भरी-देह जान प्यारे संग खगौगे।

सभागो = भाग्यशाली। निधि = समुद्र। [३०४] लली० = कीर्ति माता की पुत्री। सिहानी = मुग्ध हो गई। रावलि = अंतःपुर। रवानी = आनंद के प्रवाह में मग्न। [३०५] खरी = उत्कट। अमी० = अमृत का भांडार। उरमंडन = हृदय के भूषण, प्रिय। [३०६] रसोत = दारुहल्दी से बनी एक औषध जो

चलौ प्रान ! पलौ, परे दूरि यौं कलमलौ क्यौं,
बिना घनआनँद कितेक दुख दगौगे ॥३०६॥

सवैया

दृग-नीर सौं दीठिहि देहुँ बहाय पै वा मुख कौं अभिलाखि रही।
रसना विष बोरि गिराहि गसौं, वह नाम सुधानिधि भाखि रही।
घनआनँद जान-सुबैननि त्यौं रचि कान बचे रुचि साखि रही।
निज जीवन पाय पलै कबहूँ पिय-कारन यौं जिय राखि रही ॥३०७॥

कवित्त

तुम दीनी पीठि, दीठि कीनी सनमुख याने,
तुम पैंड़े परे, राखि रह्यौ यह प्रान कौं।
तुम बसौ न्यारे, यह नेक हू न हातो होय,
तुम दुखदाई यह करै सुख-दान कौं।
सुनौ घनआनँद सुजान हौ अमोही तुम,
याको महा मोह मो बिना न जानै आन कौं।
और सबै सहौं कछू कहौं न कहा है बस,
तुम्हैं बदौं तौ पै जौ बरजि राखौ ध्यान कौं ॥३०८॥

बिरह तपत आछे आँसुन सौं न्वाय चोवा,
पायनि पखारि सीस धारि छिन छूजियै।
चूमि चूमि चोपनि लगाय लालसानि भाल,
मंजन कपोलनि कै प्राननि लै पूजियै।
एहो घनआनँद सुजान रावरे जू सुनौ,
रावरी सौं और हियें मनसा न दूजियै।
निरमोही महा हौ पै मया हू बिचारि वारी*,
हाहा नेकु नैननि अतीत किन हूजियै ॥३०९॥

आँख के घाव में लगाई जाती है ; रसवत्, रसमयता। [३०७] गसौं = ग्रस्त कर दूँ, स्तब्ध कर दूँ। [३०८] पैंड़े० = पीछे पड़े। न हातो० = दूर नहीं होता। [३०९] मजन = माँजना, रगड़ना। अतीत = अतिथि।

* धारि।

चोख्यौ चित चोपनि, चितौनि मैं चिन्हारी करि,
चाह सी जनाय हाय मोहि कै मनो लियौ।
भोरी भोरी बातनि सुनाय जान! भोरे प्रान,
फाँसी तैं सरस हाँसी-फंद छंद सौं दियौ।
छलनि छबीले आय छाय घनआनँद यौं,
उघरे बिसासी अंत, निरदै महा हियौ।
वारी मति, हारी गति कहाँ जाहिं नाहिं ठौर,
मारत* परेखो देखौ हितू ह्वै कहा कियौ ॥३१०॥

सवैया

अँसुवानि तिहारे वियोग ही सौं बरषा-रितु बेलि सी बाल भई।
हिय-खोपनि† चोपनि-कौंपनि झालरि लाज के ऊपर छाय गई।
घनआनँद जान सदा हित झूमनि घूमनि देखियै नित्त नई।
बलि नेकु मया करि हेरौ हहा अबला किधौं फूलि रही तुरई ॥३११॥

कवित्त

आरसी उसास ज्यौं तुषार तामरस त्यौं ही,
आतप के ताप रंग-ढंग नवनीत को।
पावक तैं पारो काँजी छिये हूँ बिचारो छीर,
बारुनी तैं सुचि जैसैं लेखौ कफ गीत को।
ऐसैं घनआनँद बिचार-वारपार नाहिं,
जानै एक जीव जान प्रीतम पुनीत को।
सूछम महा है ताकी तोल कौं कहा है,
राखि जानिबो लहा है यौं दुहेलो मन मीत को ॥३१२॥

---

[३१०] छंद = छल। अंत = निदान, अंत मैं। [३११] खोपनि = छप्पर का कोना। कौंप = कौंपल। [३१२] तुषार = पाला। तामरस = कमल। बारुनी = शराब। सुचि = पवित्र। दुहेलो = कठिन खेल खेलनेवाला, कठिनाई से वश मैं आने-

* मानतु। † पोषनि।

सवैया

आनि लई न कछू सुधि हाय, गए करि वैरी बियोगहि सौंपनि ।
जाय भुलाय रहे तित ही जित चाह भई है नई चित-चौंपनि ।
नाहर आय बसंत भयौ नख-केसू रतौहैं कियौ हिय-कौंपनि ।
क्यौं घनआनँद यौं बचियै जिय जात विध्यौ अनियारियै कौंपनि ॥३१३॥

हम एक तिहारियै टेक धरैं तुम छैल ! अनेकन सौं सरसौ ।
हम नाम अधार जिवावत ज्यौं तुम दै विसवास-बिषै बरसौ ।
घनआनँद मीत सुजान सुनौ तब गौं गहि क्यौं अब यौं अरसौ ।
तकि नेकु दई त्यौं दया-ढिग ह्वै सु कहूँ किन दूर हू तैं दरसौ ॥३१४॥

लोयनि लाल गुलाल भरे कि खरे अनुराग सौं पागि जगाए ।
कै रस-चाँचरि चौचँद मैं छतिया पर छैल नखच्छत छाए ।
भीजि रहे स्रम-नीर सुजान धरौ डग ढीलियै लागौ सुहाए ।
भोर हूँ ऐसी खिलारिनि पै, घनआनँद का छल छूटन पाए ॥३१५॥

कवित्त

जाहि जीव चाहै सो तहीं पै ताहि दाहै,
वाहि ढूँढ़त ही मेरी गति मति गई खोय है ।
करौं कित ठौर, और रहौं तौ लहौं न ठौर,
घर कौं उजारि कै वसत वन जोय है ।
बनी आनि ऐसी घनआनँद अनैसी दसा,
जीवौ जान प्यारे विन, जागैं गयौ सोय है ।
जगत हँसत यौं जियत मोहिं तातैं नैन !
मेरो दुख देखि रोवौ फिरि कौन रोयहै ॥३१६॥

वाला । [३१३] नाहर = सिंह । केसू = किंशुक, पलाश । रतौहैं = रागमय, रक्त से भरा । कौंपनि = कोप से । कौंपनि = कौंपलों से ; नोकों से । [३१४] त्यौं = ओर । दया० = दया करके । [३१५] चौचँद = क्रीडा, कौतुक । का० = किस छल से छूटकर यहाँ तक आए । [३१६] जोय = देखकर ।

सवैया

घनआनँद मीत सुजान हहा सुनियै बिनती कर जोरि करैं।
अरसाहु न नेकु रिसाहु अहो धरि ध्यानहिँ दूरि तें पाय परैं।
मन भायौ बियोग मैं जारिबो जौ तौ तिहारी सौं नीकें जरैंऽरु भरैं।
पै तुम्हैं मति कोऊ कहौ हित-हीन, सु या दुख बीच अमीच मरैं ॥३१७॥
घनआनँद जीवन-रूप सुजान हौ प्रान पपीहा-पनैइ पढ़े।
दिसि चाहि दुहूँ पै अचंभो महा, करियै कहा, सोच-प्रवाह बढ़े।
न कहूँ दरसौ, बरसौ बिप बारि सु ये अपराध-गढ़े न कढ़े।
कित कौं नित ही इत याहि दहौ जु रहौ चित ऊपर चोप-चढ़े ॥३१८॥
जिनकौं नित नीकें निहारति हीं तिनकौं अँखियाँ अब रोवति हैं।
पल-पाँवड़े पायनि चायनि सौं अँसुवान के धारनि धोवति हैं।
घनआनँद जान सजीवनि कौं सपने बिन पाएँई खोवति हैं।
न खुली मुँदी जानि परैं कछु ये दुखहाई जगे पर सोवति हैं ॥३१९॥
पहिलें पहचानि जु मानि लई अब तौ सु भई दुखमूल महा।
इत के हित बैर लियौ उत ह्वै, करि ज्यौहरि-ज्यौहरि लोभ लहा।
घनआनँद मीत सुनौ अरु ऊतर दूर तें देहु न देहु हहा।
तुम्हैं पाय अजू हम खोयौ सबै हमैं खोय कहौ तुम पायौ कहा ॥३२०॥
सुधि होती सुजान! सनेह की जौ, तौ कहा सुधि यौं बिसरावते जू।
छिन जाते न बाहर, जौ छल छूटि कहूँ हिय भीतर आवते जू।
घनआनँद जान न दोष तुम्हैं गुन भावते जौ गुन गावते जू।
कहियै सु कहा अब मौन भली नहीं खोवते जौ हमैं पावते जू ॥३२१॥

कवित्त

छाया छियैं लागति सु जागति दृगनि आय,
तू सदा अलग जाकी छाँहौं न दिखाति है।

[३१७] अमीच = बिना मृत्यु के ही। [३१८] पपीहा० = चातकपन ही। [३१९] दुखहाई = दुख की मारी। जगें० = खुली हैं, पर कुछ देखती नहीं। [३२०] ज्यौहरि० = जी हरने के व्यापार में लाभ के लोभ से या ज्यौहरिबो = जी लेना। [३२१] दोष० = दोष गुण से लगते। हमैं० = मेरा हृदय पहचान पाते।

रोम रोम रही भोय रोय परौं साँस भरौं,
चौंकत चकत मुरझानि अधिकाति है।
जान प्यारी दूरि ही तें चेटक चरित कोटि,
मति उपचारनि* की हेरत हिराति है।
तेरी गति† चौगुनी कै सौगुनी चुरैल हू सौं,
लगी अलगी सी कछू बरनी न जाति है ॥३२२॥

सवैया

किहि ठान ठनौ हौ सुजान मनौ गति जानि सकै सुअजान कस्यौ।
इहि सोच समाय, उदेगनि माय बिछोह-तरंगनि पूरि भस्यौ।
सु सुनौ मनमोहन ताकी दसा सुधि-साँचनि आँचनि बीच रस्यौ।
तुम तौ निहकाम, सकाम हमैं घनआनँद काम सौं काम पस्यौ ॥३२३॥

कवित्त

गतिनि तिहारी‡ देखि थकनि मैं चली जाति,
थिर चर दसा कैसी ढकी उघरति है।
कल न परति कहूँ कल जौ परति होय,
परनि परी हौं जानि परी न परति है।
हाय यह पीर प्यारे! कौन सुनै, कासौं कहौं,
सहौं घनआनँद क्यौं अंतर अरति है।
भूलनि चिन्हारि दाऊ हैं न हो हमारें तातें,
बिसरनि रावरी हमैं लै बिसरति है ॥३२४॥

सवैया

मो अबला तकि जान! तुम्हैं बिन,यौं बल कै बलकै जु बलाहक।
त्यौं दुख देखि हँसै चपला, अरु पौन हू दूनो बिदेह त दाहक।

[३२२] छियँ = छूने से। चेटक = माया। उपचार = औषध का यत्न।
[३२३] निहकाम = कामनाहीन। [३२४] गति = दशा ; चाल। परनि० = पड़न, स्थिति। अरति० = अड़ती है। [३२५] बलकै = बकता है। बलाहक =

* उपचारनि। † चाह। ‡ गति सुनि हारी।

पर - दुख - दल के दलन कौं प्रभंजन हौ,
ढरकौं हैं देखि कै बिबस बकि परी मौन।
इत की भसम-दसा लै दिखाय सकत जू,
लालन-सुबास सौं मिलाय हू सकत पौन ॥३३३॥

सवैया

मुख-नेह-रुखाई दिखाई, मरौं, इत को तौ चिन्हारि रही न उनै।
रचि कौन से घात लियौ है हियो,बिन हेरैं न जीव बिचारि गुनै।
घनआनँद ऐसी दसानि घिर्यौ दुखिया जिय सोचनि सीस धुनै।
अब कैसी भई उन जान हुई दई कूक करौं पै न कोऊ सुनै ॥३३४॥

कबित्त

अंतर मैं रहति निरंतर जगी सुजान,
तहाँ तुम कैसैं सोयबे कौं घर कै रहे।
गुपत लपट जाकी तन ही प्रगट करै,
जतननि बाढ़ै, गुरु लोग अर कै रहे।
सीरी परि जात रोम रोम घनआनँद हो,
और याके कोटिक बिकार भर कै रहे।
वारिद-सहाय सौं दवागिनि दबति देखौ,
बिरह-दवागिनि तैं नैना झर कै रहे ॥३३५॥

सवैया

सावन-आवन* हेरि सखी ! मनभावन-आवन-चोप बिसेखी।
छाए कहूँ घनआनँद जान सम्हारि की ठौर लै भूलनि लेखी।
बूँदैं लगैं सब अंग दगैं उलटो गति आपने पापनि पेखी।
पौन सौं जागति आगि सुनी ही पै पानी तैं लागति आँखिन देखी ॥३३६॥

ढरकौं हैं = ढलनेवाले। भसम = भस्म करनेवाली। [३३४] मुख = मौखिक प्रेम या मुँह देखा स्नेह [३३५] गुरु = बड़े। अर = अड़ करके। [३३६]

* आगम।

परकाजहि देह कौं धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ सब ही बिधि सज्जनता सरसौ।
घनआनँद जीवन-दायक हौ कछू मेरियौ पीर हियँ परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानहिं लै बरसौ ॥३३७॥

जान छबीले कहौ तुम ही जौ न दीसौ तौ आँखिन काहि दिखाऊँ।
स्रौन*-सुधाई सनी बतियानि बिना इन काननि लै कहाँ प्याऊँ।
हाय मर्‍यौ मन पीर तें प्रीतम! या दुखियाहि कहाँ परचाऊँ।
चाहत जीव धर्‍यौ घनआनँद रावरी सौं कहूँ ठौर न पाऊँ ॥३३८॥

निसद्यौस उदास उसास धकौं न सकौं तजि आस बिसास जकी।
घनआनँद मीत सुजान बिना अँखियान कौं सूझन एक टकी।
इत की गति कौन कहै को सुनै मन ही मन मैं यह पीर पकी।
भरियै किहि भाँति कहा करियै अब गैल सँदेसन हूँ की थकी ॥३३९॥

प्यारे सुजान के पानि को मंडन खंडन बैद†-अखंड-कला को।
ज्यौं सरस्यौ‡ जब ही दरस्यौ बरस्यौ घनआनँद हेत-झला को।
सूछम सो, पै भर्‍यौ अतुलै सुख रंग बिभौ जुग नैन-पला को।
प्रीतम लौं हिय राखत हाथ, बिछोह मैं ज्यावत माह छला को ॥३४०॥

घूमत सीस लगै कब पायनि चायनि चित्त मैं चाह घनेरी।
आँखिन प्रान रहे करि थान, सुजान! सुमूरति माँगत नेरी।
रोम ही रोम परी घनआनँद काम की रार न जाति निबेरी।
भूलनि जीतति आपुनपौ बलि, भूलौ नहीं सुधि लेहु सबेरी ॥३४१॥

सम्हारि = जब सँभाल करनी चाहिए तभी भूल बैठे। [३३७] परजन्य = पर्जन्य, बादल, पर + जन्य, जो दूसरे के उपकार के लिए हो। जीवन = जल; प्राण। [३३८] स्रौन = श्रवण, कान। सौं = शपथ। [३३९] बिसास० = विश्वासघात से स्तब्ध। टकी = टकटकी। [३४०] मंडन = गहना। हेत० = प्रेमारस की वृष्टि। पला = पलड़ा। [३४१] घूमत = चक्कर खाता हुआ। थान=

* कौन। † खेद। ‡ तरस्यो।

मलचौंहीं लगौंहीं, भईं तुम सौंहीं इतै अँखियाँ सुख-साध-भरीं।
उत आप निकाई-निधान सुजान, ये बावरी ह्वै अरराय परीं।
घनआनँद जीवन-प्रान सुनौ, बिछुरैं मिलैं गाढ़-जँजीर-जरीं।
इनकी गति देखन-जोग भई जु न देखन मैं तुम्हैं देखि अरीं ॥३४२॥

कबित्त

सुरति करौं तौ बिसरे जौ होहिं जान प्यारे,
वे तौ चित-चढ़े, रंग-मूरति महा रहैं।
सुधि करैं वेई सुधि हू की ऐसी भूलि जाय,
बेसुधि किये से सुधि माँझ या प्रकार हैं।
गूढ़ि गति ब्यौरिबे* की भूलियौ सुरति मोहिं,
रातिद्यौस छाए घनआनँद घटा रहैं।
सुधि कबहूँ न आवै भूलेऊ तनक नाहिं,
सुधि तिन ही मैं तेई सुधि मैं सदा रहैं ॥३४३॥

सवैया

जब तैं तुम आवन-आस दई तब तैं तरफौं कब आयहौ जू।
मन-आतुरता मन ही मैं लखौ मनभावन! जान सुभाय हौ जू।
विधि के दिन लौं छिन बाढ़ि परे यह जानि बियोग बितायहौ जू।
सरसौ घनआनँद वा रस कौं जु रसा रस सौं बरसायहौ जू ॥३४४॥

अंगनि पानिप-ओप खरी, निखरी नवजोबन की सुथराई।
नैननि बोरति रूप के भौंर अचंभे-भरी छतिया-उथराई।
जान-महा-गरुवे-गुन मैं घनआनँद हेरि रत्यौ थुथराई।
पैने कटाछनि ओज मनोज के थानन बीच बिंधी मुथराई ॥३४५॥

स्थान, डेरा। नेरी = निकट। रोर = शोर। सबेरी = शीघ्र। [३४२] अरराय० = टूट पड़ीं। [३४३] ब्यौरिबे० = विचारने की। [३४४] जान = ज्ञानी। बियोग = वियोग दूर करेंगे। रसा = पृथ्वी। [३४५] सुथराई = सफाई। उथराई = किंचित् उठान। रत्यौ० = रति भी थोड़ी पड़ गई। मुथराई = कुंदपन।

* धारिबे।

अभिलापनि लाखनि भाँति भरीं बरुनीन रुमांच ह्वै काँपति हैं।
घनआनँद जान सुधाधर-मूरति चाहनि अंक मैं चाँपति हैं।
टग लाय रहीं पल पाँवड़े कै सु चकोर की चोपहि भाँपति हैं।
जब तें तुम आवनि-औधि बदी तब तें अँखियाँ मग माँपति हैं ॥३४६॥

मग हेरत दीठि हिराय गई जब तें तुम आवनि-औधि बदी।
बरसौ कित हूँ घनआनँद प्यारे पै बाढ़ति है इत सोच-नदी।
हियरा अति औटि उदेग की आँचनि च्वावत आँसुनि मैन मदी।
कब आयहौ औसर जानि सुजान बहीर लौं बैस तौ जाति लदी ॥३४७॥

तुम ही गति हौ तुम ही मति हौ तुम ही पति हौ अति दीनन की।
नित प्रीति करौ गुनहीनन सौं यह रीति सुजान प्रबीनन की।
बरसौ घनआनंद जीवन कौं सरसौ सुधि चातक छीनन की।
मृदु तौ चित के पन पै इत के निधि हौ हित के, रुचि मीनन की ॥३४८॥

अति दीनन की, गतिहीनन की पतिलीनन की रति के मन हौ।
सब ही विधि जान, करौ सुखदान, जिवावत प्रान कृपा-तन हौ।
घनआनँद चातक-पुंजनि पोषन, तोषन रंक महा धन हौ।
जन-सोच-विमोचन, सुंदर-लोचन, पूरन-काम भरे पन हौ ॥३४९॥

कवित्त (अनंगशेखर)

सदा कृपानिधान हौ, कहा कहौं सुजान हौ,
अमान दान-मान हौ, समान काहि दीजियै।
रसाल सिंधु प्रीति के भरे, खरे प्रतीति के,
निकेत नीति-रीति के, सुदृष्टि देख जीजियै।
टगी लगी तिहारियै, सु आप त्यौं निहारियै,
समीप ह्वै विहारियै उमंग-रंग भीजियै।

---

[३४६] टग = टकटकी। [३४७] मैन = मदन, काम। मदी = मद, शराब। बहीर = सेना का सामान। जाति० = समाप्त होने पर आ रही है। [३४८] निधि = समुद्र। [३४९] पतिलीन = प्रतिष्ठाहीन। [३५०] अमान = प्रमाण से परे या निरभिमान। पयोद० = घनआनंद; आनंद के घन।

पयोद - मोद छाइयै, बिनोद कौं बढ़ाइयै,
बिलंब छाड़ि आइयै किधौं बुलाय लीजियै ॥३५०॥

सवैया

चेटक रूप-रसीले सुजान ! दई बहुतै दिन नेकु दिखाई।
कौंध मैं चौंध भरे चख हाय ! कहा कहौं हेरनि ऐसें हिराई।
बातैं बिलाय गईं रसना पै हियो उमड्यौ कहि एकौ न आई।
साँच कि संभ्रम हौ घनआनँद सोचनि ही मति जाति समाई ॥३५१॥

प्यारे सुजान को प्रान-पियारो बस्यौ जब कान सँदेसो सुहायौ।
कोटि सुधा हू के सार कौं सोधि कै पान किये तें महासुख पायौ।
जीव-जिवावन ताप-सिरावन है, रसमैं घनआनँद छायौ।
ये गुनि क्यौं न रचै सजनी ! उनि रंग-रचे अधरानि रचायौ ॥३५२॥

कवित्त

जीवहि जिवाय नीकैं जानत सुजान प्यारे !
याही गुन नामहिँ जथारथ करत हौ।
चिरजीजै दीजै सुख कीजै मनभायौ मेरो,
मेरी अभिलाषन की निधि कौं धरत हौ।
चाह - बेली - सफल - करन घनआनँद यौं,
रस दै दै उर - आलबालहि भरत हौ।
प्यारे सौं छकौंहीं ढरकौंहीं मृदु बानि-बस,
बिबस ह्वै आप ही तें मो पर ढरत हौ ॥३५३॥

सवैया

कुलाहल होत है गोकुल मैं जनम्यौ सुत नंद के सुंदर स्याम।
चलौ चलियै मिलि दैन बधाई भई अब ही सब पूरनकाम।
जसोमति सौं झगरो अगरो करि लेहु रुचै जिहि जो अभिराम।
लखैं अँखियानि ललाम ललाहि सुनैं घनआनँद लाड़िलो नाम ॥३५४॥

---

[३५१] संभ्रम = भ्रांतिमात्र। [३५२] सिरावन = ठंढा करनेवाले, दूर करनेवाले। [३५३] निधि = भांडार। छकौंहीं = छका देनेवाली, संतुष्ट करने-

मुख-चाहनि कौं चित चाहत है चख-चाहनि ठौरहि पावति ना ।
अभिलाषनि लाखनि भाँति भरे हियरा-मधि, साँस सुहावति ना ।
घनआनँद जान तुम्हैं बिन यौं गति पगु भई मति धावति ना ।
सुधि दैन कही सुधि लैन चही सुधि पाएँ बिना सुधि आवति ना॥३५५॥

कवित्त

रसिक रसीले हौ छबीले गुन-गरबीले
रंगनि ढरीले हौ छकीले मद-मोह तें ।
जीवन-वरस घनआनँद दरस आछो,
सरस परस सुख सींच्यौ हँसि जोहतें ।
अचिरजनिधि ! हौं तिहारी सब बिधि, प्यारे !
कृपा होति, फलति ललित लता छोह तें ।
मिलन तें ज्यौं ही बिछुरन करि डार्यौ, वारी
त्यौं ही किन कीजै हाहा मिलन बिछोह तें ॥३५६॥

सवैया

रस रैनि जगी प्रिय-प्रेम-पगी अरसानि सौं अंगनि मोरति है ।
मुख-ओप अनूप विराजि रही ससि कोरिक वारने, को रति है ।
अँखियानि मैं छाकनि की अरुनाई, हियैं अनुराग लै बोरति है ।
घनआनँद प्यारी सुजान लखैं डरि डीठि हितू तिन तोरति है ॥३५७॥

सुख-स्वेद-कनी मुखचंद बनी बिथुरी अलकावलि भाँति भली ।
मद-जोबन, रूप-छकीं अँखियाँ अवलोकनि आरस-रंग-रली ।
घनआनँद ओपित ऊँचे उरोजनि चोज मनोज के ओज दली ।
गति ढीली लजीली रसीली लसीली सुजान मनोरथ बेलि फली॥३५८॥

कहा कहियै सजनी रजनी-गति, चंद कढ़ै कि जियैं गहि काढ़ै ।
अमीनिधि पै विष-सार स्रवै, हिम-जोति जगाय कै अंगनि डाढ़ै ।

वाली । [३५४] अगरो = बड़ा, भारी । [३५५] चाहनि = देखना । सुधि-आवति ना = होश नहीं आता । [३५६] छकीले = छके हुए, परिपूर्ण । [३५७] को० = रति भी क्या है । [३५८] रली = युक्त । चोज = उमंग । [३५९]

सु या पति-संग न जानति, है घनआनँद जान-बिछोह की गाढ़ै।
बियोग मैं बैरिनि बाढ़ति जैसी, कछू न घटै, जु सँजोग हूँ बाढ़ै॥३५९॥

हुलास-भरी मुसकानि लसै, अधरानि तें आनि कपोलनि जागै।
छुटीं अलक मृदु मंजु मिहीं स्रुतिमूल छलानि अनी मुरि लागै।
बड़ी अँखियानि मैं अंजन-रेख लजीली चितौनि हियें रस पागै।
सुहाग सौं ओपित भाल दिपै घनआनँद जान पिया अनुरागै॥३६०॥

कवित्त

कामना-कलपतरु जानि कै सुजान प्यारो,
सींचै घनआनँद सँवारि हिय-थाँवरो।
रूप-निधि साधिबे कौं महा सिद्ध मंत्र मानि,
आनि उर 'गोरी गोरी' जपै नित साँवरो।
प्रेम-सुधा-स्रोत स्रौन सुनैं सुख-सिंधु होत,
मोद - रासि मंगल-निवास ब्रज - भाँवरो।
कलाधर केलि को, सुफल बानी-बेलि को है,
रसना को भाग है रसीलो राधा-नाँवरो॥३६१॥

सहज सुहायौ राधा-माधव के मन भायौ,
कुंज-पुंज छायौ घनआनँद-निवास है।
रितुनि को चिंतामनि रसनि सौं रह्यौ सनि,
देखें बनै जैसो बनि राजै सु प्रकास है।
दंपति-सुजान-केलि-बेलि कै फलित सदा,
कलित ललित लीला - बलित - बिलास है।
ऐसे बनराजै बरनत बानि क्यौं न फूलै,
जाहि चाहि रितुराजौ चाहत बिकास है॥३६२॥

सवैया

जान सुखारे रहौ, रहि आप हौ, होति रही है सदा चित-चीती।
हैं हम ही धुर की दुखहाई बिरंचि बिचारि कै जाति रची ती।

या = रात। [३६०] मिहीं = पतली। अनी = नोक। सुहाग = रोली की बिंदी।
[३६१] थाँवरो = थाला। भाँवरो = आवर्त। नाँवरो = नाम। [३६२] कै

प्रान-पपीहन के घन ह्वौ, मन दै घनआनँद कीजै अनीती।
जानौ कहा अनुमानौ हियैं, हित की गति कौं, सुख सौं नित बीती ॥३६३॥
जित चाहत ह्वौ तित जाय मिलै, चित रावरो कोबिद-केलि-कला।
जिनकौं तुम भोरि बिसास करौ सु न साँस भरै वपुरी अवला।
घनआनँद जान! रह्वौ उनए से, नए बरसौ नित नेह-झला।
नटनायक लायक मायक हौ गति पाय परै न तिहारी लला ॥३६४॥
हम सौं हित कै कित कौं हित ही चित-बीच वियोगहि बोय चले।
सु अखैवट-बीज लौं फैलि पर्‍यौ बनमाली कहाँ धौं समोय चले।
घनआनँद छाय बितान तन्यौ हम ताप के आतप खोय चले।
कबहूँ तिहि मूल तौ बैठियै आय सुजान ज्यौ रुवाय* कै रोय चले ॥३६५॥

कबित्त

मेरो चित चाहै घनआनँद सुजान कौं पै,
ढकी लाग-आग की लपेटैं जीव ही सहै।
वे तौ गौं गहेलेँ†, हौं गहाऊँ सो न गहैं गैल,
रहैं छैल भए नए लेस ताहू को न है।
पातनि तकत, मूल भूलै फिरैं फूले वृथा,
आली! बनमाली जू के फल की कहा कहै।
आवरी ह्वै बावरी तू तावरी परति काहे,
ते ह्वाँ घर बसे, ह्याँ उजारि बसि को रहै ॥३६६॥
उघरि दुरे ह्वौ, नीकैं मिलन उरे‡ ह्वौ, गाढ़े
रंगनि घुरे ह्वौ घनआनँद सुजान जू।

= द्वारा। वनराज = वृंदाबन। [३६३] धुर की = अत्यंत। ती = थी। हित = प्रेम। [३६४] बिसास = विश्वासघात। झला = झड़ी, वृष्टि। पाय० = समझ मेँ नहीँ आती। [३६५] हित ही = सुखपूर्वक। अखैवट = अक्षयवट। समोय = अनुरक्त होकर। [३६६] गौं० = अपनी घात को ही समझनेवाले। तावरी० = गरम क्यों होती है। घर० = दूसरे से प्रेम कर रहे हैं। [३६७]

* हाय। † गवेले। ‡ बुरे।

उर बैठि दाहत हौ, चाहनि मैं चाहत हौ,
घात ही निबाहत हौ प्रानन के प्रान जू।
हँसि हँसि खावत हौ, छाँहौं नहीं छावत हौ,
जागि जागि स्वावत हौ आपै हू तैं आन जू।
सूझत हौ बूझत हौ चाहत हौ भाखन हौ,
रहत हौ राखत हौ मौन हौ बखान जू ॥३६७॥

महा अनमिलन-मिलेई मिलौ जब मिलौ,
ऐसे अनमिल कै मिलाप हौ हमैं दई।
हमैं तौ मिलौ, जौ कहूँ आप हू सौं मिले होहु,
मिलौ तौ कहा जू ये मिलाप-रीति है नई।
इतै पै सुजान घनआनँद मिलौ न हाय,
कौन सी अमिलता की लागी जिय मैं जई।
तुम हूँ तें अधिक अमिल मन हमैं मिल्यौ,
तऊ मिल्यौ चाहै, दाहै जऊ जरियौ गई ॥३६८॥

सवैया

नीके नए अति जी के लगौं हैं सुधारे हैं तून प्रसून के सायक।
चौगुनी चोपनि तैसोई चाप चहोरि दै हाथ सज्यौ भटनायक।
पौन-तुरंग चढ़्यौ बनि यौं बनितानि अहेरैं कढ़्यौ दुखदायक।
हौ घनआनँद जान कहाँ रितुराज भयौ रतिराज-सहायक ॥३६९॥

राधे सुजान चितै* चित दै, हित मैं कित कीजति मान-मरोर है।
माखन तें मन कौंवरो है यह बानि न जानति कैसैं कठोर है।
साँवरे सौं मिलि सोहति जैसी कहा कहियै कहिबे को न जोर है।
तेरो पपीहा जु है घनआनँद है ब्रजचंद पै तेरो चकोर है ॥३७०॥

उरे=दूर, पृथक्। मौन०=आप के निरूपण के लिए चुप रहना ही ठीक है, आप अनिर्वचनीय हैं। [३६८] जई=अंकुर। [३६९] चहोरि=सँभालकर। [३७०]

* इतै', 'खतै'।

नित लाज-भरे हित-ढार-ढरे, निखरे-सुखरे सुखदायक हौ।
घनआनँद झूमि कटाछन सौं, रसपान-तृषाहि सहायक हौ।
जिय-वेधन कौं अनियारे महा, पै सुधाहि सु धारन लायक हौ।
घिरि घूँघट पैठत जान हियैं निपटै निबटे नटनायक हौ ॥३७१॥

राधा नवेली सहेली-समाज मैं होरी को साज सजैं अनि सोहै।
मोहन छैल खिलार तहाँ रस-प्यास-भरी अँखियानि सौं जोहै।
दीठि मिलैं मुरि पीठि दई हिय-हेत की बात सकै कहि को है।
सैननि ही बरस्यौ घनआनँद भीजनि पै रँग रीझनि मोहै ॥३७२॥

वह माधुरियै सौं भरी मुसक्यानि,मिठास लहै क्यौं विचारो अमी।
अरु बंक विसाल रँगीले रसाल विलोचन मैं न कटाछ कमी।
घनआनँद जान अनूपम रूप तैं रीति नई जिय माँझ रमी।
न सुनी कवहूँ सु लखी, चित चोरेई लेति लुनाइयै की लछमी ॥३७३॥

सब ठौर मिले, पर दूरि रहौ, भरि पूरि रहे जिहि रंग झिलौ।
इहि लायक हौ वहौ* नायक हौ सुखदायक हौ, पुनि पाय खिलौ ॥
घनआनँद मीत सुजान सुनौ कहूँ ऊखिल से कहूँ हेत हिलौ।
हम और कछू नहिं चाहति हैं छिन कौं किन मानस-रूप मिलौ॥३७४॥

मानस को वन है जग पै विन मानस के वन सो दरसै सो।
जे वनमानस ते सर से तिन सौं मिलि मानस क्यौं सरसै हो।
हाय दई! ढरि नेकु इतै सु किते परसै जिहि ज्यौं तरसै मो।
चातिक-प्रान जिवाय दै जान हहा! घनआनँद कौं बरसै जो ॥३७५॥

कौंवरो=कोमल। [३७१] निखरे०=साफ-सुथरे। निबटे=पूरे,पहुँचे हुए। [३७२] सैननिं=संकेतों से। [३७३] लुनाइयै०=लावण्यश्री, सौंदर्यलक्ष्मी। [३७४] झिलौ=लीन होते हो। ऊखिल=अपरिचित। हेत०=प्रेम ठानते हैं। मानस०=जिस रूप में मन आप को देखना चाहता है। [३७५] मानस=मनुष्य। मानस=मन। वन०=वनमानुस। सर०=साधारण

* वहु।

बात सुजानन की घनआनँद डारति आहि अचेत किये चित।
काननि बेधति पैठि कै प्राननि, दीसै नहीँ* अकुलानि यहै† नित।
क्यौँ भरियै, करियै सु कहा, हमैँ आनि बनी इन लोगन सौँ इत।
भीर मैँ हाय अकेले अधीर हैँ रीझहि लै रिझवार गए कित ॥३७६॥
चलिबे मधि बैठि रहे हौ कहा डग द्वै मग साँसहि सोधि चलौ।
किहि ठानहिँ बास कहाँ पुनि सोइहि संग बिचारि कै रंग रलौ।
घनआनँद भीजहु रीझि सुजान महा रसपान कै पोष पलौ।
जग मैँ छल सो बलि जीवन कौँ कल सौँ तुम ही किन ताहि छलौ॥३७७॥
जात चले उहि गाँव सबै जिहि ठावँ को ठीक न बूझत काहू।
कैसो मिलाप लियौ इन मौन मिले मन आनि अनेक उलाहू।
कौन के भौन रहे बसि गौन मैँ आपनी आपनी चाह उमाहू।
आहि नहीँ मधि सोई सुजान सु है घनआनँद ओर-निबाहू ॥३७८॥
मंजुल बंजुल-पुंज-निकुंज अछेह छबीलो महारस-मेह तैँ।
द्यौस मैँ रैन सो चैन को ऐन, पै जोति-पग्यौ जगि दंपति-देह तैँ।
हास-बिकास बिलास-प्रकास सुजान समान अदेह के तेह तैँ।
भीजि रहे घनआनँद स्वेद, समीर दुलै बिजना भरि नेह तैँ ॥३७९॥

कबित्त

मद-उनमाद-स्वाद मदन के मतवारे,
केलि कै अबारि लौँ सँवारि सुख सोए हैँ।
भुजनि उसीसो धारि अंतर निवारि, जानु-
जंघनि सुधारि तन मन ज्यौँ समोए हैँ।

तलैया। मानस = मानसरोवर। [३७६] भरियै = दिन काटूँ। [३७७] ठानहिँ = स्थान पर। जग० = संसार मैँ मेरा यह जीवन छल (भ्रम) मात्र है, अपनी चतुराई से उसे आप ही क्योँ नहीँ छल लेते। [३७८] जिहि० = जिसके ठीक ठिकाने का पता किसी को नहीँ। उलाहू = (उल्लास)उमंग। उमाहू = उत्साह। ओर-निबाहू = अंत तक निर्वाह करनेवाला। [३७९] बंजुल = अशोक।

* नई। † नितै।

सुपने सुरति पागैं महा चोप अनुरागैं,
सोए हूँ सुजान जागैं ऐसे भाव-भोए हैं।
छूटे बार टूटे हार आनन अपार सोभा,
भरे रस-सार घनआनँद अहो ए हैं ॥३८०॥

सवैया

बात के देस तें दूरि परे, नियरे सियरे हियरे दुख दाहै।
चित्र की आँखिन लीनें बिचित्र महारस-रूप-सवाद सराहै।
नेह कथै सठ नीर मथै हठ कै कठप्रेम को नेम निबाहै।
क्यौं घनआनँद भीजे सुजाननि यौं अमिले मिलिबो फिरि चाहै॥३८१॥

हिय की गति जानन-जोग सुजान हौ कौन सी बात जु आहि दुरी।
पटक्योई* परै यह अंकुर आँसलो† ऐसी कछू रस-रीति घुरी।
बिछुरें कित सांति मिले हूँ न होति, छिदी छतिया अकुलानि-छुरी।
तुम ही तिहि साखि‡ सुनौ घनआनँद प्यार निगोड़े की पीर बुरी॥३८२॥

नाहिं पुकार करै सुनि आहिन, को कित है केहि दोष लगैयै।
संगम पै बिछुरे मरियै, यहि भाँतिन क्यौं जियराहि जरैयै।
ओटनि-चोटनि चूर भयौ चित, मो बिन हो किन बाहिर ऐयै।
ह्वै घनआनँद मीत सुजान कहा अब हेत-सुखेत सुखैयै ॥३८३॥

आवत ही मन जान सजीवन ऐसो गयौ जु करी नहिँ लौटनि।
द्यौस कछू न सुहाय सखी, अरु रैनि बिहाय न हाय करौटनि।
अंग भए पियरे पट लौं मुरझ बिन ढंग अनंग सरौटनि।
हौ सुचितै घनआनँद पै हमैं मारति है बिरहागिनि औटनि ॥३८४॥

अछेह = अखंड। अदेह = कामदेव। तेह = प्रचंडता। [३८०] अबारि० = देर तक। भोए = युक्त। [३८१] कठप्रेम = वह प्रेम जो प्रिय के उदासीन होने पर भी किया जाता है। [३८२] पटक्योई = फूटा पड़ रहा है। आँसलो = वेदनावाला। [३८३] पुकार = आहों पर ध्यान देनेवाला कोई नहीं। [३८४]

* टपक्योई। † ओस लौं। ‡ साधि।

द्रुम-बेलि-महारस-केलि-पगे करि दंपति के हिय को हरनै।
कहि कौन सकै उहि बेस कछू जिहि राधिका मोहन हूँ बरनै।
जमुना-तट कोमल बालुका मैं छवि छाकि धरे मधुरे चरनै।
घनआनँद सो बनराज लसै मम प्राननि काज सदा सरनै ॥३८५॥

भाल लपेटी सुही जुही-माल सिँगार को साज बिराजति खोही।
पीरी पिछौरिया फेँट फबी मुरली-धुनि पूरि मलारहु मोही।
फूले कदंब-तरें करैं केलि सखा चहुँ ओर महा छवि सोही।
आजु सखी घनआनँद वाहि न जानति हौंऽब कहौं कत तोही ॥३८६॥

स्याम-मनोहरता तमरूप कि सोहै महा घनआनँद सैनी।
गोपिन के दृग-तारनि की यह रासि किधौं हरि हेरत गैनी।
अंजन सो मनरंजन है ब्रजचंद-चकोरन कौं सुखदैनी।
भाव बढ़ै चित चाव चढ़ै रँग-रैनि किधौं रसराज की रैनी ॥३८७॥

कबित्त

अभिलाषी प्रिय के दृगनि प्रतिबिंबवारी,
मनि बिन्नु जामैं अदभुत चित - चोरना।
किधौं साँवरे की गोरी भावना सरूप धार्‍यौ,
ताही मैं दिपति जान प्यारी छवि ओर ना।
प्यारे घनआनँद कौं लखि लालसानि भोई,
सातिक सिथिल होति नीबी बर-डोरना।
राग अनुराग भाग सुभग सुहाग-भीजी,
रीझनि छबीली झूलै सरस हिँडोरना ॥३८८॥

करौटनि = करवटें बदलने मेँ। सरौटनि = शिकन, सलवट। [३८५] मधुरे = प्रिय। बनराज = वृंदावन। [३८६] सुही = लाल। खोही = पत्तों की छतरी। पीरी० = पीला दुपट्टा। [३८७] सैनी = श्रेणी, पंक्ति, समूह। दृग-तार = पुतली। गैनी = मार्ग। रँग = आह्लाद। रैनि = रजनी या रैनी, वह गुल्ली जो सोने-चाँदी के तार खींचकर बढ़ाती है। रसराज = श्रृंगार (श्यामवर्ण)। रैनी = खूँटी। [३८८] छवि० = शोभा की पराकाष्ठा। सातिकस्विक = साभाव।

सवैया

कैसैं करौं गुन-रूप-बखान सुजान छबीले भरे हिय-हेत हौ।
औसर-आस लगे रहैं प्रान कहा बस जौ सुधि भूलि न लेत हौ।
चेटक हौ सब भाँतिन जू घनआनँद पीवत चातिक-चेत हौ।
रावरी रीझि न बूझि परै तनकौ मिलि क्यौं बहुतै दुख देत हौ ॥३८९॥

जान हौ ए जू जनाहु कहा, न गए कितहूँ जु कहौं इत आयहौ।
दीसौ दुरे उर दाहत क्यौं उर तें कढ़ि यौं उर में कब छायहौ।
मोसौं बिछोह कै मोहि मया करि मो मधि रावरे सूधे सुभाय हौ।
ऐसी बियोग-दवागिनि कौं घनआनँद आय सँजोग सिरायहौ ॥३९०॥

दृग दीजियै दीसि परौ जिनसौं इन मोर-पखौवनि को भटकै।
मन दै फिरि लीजियै आपु नहीं जु तहीं अटकै न कहूँ मटकै
करि बंदन दीन भनै सुमियै भ्रम-फंदन मैं कब लौं लटकै।
घनआनँद स्याम सुजान हरौ जिय-चातिक के हिय की खटकै ॥३९१॥

कवित्त

समै के सरूप को जथारथ है बोध ताहि,
आए सो हरष औ बिषादन दगत को।
प्यारो घनआनँद सुजान छायौ आँखिन मैं,
रस छाकें ताके ताहि ठगिया ठगत को।
ताही न्यारो मिलै जौ बिचारै सो तौ ताहू मधि,
ताहि रंग ढंग राखैं सुमन पगत को।
ऐसी दसा भाग्यौ भाग जागै जौ जगाय भैंटै,
प्रेममै जगत जेहि प्रेम मैं भगत को ॥३९२॥

नीवी = फुफुँदी। [३८९] चेटक = मायावी। चेत = चेतना। [३९०] जान = ज्ञानी। सिरायहौ = ठंढी करोगे। [३९१] मोर० = मोरपंख की आँखें, जो देख नहीं सकतीं। मटकै = नाचे, चंचल बना रहे। खटक = वेदना। [३९२] ठगिया = ठग। प्रेममै० = जिसके प्रेमी भक्त के लिए सारा ससार प्रेममय दिखाई

सवैया

प्राननि प्रान हौ, प्यारे सुजान हौ, बोलौ इतै पर पीरक हौ क्यौं।
चेटक-चाव दुरौ उघरौ, पुनि हाथ लगे रहौ न्यारे गहौ क्यौं।
मोहन रूप सरूप-पयोद सौं सींचहु जौ, दुख-दाह दहौ क्यौं।
नावँ धरे जग मैं घनआनँद नावँ सम्हारौ तौ नावँ सहौ क्यौं ॥३९३॥

सोरठा

जौ लौं जगै न मूल, तौ लौं सोवै सुरति-सुख।
वही होत अनुकूल, तौ भूलै सुख-सुधि सबै ॥३९४॥

कबित्त

वेई कुंज-पुंज जिन तरें तन बाढ़त हो,
तिन छाँह आएँ अब गहन सो गहिगौ।
सुरति-सुजान-चैन-बीचिन सौं सींची जिन,
वही जमुना, पै हेली! वह पानी बहिगौ।
वहै सुख-स्रम-स्वेद-समै को सहाय पौन,
नाहिँ छियै देह, दैया महा दुख दहिगौ।
वेई घनआनँद जू जीवन को देते तिन
ही को नाम मारिनि के मारिबे कौं रहिगौ ॥३९५॥

इतै अनदेखैं देखिबेई जोग दसा भई,
तैं तो अनाकानी ही सौं बाँध्यौ दीठि-तार है।
जान घनआनँद बिनाऽब[*] सुबनक हेरैं,
धीरज हिरात सोच सूखत बिचार है।
छीन अति दीनन कौं मोहन अमोही रच्यौ,
महा निरदई हमैं मिल्यौ करतार है।

देता है। [३९३] पीरक = पीड़ा देनेवाले। [३९४] मूल = अर्थात् ईश्वर। [३९५] गहन = ग्रहण की दुःखदायिनी छाया। बीचि = लहर। [३९६]

[*] वनाव।

तेरैं बहरावनि रुई है कान बीच, हाय
बिरही बिचारिनि की मौन मैं पुकार है ॥३९६॥

सवैया

लरिकाई-प्रदोष मैं टोड़ लग्यौ हँसि रोय सु औसर खोय दयौ।
बहुरयौ करि पान बिषै-मदिरा तरुनाई-तमी मधि सोय गयौ।
तजि कै रसमै घनआनँद कौं जग-धूँधरयौ चातिक-नेम लयौ।
जड़ जीव न जागत रे अजहूँ किनि, केसनि ओर तें भोर भयौ ॥३९७॥

मन पारद लौं न रहै थिर ह्वै छिन एक मैं कोटिक ढार ढरै।
धर अंबर खूँदि खगै न कहूँ जियरा इन सोचन बीच जरै।
घनआनँद जौ गुरु-ज्ञान-जरी-रस रंचक या मधि आनि परै।
मिटि जाहिं बिचार-बिकार सबै तब सुद्ध रसायन-रूप धरै ॥३९८॥

साँसहि साधि सुधारि महागुन भाव अनेक सो एक से पोहै।
द्वै मन मंजु सुमेर तहाँ बिबि आर गतागत कै न बिछोहै।
फेर परै न कहूँ निज नाम सौं फेरि अनूपम रूपहि जोहै।
या बिधि जो सुमिरै घनआनँद मो मत साधु-सिरोमनि सो है ॥३९९॥

खंजन ऐसे कहा मनरंजन, मीननि लेखौ कहा रस-ढार सो।
कंजनि लाज को लेस नहीं, मृग रूखे, सने ये सनेह के सार सो।
मोतिन के यह पानिप-जोति न, बान-जिवाई न जानत मार सो।
मीत सुजान सिरावन मो दृग छै घनआनँद रंग अपार सो ॥४००॥

बहरावनि = बहलाना या बहरापन। [३९७] प्रदोष = संध्याकाल। टोड = (तुंद) उदर। टोड़ लग्यौ = खाने मैं लगा रहकर। बिषै = विषय, भोग-विलास। तमी = रात्रि। धूँधरयौ = धुंध, माया से आच्छन्न। केसनि = वृद्धावस्था के उज्ज्वल केश ज्ञान का प्रभात होने की सूचना दे रहे हैं। [३९८] पारद = पारा। धर = पृथ्वी। अंबर = आकाश। खगै न = लगता नहीं। रसायन = वह औषध जो जरा और व्याधि दूर करनेवाली हो। [३९९] गुन = गुण ; तागा। सुमेरु = माला के सिरे पर की बड़ी गुरिया। बिबि = (द्वि) दोनों। गतागत = जाना आना। [४००] बान० = बाण मारकर जिलाना। मार = काम। [४०१] निहो-

मोहिँ निहोरिहै तू जु घरीक मैं, मेरो निहोरिबोई किन मानति ।
जासौं नहीँ ठहरै ठिक मान को, क्यौँ हठ कै सठ रूठनो ठानति ।
कैसी अजान भई है सुजान हे, मित्र के प्रेम-चरित्र न जानति ।
सो मुरली घनआनँद की तिनि तान भरी,कित भौँहनि तानति ॥४०१॥
कान्ह ! परे बहुतायत मैं अकलैन की बेदन जानौ कहा तुम ।
हौ मनमोहन मोहे कहूँ न बिथा बिमनैन की मानौ कहा तुम ।
बौरे बियोगिन आप सुजान ह्वै हाय कछू उर आनौ कहा तुम ।
आरतिवंत पपीहन कौं घनआनँद जू पहचानौ कहा तुम ॥४०२॥

कबित्त

पानिप अनूप रूप जल कौं निहारि मन,
गयौ हो विहार करिबे कौँ चाय ढरि कै ।
पर्यौ जाय रंगनि की तरल तरंगनि मैं,
अति ही अपार ताहि कैसे सकै तरि कै ।
धीर-तीर सूझत कहूँ न घनआनँद यौं,
बिवस बिचारो थक्यौ बीच ही हहरि कै ।
लेत न सम्हार गहि केसनि मगन भयौ,
बूड़िबे तें बच्यौ को सिवार कौं पकरि कै ॥४०३॥

सवैया

कहौ कछु और, करौ कछु और,गहौ कछु और, लखावत औरै ।
मिलौ सब रंग कहूँ नहिं संग, तिहारी तरंग तकैं मति बौरै ।
गढ़ौ बतियानि, मढ़ौ घतियानि, डढ़ौ छतियानि, निदान की ठौरै ।
महा छल छाय, खुले हौ बनाय, कितै घनआनँद! चातक दौरै ॥४०४॥

कबित्त

इंदीवर-दलनि मिलाय सोनजुही गुही,
सुही माल हाल रूप गुन न परै गनै ।

रिहै = खुशामद करेगी । ठिक = स्थिरता । सठ० = बुरा रोष । [४०२
अकलैन = अनन्य प्रेमियों की। बिमनैन = विमनस्कों की । [४०३] सिवार =
केशों का उपमान । [४०४] निदान = रोग के कारण की पहचान । [४०५

पीरियै पिछौरी छोर सीस पै उलटि राखैं,
केसर चिचित्र अंगरंग भाव सों सनै।
मुरली मैं गौरी धुनि टेरि घनआनँद है,
तेरे द्वार टहकनि ऊधम घने ठनै।
हाहा हे सुजान! आजु दीजै प्रान-दान नेकु,
आवत गुपाल देखि लीजै वन तैं बनै ॥४०५॥

भएँ अनभयो सो सरूप देखियत तेरो,
ताहि तेरी साँस ही की गति साँची साखि रे।
जीवै जग मारि राख्यौ झूठियै प्रतीति साँच,
साँचे झूठ जानि कछू औरै अभिलाखि रे।
कृपाबल पैयै कैसैं पगुहीन धैयै निधि,
ऐयै जैयै भूलनि सुधै सुधाहि चाखि रे।
जीवन मरन जौ पै दूरि घनआनँद है,
जीवत तौ मीचु सौं समीप करि राखि रे ॥४०६॥

सवैया

व्रजनाथ कहाय अनाथ करी, कित है हित-रीति मैं भाँति नई।
न परेखो कछू, पै रह्यौ न परै, ठकुराइति-प्रीति अनीतिमई।
घनआनँद जानहि को सिखवै, सुखई रस सींचि जु बेलि बई।
सुधि-भूल सबै हिय सूल सलै हम सौं हरि ऐसे भए ए दई ॥४०७॥

कवित्त

वासर वसंत के अनंत ह्वै कै अंत लेत,
ऐसे दिन पारै जु निहारै जिय राति है।
लतनि की फूलनि तमालनि पै भूलनि कौं,
हेरि हेरि नई नई भाँति पियराति है।

सुही = लाल। गौरी = गौरी राग। टहकनि = रह रहकर शोर मचाकर।
[४०६] धैयै = दौड़ूँ। भूलनि० = सुध को भूल जाना। मीचु = मृत्यु।
[४०७] भाँति = ढग। ठकुराइति० = बड़ों की प्रीति। [४०८] राति =

प्यारे घनआनँद सुजान ! सुनौ वाल-दसा,
चंदन-पवन तैं पजरि सियराति है।
औसर सम्हारौ न तौ अनआयबे के संग,
दूरि देस जायबे कौं प्यारी नियराति है ॥४०८॥

फागुन महीना की कही ना परै बात दिन-
रातैं जैसें बीतत सुने तैं डफ-घोर कौं।
कोऊ उठै तान गाय, प्रान वान पैठि जाय,
हाय चित बीच, पै न पाऊँ चितचोर कौं।
मची है चहल चहूँ दिसि चोप चाँचरि सौं,
कासौं कहौं सहौं हौं वियोग-झकझोर कौं।
मेरो मन आली वा विसासी वनमाली बिन,
बावरे लौं दौरि दौरि परै सब ओर कौं ॥४०९॥

दोहा

गोरी ! तेरे सरस दृग, किधौं स्यामघन आप।
दावानल सो पान ये करत विरह-संताप ॥४१०॥

सवैया

घनआनँद-रूप सुजान सनेही पै, आपु ही आपुन-त्यौं बरसौ।
इत मो मधि मेरियै रीति रचौ, उत वाहि निवाहिनि सौं सरसौ।
रसनायक मायक, लायक हौ, कितहूँ झर लाय कहूँ तरसौ।
अब हौं जु कहौं सु तौ दूसरे कौं तुम ही सब रंग मिले दरसौ॥४११॥

इक तौ जग-माँझ सनेही कहाँ, पै कहूँ जौ मिलाप की बास खिलै।
तिहि देखि सकै न बड़ो विधि क्रूर, वियोग-समाजहि साजि पिलै।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ, न मिलौ तौ कहौ मन काहि मिलै।
अमिले रहिबो लै मिले तें कहा, यह पीर मिलाप मैं धीर गिलै॥४१२॥

अँधेरा ही अँधेरा। पजरि० = प्रज्वलित होकर ठंढी पड़ जाती है। [४०९] घोर = ध्वनि। चहल = चहल-पहल। [४१०] स्यामघन = श्रीकृष्ण ; काले-बादल। [४११] तरसौ = त्रस्त करते हो। [४१२] वास = गंध। पिलै =

मनमोहन तौ अनमोह करौ, यह मोहित होत फिरै सु कहा।
अरु जौ अपढार ढरै न ढरै, गुन त्यौं तकि लागत दोष महा।
घनआनँद मीत सुजान सुनौ चित दै इतनी हित-बात हहा।
जिय जाचक ह्वै जस देत बड़ो, जिन देहु कछू किन लेहु लहा॥४१३॥

अंतर हौ किधौं अंत रहौ, दृग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं।
आगि जरौं अकि पानि परौं अब कैसी करौं हिय का विधि धीरौं।
जौ घनआनँद ऐसी रुची, तौ कहा बस है अहो प्रानलि पीरौं।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं, धरनी मैं धँसौं कि अकासहिं चीरौं॥४१४॥

कवित्त

होनि सौं मढ़ी पै अनहोनि जाके बीच भरी,
जामैं चलि जायवे बनाई रहिठानि है।
साँचो झूठो देखियै सुपेखनै लै पेखियै है,
सोई लखि जैहै जाहि पूरी पहचानि है।
वही घनआनँद ह्वै पोखत सुजाननि कौं,
नीर न्यौरि छीर पीयै हंसनि की बानि है।
कैसो अचरजखानि दीसि पर्‌यौ जग जानि,
जाको लाभ हानि जाकी उपजै बिलानि है॥४१५॥

सवैया

घर ही घर चौचँद-चाँचरि दै, बहु-भाँतिन रंग रचाय रह्यौ।
भरि नैन हियैं हरि सूझि सम्हार सबै करि नाक नचाय रह्यौ।

टूट पड़ता है। धीर० = धैर्य को निगल जाती है। [४१३] अपढार = बेढंगे तौर से ढलनेवाला। लहा = लाभ। [४१४] अभागनि० = अभाग्य को रोऊँ। अकि = अथवा। [४१५] होनि = अस्तित्व, सत्ता। अनहोनि = अनस्तित्व, असत्यता। रहठानि = रहने का स्थान। साँचो० = यह असत् जगत् सत् दिखाई पड़ता है। सुपेखनै० = देखने को तो यह सुदर तमाशा है, पर इसे सब देख नहीं पाते, जिसकी ज्ञानदृष्टि पूर्ण होती है वही इस खेल को देख सकता है। उपजै० = इसकी उपज ही नाश है। [४१६] चौचँद = बदनामी। करि० =

घनआनँद पै ब्रज-गोरिनि कौं नख तें सिख लौं चरचाय रह्यौ।
लखि सूनो सकै कित रावरो ह्वै बिरहा नित फाग मचाय रह्यौ ॥४१६॥
मनमोहन नावँ रहै सु करौ, पन की पटिहै वह जौ चटिहै।
बहु ओरनि लै भटकावत क्यौं, अटकावत क्यौं न कहा घटिहै।
घनआनँद मीत सुजान सुनौ अपनी अपनी दिसि कौ हटिहै।
तुम ही तन खोरि लगाइहै जू दृग मोरि कै जौ हम त्यौं डटिहै॥४१७॥

कवित्त

रास-सिंधु-रस दसौ दिसनि उफनि चल्यौ,
तान की चहल चोप आप-आपनी बनी।
सुघाई सौं भरे सुर साँचे साधै लघु गुरु,
भीजी धुनि सुनि मति राग-रंग है रवी।
पौन गौन थकि औ जड़क्रियै जगत भयौ,
कौन कहि सकै स्वाद मौन कछू लै पची।
रीझि घनआनँद रही है छकि छाय तहाँ,
पावै अब रीझनि कहूँ न रंचको बची ॥४१८॥

सवैया

हम सौं पिय साँचियै बात कहौ मन जौ मनत्यौ अरु नाहिँ कहूँ।
कपटी निपटै, हिय दाहत हौ, निरदै जु दई डरु नाहि कहूँ।
सब ही रँग मैं घनआनँद पै बस-बात परे परु नाहिँ कहूँ॥
उघरौ, बरसौ, सरसौ, तरसौ, सब ठौर बसौ घरु नाहिँ कहूँ ॥४१९॥

कवित्त

मन की जनाऊँ ताकै मोहन ही है हो कान्ह,
जानराय गुनहि लगाऊँ कैसे दोष जू।

नाक के बल। [४१७] पन की० = इसकी प्रतिज्ञा पूरी हो जायगी। घटिहै = समाप्त हो जायगो। खोरि = दोष। हम० = अर्थात् मरणासन्न हो जायगी। [४१८] चहल = चहल-पहल। जड़क्रियै = जड़क्रियावाला, स्तब्ध। मौन० = मौन ने ही वह स्वाद कुछ पचा पाया। वह अनुभवगम्य है, अनिर्वचनीय है। [४१९] मन० = आप का मन कहीं अन्यत्र अनुरक्त नहीं है। [४२०] जान-

बिना ही कहैं करौ तौ कहिबे की कहा रही,
कहें क्यौं न करौ दीन-प्रान-परितोष जू।
तुम्हैं रिझवार जानि खीझ सौं कहत प्यारे,
हाहा कृपानिधि नेकौ मानियै न रोष जू।
आनँद के घन भूमि भूमि कित तरसावौ,
वरसि सरसि कीजै हेत लता-पोष जू ॥४२०॥

कौन कौन अंगन के रंगन मैं राँचैं, मन-
मोहन हो सोई सुख मुख पुनि ल्यावई।
मौन मिहीँ वात है समुझि कहि जानै जान,
अमी काहू भाँति को अचंभैं भरि प्यावई।
सोवनि जगनि याकी मूरछा सचेत सदा,
रीझि घनआनँद निवेरै याहि न्यावई।
कहै कोऽव मानै, पहचानै कान नैन जाके,
बात की भिदनि मोहिँ मारि मारि ज्यावई ।४२१॥

सवैया

आँखिन मूँदिबो वात दिखावत, सोवनि जागनि वात ही पेखि लै।
वात-सरूप अनूप अरूप है, भूल्यौ कहा तू अलेखहि लेखि लै।
वात की वात सुवात विचारिबो है छमता सब ठौर बिसेखि लै।
नैननि-काननि बीच बसे घनआनँद मौन-बखान सु देखि लै ॥४२२॥

कबित्त

सुधि करैं भूल की सुरति जब आय जाय,
तब सब सुधि भूलि कूकौं गहि मौन कौं।
जातें सुधि भूले सो कृपा तें पाइयत प्यारे,
फूलि फूलि भूलौं या भरोसैं सुधि हौन कौं।

राय = ज्ञानियों में श्रेष्ठ। [४२१] मिहीँ = सूक्ष्म, गूढ़। कान० = जिसके नेत्रों में कान हों, जो देखकर ही मेरी मौन पुकार सुन ले। [४२२] अलेख =

मेरी सुधि-भूलहि विचारियै सुरतिनाथ !
चातक उमाहै घनआनँद अचौन कौं ।
ऐसी भूल हू सौं सुधि रावरी न भूलै क्यौं हूँ,
ताहि जौ बिसारौ तौ सम्हारौ फिरि कौन कौं ॥४२३॥

सवैया

सुधि भूलि रही,मिलि ज्यौ जलपै अब यौं मन क्यौं करि फूलिहै जू।
मिटिहै तवहीं तिहि ताप जबै सुधि आवन की सुधि भूलिहै जू।
घनआनँद भूलनि की सुधि कौं मति बावरी ह्वै रही भूलिहै जू।
सुधि कौन करै इन बातन की कबहूँ तौ कृपा अनुकूलिहै जू ॥४२४॥

कबित्त

रसिक रँगीले भली भाँतिनि छबीले घन-
आनँद रसीले भरे महासुख-सार हैं ।
कृपा-धन-धाम स्यामसुंदर सुजान मोद-
मूरति सनेही बिना बूझें रिझवार हैं ।
चाह-आलबाल औ अचाह के कलपतरु,
कीरति-मयंक प्रेम-सागर अपार हैं ।
नित हित-संगी, मनमोहन त्रिभंगी, मेरे
प्रानिनि अधार नंदनंदन उदार हैं ॥४२५॥

सवैया

जगि सोवनि मैं जगियै रहै चाह वहै बरराय उठै रतिया।
भरि अंक निसंक ह्वै भेटन कौं अभिलाप-अनेक-भरी छतिया।
मन तें मुख लौं नित फेर बड़ो कित ब्यौरि सकौं हित की बतिया।
घनआनँद जीवन-प्रान लखौ सु लिखी किहि भाँति परै पतिया ॥४२६॥

कबित्त

थिरता अथिर सोई थिर देखियत देखौ,
सब ही के जिय नेकौ मीच सौं न है चिन्हारि ।

ब्रह्म । [४२३] अचौन = आचमन, पीना । [४२४] फूलिहै = समाप्त हो जायगी । [४२५] अचाह० = जिसकी चाह करनेवाला कोई न हो उसके लिए

होनि सही ह्वै है अनहोनि हूँ वही है, ऐसी
होनि अनहोनि कौं न सोचै कोउवै विचारि।
दोऊ मिटि गए तें रहै जो सुख, कौन कहै,
ऐसी जाहि सूझै दीजै प्रान तेहि चूकि वारि।
उघरनि छावनि सुजान घनआनँद मैं,
उघरि छए हैं पै पसारि आपनो पसारि ॥४२७॥

सवैया

पीठि दियें सब दीठि परैं निमुहैं, जग ईठिनि कौन सकेरै।
दौरि थक्यौ जित ही तित ही तिनहीं चितयौ न कहूँ हित हेरै।
कागर-भौन लै आगर मौन दै बात बसी पै सुजानहिं टेरै।
नैननि काननि सौंहीं सदा घनआनँद औरनि सौं मुख फेरै ॥४२८॥

प्रेम की पीर अधीर करै हिय, रोवनि कौं दृग आँसुनि ढारत।
चाहनि चोप उमाह उमंग पुकारहि यौं नित प्रान पुकारत।
हौ घनआनँद छाय रहे कित यौं असम्हारहि नाहिं सम्हारत।
एजू सुजान जनाऊँ कहा बिन आरति हौ, अति या बिधि आरत ॥४२९॥

हम आपनो सो बहुतेरो करैं कि बचैं अपलोक त* एकौ घरी।
न रहै बस नैसिक तान भिदैं छिदै कान ह्वै प्रान सुलीखी खरी।
घनआनँद चौरति दौरति ढौरति ढूँढ़ियौ पैयत लाज न री।
कित जाहिं कहा करैं कैसे भरैं यह कान्ह की बाँसुरी बैर परी ॥४३०॥

कवित्त

नेही नैन आरत पपीहन की चाह भर्यौ,
पानिप अपार धरैं जोवन अदेह को।

कल्पवृक्ष हैं। [४२६] बरराय० = बर्राने लगती है। [४२७] मीच = मृत्यु। चूकि = भूलकर, बिना बिचार किए ही। [४२८] निमुहैं = बिना मुँह के। सकेरै = सकेलै, एकत्र करे। आगर = अत्यंत। [४२९] आरति० = आप

* अवलोकने।

उठ्यौ काहू भाँति धीर ओरनि अपूरब पै,
इते पै फुहीनि चैन प्रान मन देह को।
दोउ अदभुत देखौ रसिक सुजान क्यौं न,
लेहिं देहिं स्वाद-सुख आनँद अछेह को।
मोहिं नीको लागत री राधे तेरे लोने इन
अंग अंग अरसात रंग नेह-मेह को ॥४३१॥

सवैया

बरसैं तरसैं सरसैं अरसैं न कहूँ दरसैं इहि छाक छईं।
निरखैं परखैं करखैं हरखैं उपजीं अभिलाषनि लाख जईं।
घनआनँद ही उनए इन मैं बहु भाँतिनि ये उन रंग रईं।
रसमूरति स्यामहिं देखत ही सजनी अखियाँ रसरासि भईं ॥४३२॥

छप्पय

चलनि रही मँडराय रहनि कौं चलनि चल्यौ तू।
छल सो जीवन देखि तऊ तिहि छलनि छल्यौ तू।
वृथा बाद पचि मस्यौ सबद-सोधौ न धस्यौ तू।
अंत गहैगो मौन कह्यौ कबहूँ न कस्यौ तू।
अजौं चेति जड़ जीव किनि कित आयौ जैबो कहाँ।
चित चलाय नित ह्वै अचल, घनआनँद चलिबो जहाँ ॥४३३॥

सवैया

जिय सूझ करौ हठि बूझत हौं कि वृथा रुचि बीच पच्यौ परि क्यौं।
अरु भूलि गई सुधि ऊतरु की अपराधन तैं न बच्यौ डरि क्यौं।
घनआनँद तौ सुनि लेहु अबै सुनै जाय है साँच खच्यौ ढरि क्यौं।
कित कौं करतूतिहि खोरि लई नित या बिधि मोहिं रच्यौ मरि क्यौं ॥४३४॥

बेदना से रहित हैं। [४३०] अपलोक = बदनामी। [४३१] अदेह = रूप-हीन। अपूरब = अपूर्व, अनुपम; पूर्व से इतर दिशा। अछेह = अछेद्य; अखंड। [४३२] जईं = अंकुर। रईं = अनुरक्त हुईं। [४३३] छल = भ्रांति, मिथ्या। सबद० = वास्तविक बात की खोज। चित० = चित्त मैं विचार करके। [४३४]

हारे उपाय, कहा करौं हाय, भरौं किहि भाय मसोस यौं मारै।
रोवनि आँसू न नैननि देखैंऽरु मौन मैं ब्याकुल प्रान पुकारै।
ऐसी दसा जग छायौ अँधेर बिना हित मगनि कौन सहारै।
है तिन ही की कृपा घनआनँद हाथ गहै पिय-पायनि पारै ॥४३५॥
जिहि पाय की धूरि लौं जाय न पौन, करै इहि भाय कौं गौन-समै।
तिहि दूरि कितौ कहि औधि बिचारि, बिचारत क्यौं न कहा बिरमै।
गति बूझि परी, किन सूझत रे, कहिबो न छिपै किहि घा सुगमै।
घनआनँद आहि कृपा नियरो भजि लै रसमै तजि दै बिसमै ॥४३६॥
रस-रंग-भरी मृदु बोलनि कौं कब काननि पान करायहौ जू।
गति हंस-प्रसंसित सौं कब धौं सुख लै अँखियान मैं आयहौ जू।
अभिलाषनि पूरित ह्वै उफन्यौ मन तै मनमोहन पायहौ जू।
चित-चातक के घनआनँद हौ रटना पर रीझनि छायहौ जू ॥४३७॥

कबित्त

बीतनि को रूप झूठ हेरि हेरि गयौ बीते,
ऐसें जगि जग मैं अहा कहा बिताव रे।
ठहरनि बीननि तें बहुरि अहुरि नीके,
नह्यौ सो न हियो मारि संसय रिताव रे।
कौन नींद सोवत है औसर क्यौं खोवत है,
हेत-बात सुनि हाहा चेतहि चिताव रे।
ऐसें रंग रचै जौ बचै तौ घनआनँद ह्वै,
नचै कैसें ताप आप जीवन हिताव रे ॥४३८॥

सवैया

चितयौ जिहि भाँति, सकौं सहि क्यौं, रहि क्यौं हूँ परै न हितान हियौ।
सु न जानति जीवति कौन सी आस, बिसास मैं प्रेम को नेम लियौ।

पर्यौ = परेशान हुआ। साँच० = सत्य असत्य कैसे होगा। मरि० = कष्ट सहकर। [४३५] सहारै = सहारा दे। [४३६] घा = प्रकार, तरह। [४३७] रस = प्रेम ; जल। [४३८] बीतनि = क्षणभंगुरता। बहुरि० = अहुर बहुरकर, किसी प्रकार बचकर। नह्यो = लगाया। रिताव = खाली कर, दूर कर। [४३९]

घनआनँद कैसे सुजान हौ जू उहि सूखनि सींचि न छाँह छियौ।
करी बावरी रावरी बोलनि हौं कहि प्यारी बनाय कै प्यार किंयौ॥४३९॥

कबित्त

सबद-सरूप वहै जानन सुनन वहै,
अचिरज वहै और होत सुर लाग मैं।
वेद-भेद ताको जानि पस्यौ यौं सुजाननि कौं,
अगह अगाह नाव तिन हौ विभाग मैं।
पूरि तानै ठानै पहचानै घनआनँद जौ,
पाँवड़े करत रीझि प्रानपति आगमैं।
सूछम उसास गुन बुन्यौ ताहि लखै कौन,
पौन पट रँग्यौ देखियत रंग-राग मैं॥४४०॥

सवैया

यह नेह तिहारो अनोखो लग्यौ, जु पस्यौ चित रूखो सबै तन ही।
बिसरै छिन जो सु करै सुधि तो, गुन-माल बिसाल गुनै गन ही।
हित-चातिक-प्रान, सजीवन जान! रचे विधि आनँद के घन ही।
दरसौ परसौ बरसौ सरसौ मन लै हू गए पै बसौ मन ही॥४४१॥

कबित्त

मिलन तिहारो अनमिलन मिलावत है,
मिलैं अनमिले कछू करि न सकौं तरक।
जियौं तुम हीं तें बिना तुम्हैं मरि मरि जावँ,
एक गावँ बसि ऐसी जियैं राखियै मरक।
देखि देखि ढूँढ़ौं दुख-दसा देखि मिलौ हाहा,
मीत औ बिसासी यहै कसकै नई करक।

न हितात = अच्छा नहीं लगता। बनाय कै = कृत्रिम। [४४०] सुर = ध्वनि। लाग = प्रीति। आगमैं = आगमन मैं। गुन = सूत। [४४१] तन = ओर। बिसरै० = विस्मृत दशा के क्षण तेरी ही स्मृति मैं लगे रहते हैं। [४४२] मरक=

आनँद के वन हौ सुजान कान खोलि कहौं,
आरस जग्यौ है कैसैं सोई है कृपा-ढरक ॥४४२॥

सवैया

औगुन ही गुन मानि महा, अभिमान भर्‌यौ अति उत्तम नीच मैं।
नीरसता सरस्यौ नित पै अरस्यौ सु कहूँ सनि आरस-कीच मैं।
ऐसो अचेत जु साँच कियौ भ्रम, जीवन को सुख साधत मीच मैं।
ज्वाल जर्‌यौ अब होत हर्‌यौ हरि नेकु कृपा घनआनँद-सींच मैं ॥४४३॥
आयौ महारसपुंज-भर्‌यौ घनआनँद रूप-सिंगार के मौरैं।
सींचत है हिय-देस सुदेस अपूरब आँखिनि ठानत ठौरैं।
मोहन-बाँसुरिया सी बजै मधुरे गरजैं धुनि मैं मति बौरैं।
आज की मोरन की सजनी चित दै सुनि लै कछु बोलनि औरैं ॥४४४॥
घर अंबर तें जु कछू लखियै सु सबै गुन-बीत निरूप बन्यौ।
ठहरै न कछू इहि कारन दीठि महा चित चेटक ठान ठन्यौ।
घनआनँद तौ सहजैं सब जान तकौ रहि जानि जौ बोधि जन्यौ।
उनकी इनकी सुधि भूलि भली जग फागुन-भोर को भेद भन्यौ ॥४४५॥

दोहा

सहज मिलन बिछुरन सहज, सहज सकल ब्यवहार।
सहज रचै सोई बचै, बृथा पचै ह्वै सार ॥४४६॥
सुख सुदेस को राज लहि, भए अमर अवनीस।
कृपा कृपानिधि की सदा, छत्र हमारे सीस ॥४४७॥
हरि तुम सौं पहचानि को, मोहिं लगाव न लेस।
इहि उमंग फूल्यौ रहौं, बसौं कृपा के देस ॥४४८॥
मोसे अनपहचान कौं, पहचानै हरि कौन।
कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं, त्यौं पुकार मधि-मौन ॥४४९॥

खिंचाव। करक = पीड़ा। [४४३] भ्रम = मिथ्या। [४४४] मौरैं = मुकुट से। सुदेस = उत्तम। [४४५] गुन-बीत = गुणरहित। निरूप = रूपहीन। चेटक = माया, जादू। बोधि० = बोध उत्पन्न हो गया हो। [४४६] सहज = सरल,

कबित्त

दीनौ जग जनम, जनाइँ जे जुगति आछा,
कहा कहौं कृपा की ढरनि ढरहरे हौ।
आनँद-पयोद ह्वै सरस सींचै रोम-रोम,
भाव-निरभर लै सुभाव-गहभरे हौ।
जीवन-अधार प्यारे आँखिन मैं आय छाय,
हाय हाय अंग-अंग-सग रस ररे हौ।
ऐसें क्यौं सुखैयै सोच-तापनि, हर्यौ कै हरी,
जैसैं या पपीहा-दीठि नीठि हू न परे हौ ॥४५०॥

सोरठा

घनआनँद रस ऐन कहौ कृपानिधि कौन हित।
मरत पपीहा-नैन, दरसौ पै बरसौ नहीं ॥४५१॥

सवैया

रस चौचँद चाँचरि फाग मची, लखि रीझि बिकानि थकी जु चकी।
समुहाय तहीं हरि भामिनि त्यौं पिचकी भरि ताक तकी कुच की।
उत मूठि-गुलाल उठें उकसे सु लगे पहिलैं छतिया दुचकी।
घनआनँद घूमनि झूमि रहे गुलचा।इल लै अचकाँ उचकी ॥४५२॥

कबित्त

देह सौं सनेह सो तौ ह्वै है खेह खिन ही मैं,
नाते सब हाते परि रहैगो नहीं रे नाम।

स्वाभाविक। सार = कठिन। [४४८] कृपा० = कृपा मैं ही। [४४९] कृपा० = जैसे आप के नेत्रों मैं कृपा के कान लगे हैं वैसे ही मेरी पुकार मौन मैं है। आप देखकर मेरी स्थिति समझते और बिना कुछ कहे ही कृपा करते हैं। [४५०] ढरहरे = द्रवीभूत। आनँद = आनंद के बादल ; घनानंद। निरभर = पूर्ण ; निर + भर = जो भरा न हो। गहभरे = भली भाँति भरे। नीठि = किसी प्रकार भी। [४५१] ऐन = घर। हित = प्रेम या लिए। [४५२] खेह = धूल।

फूलै भ्रम भूलै कित मोह* फंदनि तू,
तनकौ सम्हारै किन प्रानन के संगी स्याम।
जागत हू सोवै खोवै समै सो रतन बौरे,
पाय घनआनँद तचै अचेत काम धाम।
आएँ औधि-औसर उसासहि उसरि जैहै,
धरेई रहैंगे धनधाम धंधे धूमधाम ॥४५३॥

सवैया

संग लगे फिरौ हौं अलगै रहौं मोहुवै गैल लगावत, क्यौं नहीं।
नीरस राचनि हौ सरसौ रस-मूरति प्रीति पगावत क्यौं नहीं।
ढीलो पर्‌यौ तुम तैं घनआनँद हौ गुनरासि खगावत क्यौं नहीं।
जागत सोवत से हौ कहा कहौं सोवत मोहिं जगावत क्यौं नहीं ॥४५४॥

हावे = दूर होकर। काम० = कामना के घर में। उसरि० = छिन्नभिन्न हो जायगा। धूम० = धूम-धक्कड़। [४५५] गुन = गुण, डोर। खगावत = मिलाते क्यों नहीं; कसते क्यों नहीं।

*भ्रम।

कृपाकंद-निबंध

कबित्त

नेकु उर आएँ ही बहुत दुख दूरि जात,
ताप बिन ताहि आप चंदन कृपा करै।
लगनि दै लागनि दै पाग अनुरागनि दै,
जागनि जगाय लैकै मंदन कृपा करै।
बानी के बिलास बरसावै घनआनँद ह्वै,
मूढ़ हू प्रगट गूढ़-छंदन कृपा करै।
आरति-निकंदन मिलावै नंदनंदन सु,
आनँदनि मेरी मति बंदन कृपा करै ॥१॥

परे रहौ करम धरम सब धरे रहौ,
डरे रहो डर कौन गनै हानि लाहे कौं।
लोक परलोक जो कछू हैं तौ न छूहैं हम,
छीलर रुचै न छीरसिंधु अवगाहे कौं।
महा घनआनँद घमड़ पाइयत जहाँ,
सोच-सूखा परौ करौ कर्म-ढंख-दाहे कौं।
ऐसी रसरासि लहि उलह्यौ रहत सदा,
कृपा-दिखवैया काहू दिसि देखै काहे कौं ॥२॥

सवैया

हरि के हिय मैं जिय मैं सु बसै महिमा फिरि और कहा कहियै।
दरसै नित नैननि बैननि ह्वै मुसक्यानि सौं रग महा लहियै।

---

[१] मंदन = मंदबुद्धिवालों पर। मूढ़० = मूढ़ भी गूढ़ छंदों की रचना करने लगता है। आरति० = क्लेशनाशक। [२] डरे० = फेंके रहें। छीलर = तलैया।

घनआनँद प्रान-पपीहनि कौं रस-प्यावनि ज्यावनि है वहियै।
करि कोऊ अनेक उपाय मरौ हमैं जीवनि एक कृपा चहियै ॥३॥

स्याम-सुजान हियें बसियै रहै नैननि त्यौं लसियै भरि भाइनि।
बैननि बीच विलास करै मुसक्यानि सखी सौं रची चित चाइनि।
है बस जाके सदा घनआनँद ऐसी रसाल महा सुखदाइनि।
चेरी भई मति मेरी निहारि कै सील सरूप कृपा-ठकुराइनि ॥४॥

बैन कृपा फिरि मौन कृपा दृग-दृस्टि कृपाऽरु समाधि कृपाई।
ज्ञान कृपा गुन-गान कृपा मन-ध्यान कृपा हरै आधि कृपाई।
लोक कृपा परलोक कृपा लहियै सुख-संपति साधि कृपाई।
यौं सब ठाँ दरसै बरसै घनआनँद भीजि अराधि कृपाई ॥५॥

बलकै झलकै सुख रंग रचै उघरै गुन-गौरव सील ढकै।
मन-बाढ़ चढ़ै अति ऊरध कौं टक-टेक सौं स्याम सुजान तकै।
जक एक, न दूसरी बात कहूँ घनआनँद भीजि कै प्रेम पकै।
दृग देखि छकै उछकै कबहूँ न छबीली-कृपा-मधुपान छकै ॥६॥

कवित्त

मंजु गुंज करै राग-रचे सुर भरै,
प्रेमपुंज छबि धरै हरै दरप मनोज को।
चाव-मतवारो भाव-भाँवरीन लेत रहै,
देत नैन चैन-ऐन चोपनि के चोज को।
और फूल भूलि रीझ भीजि घनआनँद यौं,
बंदी भयौ एक वाही गुन-गन-ओज को।
बानी रसखानी ता मधुव्रत की, लह्यौ जिन
कृपा-मकरंद स्याम-हृदय-सरोज को ॥ ७ ॥

ढंख = पलाश का वन । [३] जीवनि = संजीवनी । [४] रची = अनुरक्त।
[५] आधि = मानसिक क्लेश। ठाँ = स्थान। [६] कृपामधु और मदिरा की एकरूपता दिखाई गई है। सील० = शिष्टता न रह जाए ; शील से आवृत हो जाए। उछकै न = नशा उतरेगा ही नहीं। मधु = शहद; शराब। [७] चोज=

सवैया

फीके सवाद परे सब ही अब ऐसो कछू रसपान कृपा को।
नीरस मानि कहै न लहै गति मोहि मिल्यौ मन मान कृपा को।
रीझनि लै भिजयौ हियरा घनआनँद स्याम-सुजान-कृपा को।
मोल लियौ बिन मोल, अमोल है प्रेम-पदारथ-दान कृपा को॥ ८॥
नेम लियौ सब बातनि ते अब बैठिहै साधि कै ज्ञान महातप।
प्रेम थप्यौ घनआनँद-रूप सौं देखि तप्यौ जग-बाद के आतप।
कैसैं कहै कछु भोई सवाद मिलै वड़ी बेर सौं याहि मिल्यौ टप।
मौन ह्वै जाकी पुकार करै गुनमाल गहैं जपै एक कृपा-जप॥ ९॥
क्यौं हठ कै सठ साधन सोधत होत कहा मन यौं तरसे तैं।
हाथ चढ़ैं जिहिं स्याम सुजान कहूँ तिहिं पायन रे परसे तैं।
नीरस मानस ह्वै रसरासि विराजत नैसिक जा सरसे तैं।
ऊसर ह्वै सर होत लखे घनआनँद-रूप कृपा बरसे तैं॥१०॥
ज्यौ परसै नहिं स्याम सुजान तौ धूरि समान है अंगनि धोइबो।
त्यौं मन कौं तिनके दरसे बिन बादि बिचारनि बीच घँघोइबो।
वे घनआनँद क्यौं लहियै स्रम कै भरि भार अपारहि ढोइबो।
जागत भाग कृपा-रस पागत दीसत यौं सहजै सुख सोइबो॥११॥
आय जौ छाय तौ धूरि सबै सुख जीवन-मूरि सम्हारत क्यौं नहीं।
ताहि महागति तोहि कहा गति बैठें बनैगी बिचारत क्यौं नहीं।
नैननि संग फिरै भटक्यौ पल मूँदि सरूप निहारत क्यौं नहीं।
स्याम-सुजान-कृपा-घनआनँद प्रान-पपीहन पारत क्यौं नहीं॥१२॥

कबित्त

चाहियै न कछू जाकी चाह तासौं फल पायौ,
यातैं वाही बन के सरूप नैन कीनौ घरु।

उमंग। मधुव्रत = भ्रमर। [८] गति = मोक्ष। [९] आतप = धूप। टप = शीघ्र। [१०] परसे तैं = क्या तू ने स्पर्श किया? मानस = मन; मानसरोवर। नैसिक = थोड़ा। [११] ज्यौ = जी, चित्त। घँघोइबो = गंदे जल में डुबोना। [१२] आय० = यदि वह आकर छा जाए। महागति = परम गति। गति =

जहाँ राधा-केलि-बेलि कुल की छवनि छायौ,
लसत सदाई कूल-कालिँदी सुदेस थरु।
महा घनआनंद फुहार सुखसार सौँचे,
हित-उतसवनि लगाय रंग-भर्यौ झरु।
प्रेम-रस-मूल-फूल-मूरति विराजौ मेरे
मन-आलबाल कृस्न-कृपा को कलपतरु॥ १३॥

सवैया

साधन-पुंज परे अनलेखे पै हौं अपने मन एकौ न लेख्यौ।
जे निरखे उरझे तिन मैं किनहूँ बिन सोच कछू न विसेख्यौ।
तातें सबै तजि स्याम सुजान सौं साहस औरै हियैं अवरेख्यौ।
प्रान-पपीहन कौं घनआनँद पोप-रसीली कृपा करि देख्यौ॥१४॥

काहे कौं सोचि मरे जियरा परी तोहि कहा विधि बातनि की है।
हैं घनआनँद स्याम सुजान सम्हारि तू चातिक ज्यौं सुख जीहै।
ऐसे रसामृत-पुंजहि पाय कै को सठ! साधन-छीलर छीहै।
जाकी कृपा नित छाय रही दुख-ताप तें बौरे! बचाय ही लीहै॥१५॥

कबित्त

साँवरे-सुजान-रंग-संग मति रंग-भीजी,
दरस-परस-पैज-पूरन बसीठि है।
एक गुनहीन नहीँ सूझत सरूप जाकौं,
कृपा-मद-अंध तिन्हैं सपने न नीठि है।
सदा घनआनँद बरसि प्रान-चातकनि,
पोखति पुकार बिन ऐसी सुद्ध ईठि है।
साधन असाधन त्यौं सनमुख होत कैसें,
सब दिसि पीठि कृपा-मन तन दीठि है॥ १६॥

अर्थात् शक्ति। पारत० = पालता क्यौं नहीँ। [१३] बन = वृंदावन। सुदेस= सुंदर। [१४] अनलेखे = अगणित। बिन० = सोच के अतिरिक्त और कुछ न पाया। [१५] छीलर = तलैया। छीहै = छूएगा। [१६] पैज = प्रतिज्ञा।

सवैया

चातिक-चित्त कृपा घनआनँद चोंच की खोंच सु क्यौं करि धारौं।
त्यौं रतनाकर-दान-समै बुधि-जीरन-चीर कहा ल पसारौं।
पै गुन ताके अनेक लखौं निहचै उर आनि कै एक विचारौं।
कूल बढ़ाय प्रवाह बढ़ै यौं कृपा-बल पाय कृपाहि सहारौं॥ १७॥

कवित्त

अमल अपूरब उजागर अखंड नित,
जाहि चाहि चंदहि चितारिबो कलंक है।
तारनि प्रकासै मित्र-मंडल मैं मंडन ह्वै,
बन घन राजै रसनायक निसंक है।
आनँद-अमृत-कंद बंदनीय प्रानन को,
सुषमा संपत्ति हेरैं काम कौन रंक है।
चाहते चकोरन कौं चोपन सौं लखि लेत,
कृपा-चंद्रिका-मै नंदनंदन मयंक है॥ १८॥

हरि हू को जोतिक सुभाव हम हेरि लहे,
दानी बड़े पै न माँगे बिनु ढरै* दातुरी।
दीनता न आवै तौ लौं बंधु करि कौन पावै,
साँच सौं निकट दूरि भाजैं देखि चातुरी।
गुननि बँधे हैं निरगुन हू अनंदघन,
मति बीर यहै गति चाहें धीर जातु री।
आतुर न ह्वै री अति चातुर बिचार थकि,
और सब ढीले कृपा ही के एक आतुरी॥ १९॥

बसीठि = दूती। नीठि = कठिन। ईठि = इष्ट। [१७] खौंच = कौंछ, झोली रतनाकर = रत्नों का समूह। जीरन = जीर्ण, पुराना। [१८] चितारिबो = ध्यान मैं लाना। तारा = पुतली, आकाश का तारा। मित्र = सखा; सूर्य। आनँद० = आनंदरूपी अमृत का बादल। मै = युक्त। [१९] जोतिक = जैसा। दातुरी =

* वढ़ै।

सवैया

हौ गुनरासि ढरौ गुन ही गुनहीनन तैं सब दोष प्रमानैं।
हा हा बुरौ जिन मानियै जू बिन जाँचैं कहौ किन दानि बखानैं।
लीजै बलाइ तिहारी कहा करैं हैं हम हूँ कहूँ रीझि बिकानैं।
बूझौ कहैं कहा एक कृपाकर रावरे जौ मन के मन मानैं ॥२०॥

कबित्त

रही न कसरि कछू साधन के साधिबे की,
स्रम तैं बचाय राखैं सुखन सौं सानि हैं।
लोक परलोक भ्रम भूलि गए सुधि आएँ,
चरित अनेक एक एक रसखानि हैं।
तापु बापुरेनि की सिरानी आय नेकु ही मैं,
छाए घनआनँद सुबात-बस आनि हैं।
अब पहचानि हमैं चाहियै न काहू संग,
बिन पहचानि कृपा-लीनैं पहचानिहैं ॥ २१ ॥

सवैया

जल मैं थल मैं भरि पूरि रही सम कै दिखरावति है बिसमैं।
सम रूप सदा गुनहीनन सौं निज तेज तैं त्रासति ताप-तमैं।
घनआनँद जीवनरासि महा बरसै सरसै अरसै न गमैं।
तिन प्रानन्नि संगम रंग अभंग कृपा दरसी सब ठौर हमैं ॥२२॥
कोऊ कृपा-बल दूबरो ह्वै करि क्यौं नहिँ साधन के सव* साधौ।
लीन कै लोयन प्रान मनौ किन कोऊ समाधिहि पैंचि अराधौ।
मेर कृपा घनआनँद है रस भीजैं सदा जिहिँ राधिका-माधौ।
ता बिन ते स्रम-सूल सहैं भ्रम-भूल लहैं सु न एक न आधौ ॥२३॥

(दातृत्व) दान की वृत्ति। बीर = हे सखी। [२०] कृपाकर = कृपा की खान। [२१] बात = वायु ; वचन। [२२] सम० = विषम को भी सम कर देती है। अरसैं = चलने मैं आलस्य नहीं करती। [२३] सव = शव, लाश। एक=

* सत, सन।

कवित्त

साधन जितेक ते असाधन के नेग लगौ,
साधन को महा मतसार गहि ताहि तू।
प्रेम सो रतन जातें पायहै सहज ही मैं,
वहै नाम रूप सु अनूप गुन चाहि तू।
राधिका-चरन-नख-चंद त्यौं चकोर कै सु,
बाढ़त अमंद यौं तरंगनि उमाहि तू।
बोहित बिसास हू चढ़ाय लैहै सोई हा हा,
कृस्न-कृपा-सिंधु मेरे मन अवगाहि तू॥ २४॥

पद

जौ पै तो मुख नेकु निहारौं।
त्यौं ही तौ हिय के मझार की सब अभिलाष उघारौं।
वहुतै बहुत प्रान-सर्वसु लै वारि सकौं तौ वारौं।
करि करि पान रूप-आसव, सुधि बिसरि, न संग सम्हारौं।
क्यौं कहि सकौं उचित अनुचित कौं कृपा-भरोसो धारौं।
घनआनँद प्रीतम सुजान हौ मौनहि गहैं पुकारौं॥२५॥

सवैया

चलि जात उसास जो ऊरध को अध-आवन-आस-बिसास नहीं।
गति औसर की अति दीसि परी बरुनी खुलि फेरि फिरैं कि तहीं।
इहि बीच बिचारियै जीवन सो मरियै तिहि साधन-सोच महीं।
घनआनँद-गात-कृपा-बस ह्वै अब यौं सब ही करतूति रही॥२६॥

कवित्त

बिन माँगे माँगि लेत सु तौ मूढ़ तातें गूढ़
गति जानिबे कौं प्रभु अति ही उदार हौ।
कृपा-रस-नायक हौ महा सुखदायक हौ,
लायक हौ बूझ के सदन रिझवार हौ।

एक क्या आधे की भी प्राप्ति नहीं होती। [२४] नेग० = भेंट हो जाय। बोहित = जहाज। [२५] उघारौं = प्रकट करूँ। [२६] गति० = जीवन की गति अवसर मात्र

गुननि सरूप छाय रहे घनआनँद यौं
कहा लौं बखानै मति महिमा-अपार हौ।
विपति तिनहि परौ जिनके न पति तुम,
मेरे तौ सदाई करतार भरतार हौ ॥ २७ ॥

सवैया

औगुन हूँ करि लेत गुनै निगुनीन ढरै गुन की अधिकाई।
भूमि रही घनआनँद यौं बरसै सरसै सुख-सीतलताई।
मोहिं महारस-रासि मिली जिमि पागि दई मति-मोद-मिठाई।
रीझि कृपा लखि रीझि रही अकि रीझि कै जानति एक कृपाई ॥२८॥
जे करतूति पचैं दुहुँलोक लै तेई लहौ जु कछू उन पायौ।
कोष-कृपानिधि के हिय तें हरि रंकन बाढ़ कृपा-धन आयौ।
जा हित भै हरिबे कौं कहूँ हरि हेत सदा घनआनँद छायौ।
सो उलटी रखवारी करै यह रीति अनोखी, दुरै न दुरायौ ॥२९॥
सदा इब सूरति प्रेम पगे भली भाँति लगे भए आप हि आप।
महा निहचै सौं रचे रचियै हिय के सियराने प्रबोध प्रताप।
खिले हित रंग मिले नित संग झले सब अंग हिले चित चाप।
कृपा घनआनँद छाँह बढ़े तिन्हैं ब्यापत क्यौं दुख-आतप-ताप ॥३०॥

कबित्त

मन की जनाऊँ ताके मोह नाहिं है हो कान्ह,
जानराय गुनहिं लगाऊँ कैसैं दोष जू।
बिना ही कहैं करौ तौ कहिबे की कहा रही,
कहे क्यौं न करौ दीन-प्रान-परितोष जू।
तुम्हैं रिझवार जानि खीझ सौं कहत प्यारे,
हा हा कृपानिधि नेकौ मानियै न रोष जू।

है। [२७] बूझ = बुद्धि। [२८] अकि = या कि, अथवा। [२९] करतूति० = जो कर्म-साधन में परेशान रहते हैं। [३०] इब० = मूर्ति की भाँति। हिले० = चित्त के सतरंगी धनुष से युक्त। [३१] मोह = भ्रम। [३२]

आनँद के घन भूमि भूमि कित तरसावौ,
बरसि सरसि कीजै हित-लता-पोष जू ॥ ३१ ॥

सुधि करैं भूल की सुरति जब आय जाय,
तब सब सुधि भूलि कूकौं गहि मौन कौं।
जातें सुधि भूलै सो कृपा तें पाइयत प्यारे,
फूलि फूलि भूलौं या भरोसें सुधि हौन कौं।
मेरी सुधि भूलहि विचारियै सुरतिनाथ,
चातिक उमाहै घनआनँद अचौन कौं।
ऐसी भूल हू सौं सुधि रावरी न भूलै क्यौं हूँ,
ताहि जौ विसारौ तौ सम्हारौं फिरि कौन कौं ॥३२॥

सवैया

सुधि भूलि रही मिलि ज्यौ जलपै अब यौं मन क्यौं करि फूलिहै जू।
मिटिहै तब ही तिहि ताप जबै सुधि आवन की सुधि भूलिहै जू।
घनआनँद भूलनि की सुधि कौं मति बावरी ह्वै रही भूलिहै जू।
सुधि कौन करै इन बातन की कबहूँ तौ कृपा अनुकूलिहै जू ॥३३॥

कबित्त

रसिक रँगीले भली भाँतिनि छबीले,
घनआनँद रसीले भरे महा सुखसार हैं।
कृपा-धन-धाम स्यामसुंदर सुजान मोद-
मूरति सनेही बिना बूझैं रिझवार हैं।
चाह-आलबाल औ अचाह के कलपतरु,
कीरति-मयंक प्रेम-सागर अपार हैं।
नित हित-संगी मनमोहन त्रिभंगी मेरे
प्राननि अधार नंदनंदन उदार हैं ॥ ३४ ॥

सुधि० = प्रिय की भूल का स्मरण करने से जब उनकी स्मृति हो आती है। अचौन = आचमन, पीना। [३३] फूलिहै = भूल जायगी, समाप्त हो जायगी।

सवैया

हारे उपाय, कहा करौं हाय, भरौं किहि भाय मसोस यौं मारै।
रोवनि आँसू न नैननि देखैंऽरु मौन मैं व्याकुल प्रान पुकारै।
ऐसी दसा जग छायौ अँधेर विना हित-मूरति कौन सहारै।
है तिन ही की कृपा घनआनँद हाथ गहै पिय-पायनि पारै ॥३५॥
जिहि पाय की धूरि लौं जाय न पौन, करै इहि भाय कौं गौन-समै।
तिहि दूरि किती कहि औधि विचारि, विचारत क्यौं न कहा विरमै।
गति बूझि परी, किन सूझत रे, कहिबो न छिपै किहि धा सुगमै।
घनआनँद आहि कृपा नियरो भजि लै रसमै तजि दै विषमै ॥३६॥

कवित्त

मिलन तिहारो अनमिलन मिलावत है,
मिलैं अनमिले कछू करि न सकौं तरक।
जियौं तुम हीं तें विना तुम्हैं मरि मरि जावँ,
एक गावँ वसि ऐसी जियैं राखियै मरक।
देखि देखि ढूँढौं दुख-दसा देखि मिलौ, हा हा
मीत औ विसासी यहै कसकै नई करक।
आनँद के घन हौ सुजान कान खोलि कहौं,
आरस जग्यौ है कैसैं सोई है कृपा-ढरक ॥ ३७ ॥

सवैया

औगुन ही गुन मानि महा, अभिमान भर्‌यौ अति उत्तम नीच मैं।
नीरसता सरस्यौ नित पै अरस्यौ सु कहूँ सनि आरस-कीच मैं।
ऐसो अचेत जु साँच कियौ भ्रम, जीवन को सुख साधत मीच मैं।
ज्वाल-जर्‌यौ अब होत हर्‌यौ हरि नेकु कृपा-घनआनँद-सीच मैं ॥३८॥

---

[३४] अचाह० = अचाह व्यक्ति के लिए कल्पवृक्ष। [३५] मसोस = पछतावा। पारै = डालै। [३६] किहि० = किस प्रकार। आहि = है। रसमै = आनंदमय, प्रेमरूप। विषमै = विषमय ; विषम। [३७] मरक = खिंचाव। ढरक=ढलना। [३८] नीच = नीच मन। भ्रम = मिथ्या संसार। मीच = मृत्यु। [३९]

दोहा

सुख-सुदेस को राज लहि, भए अमर अवनीस।
कृपा कृपानिधि की सदा, छत्र हमारे सीस ॥३९॥
हरि तुम सौं पहचान को, मोहिं लगाव न लेस।
इहि उमंग फूल्यौ रहौं, बसौं कृपा के देस ॥४०॥
मो से अनपहचान कौं पहिचानै हरि कौन।
कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं, त्यौं पुकार मधि-मौन ॥४१॥

कवित्त

दीनौ जग जनम, जनाई जे जुगति आछी,
कहा कहौं कृपा की ढरनि ढरहरे हौ।
आनँद-पयोद ह्वै सरस सींचे रोम-रोम,
भाव-निरभर लै सुभाव-गहभरे हौ।
जीवन-अधार प्यारे आँखिन मैं आय छाय,
हाय हाय अंग-अंग-संग रस ररे हौ।
ऐसैं क्यौं सुखैयै सोच-तापनि, हस्यौ कै हरी,
जैसें या पपीहा-दीठि नीठि हू न परे हौ ॥ ४२ ॥

सोरठा

घनआनँद रस-ऐन, कहौ कृपानिधि कौन हित।
मरत पपीहा-नैन, दरसौ पै बरसौ नहीं ॥४३॥

दोहा

तुम नियरे अति दूर हौ, मिलन उपाय न कोय।
एक करौ, हरि कृपा तें अनहोनी हू होय ॥४४॥

अवनीस = हम राजा हो गए। [४०] इहि० = क्योंकि आप 'अनपहचान' पर कृपा करते हैं। [४१] कृपा० = जिस प्रकार आप के नेत्रों में कृपा के कान हैं उसी प्रकार मेरी पुकार भी मौन में है। [४२] ढरनि = ढलना। ढरहरे = ढलनेवाले, कृपालु। आनँद० = आनंद के बादल ; घनआनंद। निरभर = निर्भर, पूर्ण। गहभरे = भली भाँति भरे हुए। रस० = रसयुक्त। नीठि = कठिनाई से भी। [४३] रस = जल ; प्रेम। ऐन = अयन, घर। [४४] एक० = अद्वैत

सवैया

संग लगे फिरौ हौं अलगै रहौं मोहुवै गैल लगावत क्यौं नहीं।
नीरस राचनि ही सरसौ रसमूरति प्रीति पगावत क्यौं नहीं।
ढीलो पर्यो तुम तें घनआनँद हौ गुनरासि खगावत क्यौं नहीं।
जागत सोवत से ह्वौ कहा कहौं सोवत मोहिं जगावत क्यौं नहीं ॥४५॥

कवित्त

लेखैं नाहिं जनम अलेख तव सब बातें,
ऐसी जग-पैंठ मैं गवँबोई लहैगो कहा।
लहाछेह कहौं तौ है अंतर अनंत परै,
या विधि की मिलनि वियोग दौ दहैगो कहा।
चिरजीवौ मोहिं मारि तुम्हैं सुख होय प्यारे,
परबस महा कहा सह्यौ न सहैगो कहा।
कृपा-घनआनँद पपीहा की पुकार जागौ,
तुम सनमुख भए विमुख रहैगो कहा ॥ ४६ ॥

छप्पय

भूल न कबहूँ होय सुरति की सुरति देहु हरि।
सुरति किये ही रहौ कृपा-अवलोकनि सौं ढरि।
सुचि चरित्र रुचि परचि राचि चित-चेत थकै तहँ।
निज सरूप की लहनि कहनि अरु कहनि लहनि जहँ।
सुंदर देस अनंदघन छाय रहे सु विनोद बनि।
संदेह-तापब्यापनि हरौ अंतरजामी जानमनि ॥४७॥

सवैया

सुरझै किन दै उरझै मन तू ममता गुरझैं उरझावत क्यौं।
जित को तित ही लगिहै अलगौ इत के हित-फंदनि आवत क्यौं।

कर दो, मिला लो। [४५] खगावत० = बाँधते या कसते क्यों नहीं। [४६] पैंठ = हाट, बाजार। गवँबोई = खोना ही। लहाछेह = तीव्र। [४७] सुरति० = अपने प्रेम की स्मृति। चेत = चेतना, बुद्धि, होश। [४८] गुरझैं = गाँठें।

घनआनँद कृस्न-कृपा-रस कौं करि पान हियैं न जिवावत क्यौं।
निहचै जचि रे थिरता सचि रे पचि रे रचि रे भ्रमि धावत क्यौं ॥४८॥

कवित्त

जिहि जिहि ठौर जाहि जाहि भाँति जानराय,
जुगनि जुगनि जगमगे हौ जनन कौं।
पूरन-कृपा-पियूष-पालन रहे हौ सदा,
प्रानन तें प्यारे अपनैन के पनन कौं।
गोविंद गुसाइँ त्यौं ही माँगत हौं गोद,
गाय गिरा-अरगाई गुन-गरिमा गनन कौं।
मन घनआनँद तिहारी चोप चातक ह्वै,
चाहत है संनिधि सवादनि सनन कौं ॥ ४९ ॥

विष्णुपद

अटकनि इतै निपट भटकनि है सटकनि भली सबै दिस तें रे।
गटकनि कृपा-सुधानिधि चरितनि तिन तजि पियौ बिषै-बिस तें रे।
परौ अचेत प्रेत जीवत ही अजहूँ सम्हरि मोह-निस तें रे।
नित हित मैं उदार घनआनँद रस बरसत आनँद-मिस तें रे ॥५०॥

कवित्त

दान के बिधान यौं बखानत सुजान संत,
दानी बहु भाँति और जाचक अनंत हैं।
सूछम प्रतीत पै निपट ताकी प्रीति जानि,
[illegible]नत जे एक दानीराय साजवंत हैं।
फूल आगे लागै पाछे अंकुर मनोरथ को,
पानिप-निधान मान-महिमा-महंत हैं।
तातैं मन चातक तू पन लै सजीवन सौं,
कृपा-घनआनँद अधार जराजंत हैं ॥ ५१ ॥

सचि = संचित कर। [४९] जन = दास। अपनैन० = अपनों की प्रतिज्ञाओं के लिए। अरगाई = थककर पृथक् हो गई। [५०] सटकनि = हटना। गटकनि = पीना। [५१] फूल = पुष्प ; प्रसन्नता। जराजंत = वृद्ध जीव या वृद्धता का

कबित्त

पन ऊँची दीठि नीठि नीचियौ न होति,
कहूँ ऐसे मन-चातक भए जे कृपाकंद के।
सुधा को सुरालै लखैं नीच कीच कैसें चखै,
तोषे रस-पोषे घनआनँद अमंद के।
जिन पर रीझि-भीजे छाए सुख-संपदा लै,
लसत रसत प्यारे जसुमति औ नंद के।
तिन्हैं तेई तकैं तेऊ तिहि पानि छुकैं और,
कैसें देखि जकैं जे अजाची जगवंद के॥ ५२॥

सवैया

द्वार न जाइहै या जन के जगदीस तिहारियै पौरि पस्यौ है।
आस के पासहि काटि कृपा-बल पूरन पैज भरोसो भस्यौ है।
ह्वै अनुकूल हरौ हिय सूल खरो अनखाय उदार अस्यौ है।
हौ पनधारी सुनौ घनआनँद सींचन की अभिलाष हस्यौ है॥ ५३॥

कवित्त

दौरि दौरि थाक्यौ पै थक्यौ न तऊ दौरनि तैं,
गति भूले मन की न दूरि कछू तो तैं रे।
तातैं ठौर दीजै याहि, सुधि लीजै मोदघन,
बूझियै न बिड़रौ अनाथ तोहि होतैं रे।
हाय हाय है अमोही हारि कै कहत हा हा,
आय बनी अब ह्वैहै वही रची जो तैं रे।
आस-बिसवास-ऐन साधन हूँ साधन दैन,
साधन कृपा है और कहा सधै मो तैं रे॥ ५४॥

थंत्र। [५२] कंद = बादल। सुरालै = सुरालय, मदिरा का स्थान या देव-लोक। जगवंद = जगद्वंद्य। [५३] जन = सेवक। पौरि = द्वार। पास = पाश, फंदा। खरो० = अत्यंत लुब्ध होकर। हस्यौ = हराभरा, प्रसन्न। [५४] मोदघन = आनंद के बादल ; घनआनंद। बिड़रौ = (विरल) कोई। होतैं =

दोहा

प्रगट प्रेम-पद्धति कही, लही कृपा-अनुसार।
आनँद-घन उन पै सदा, अद्भुत रस-आसार ॥ ५५ ॥
सुरति स्याम सौं मिलि रही, करति धाम के काम।
यह गति ब्रज-अबलानि की, परम प्रेम तकि राम ॥५६॥
बँधि बाँधे मोहन गुनी, सुनी न ऐसी प्रीति।
याही तें सब ही अमिल, या ब्रज की रस-रीति ॥५७॥
प्रेम-अवधि आनंदघन, लिये महारस पागि।
सर्वसु साध्यौ बिसरि सुधि, मोह-दसा उर जागि ॥५८॥
कहि न परत कछु अगम गति, जगमोहन बस जाहि।
ब्रज को प्रेम अगाध है, को अवगाधै ताहि ॥५९॥
सदागमन मुरली धरे, गावत ब्रज को प्रेम।
ब्रजनायक नेही निपुन, गहे प्रेम को नेम ॥६०॥
गोरस है सो रस लियौ, जो रस रहै न कोय।
लैन दैन अति रससमी, गति दति रही समोय ॥६१॥
घर बैठी बन मैं फिरै, गोपिन की यह गैल।
गोहन क्यौं न लगौ रहै, रसिया मोहन छैल ॥६२॥
गाँव गाँव पोखरि बगर, ब्रज मोहन मँडराय।
कहौ ताहि कल क्यौं परै, जिनके चैन चुराय ॥६३॥
एकहि लगि दुहुधा खरी, लगी पुरातन प्रीति।
गोपी और गुपाल की, निपट नवेली रीति ॥६४॥

होते हुए। [५५] आसार = वृष्टि। [५६] सुरति = स्मृति, ध्यान। तकि = देखो। राम = अपने राम, आत्माराम, मन। [५७] गुनि = गुणी, डोरेवाला। [५८] मोह० = अचेतनावस्था। [५९] अवगाधै = थहाए। [६०] सदागमन = निरंतर घूमते हुए। [६१] रससमी = रसयुक्त। गति = मोक्ष, मुक्ति। दति० = भली भाँति डूबी है। [६२] गैल = रीति। गोहन = साथ। [६३] पोखरि = पुष्करिणी, तलैया। [६४] दुहुधा = दोनों ओर। [६५]

परम प्रेम-गति अगम अति, अमल अपूरब रूप।
सब तें न्यारी सुचि सुमिल, व्रज रस-रीति अनूप ॥६५॥

मधुर मुरलिका-नाद सों, मति गति लई बिलोय।
निगम-बान बेधे परम, विषम बिपामृत भोय ॥६६॥

प्रेम-परावधि व्रजबधू, सुनि बंसी-धुनि मंद।
तजत भईं सब सकुच तब, भजत भईं व्रजचंद ॥६७॥

आरज-पथ भूली भले, बिबस परी हित-फंद।
व्रजमोहन मनमोहनी, पूरन प्रेम अमंद ॥६८॥

थकित चली सुनि मुरलिका-सुधुनि अपूरब गैल।
बिबस भई अपबस कियौ, मदन-मनोहर छैल ॥६९॥

अतुल अरूप सरूप गुन, गोपी परम पुनीत।
जिनके बस रसनिधि सदा, स्याम सजीवन मीत ॥७०॥

व्रज बृंदावन देखियै, पूरन प्रेम-समाज।
गोपराज-नंदन नवल, नित बरसत रसराज ॥७१॥

चोप बाल व्रजचंद की, अदभुत केलि अभंग।
छाके हूँ अछके रहत, अछके छाक-उमंग ॥७२॥

गिरि बन घन जमुना पुलिन, जल थल अमल विहार।
सदा कुलाहल मचि रह्यौ, लीला ललित अपार ॥७३॥

परम अमिल अति ही सुमिल, हरि-व्रजवधू-बिलास।
जाचत हैं बिधि संभु से, श्रीव्रजमंडल-बास ॥७४॥

सुमिल = सुगमता से मिलनेवाली। [६६] बिलोय = मथ लिया। भोय = डुबोकर, भिंगोकर। [६७] परावधि = पराकाष्ठा। [६८] आरज-पथ = मर्यादा का मार्ग। [६९] अपूरब० = अनुपम मार्ग (प्रेम का)। [७०] मीत = मित्र, प्रिय। [७१] नंदन = पुत्र। रसराज = शृंगार। [७२] चोप= उत्साह। छाके० = छकने पर भी अछके रहते हैं और न छकने पर भी छके रहते हैं। [७३] गिरि = गोवर्धन। बन = वृंदावन। पुलिन = तट। [७४]

श्रीपद-अंकित व्रज-मही, छबि न कही कछु जाय।
क्यौं न रमा हूँ को हियो, या सुख कौं ललचाय ॥७५॥
रची निरंतर केलि यह, अदभुत अमल रसाल।
बिहरत भरि आनंद सौं, गोपी-मदनगुपाल ॥७६॥
मिलि बिछुरत बिछुरैं मिलत, अचरज मिलत बिछोह।
जगमोहन जग तें बिलग, व्रज-बन-लीला मोह ॥७७॥
देखत भूलो सो लगै, लखि व्रज को ब्यौहार।
चकचौंधी सब दै चखनि, अचरज प्रेम-बिचार ॥७८॥
यह बिनोद या व्रज बनै, अदभुत अमल अखंड।
गान करत व्रजकेलि को, कोटि कोटि व्रहमंड ॥७९॥
रसिक-सिरोमनि साँवरो, रमनी-मनि व्रजबाम।
बिलसत हुलसत एकरस, व्रज बृंदाबन-धाम ॥८०॥
महाभाग व्रज की बधू, जिन बस कियौ गुपाल।
रिनी रहत हित मानि कै, सुकृती परम रसाल ॥८१॥
गोपिन की पदवी अगम, निगम निहारत जाहि।
पदरज बिधि से जोवहीं, कौन लहै फिरि ताहि ॥८२॥
एक कृपाबल पाइयै, मति गति रहि भरिपूरि।
निकट होति, पाछे परैं श्रीपद-पंकज-धूरि ॥८३॥
गोपिन को रस गुपुत अति, प्रगट करै तिहि ठौर।
भव सनकादिक सुमिरि कै, चकित रहत धरि मौन ॥८४॥
गोपी मदनगुपाल मिलि मोहन व्रजबन-केलि।
अति प्यारी भारी नवल, निरवधि आनँद-बेलि ॥८५॥

बिधि = ब्रह्मा। [७५] श्रीपद = श्रीकृष्ण के चरणचिह्न। रमा = लक्ष्मी। [७६] निरंतर = अर्थात् नित्य। [७७] बिलग = पृथक्। [७८] भूली = विस्मृति में पड़ी। [७९] व्रहमंड = ब्रह्मांड। [८०] व्रज० = व्रज की गोपियाँ। [८१] रिनी = ऋणी। सुकृती = पुण्यात्मा। [८२] बिधि = ब्रह्मा। जोवहीं = ताका करते हैं। [८३] पाछे = पीछे पड़ने से। [८४] भव = शिव।

परम प्रेम मति को लहै, मन बुधि थकी बिचारि।
या रस-बस मोहन रसिक, रहत अपनपौ हारि ॥८६॥
गोपी रस-संपुट कियौ, हियो आपने स्याम।
ब्रजवन बसि हुलसत सदा, प्रगट इकौसे धाम ॥८७॥
अतुल रूप-गुन-माधुरी, परम अपूरब साज।
गोपी और गुपाल को, अति रसमसो समाज ॥८८॥
परम प्रेम गुन रूप रस, ब्रज-संपदा अपार।
जय जय जय श्री गोपिका, जय जय नंदकुमार ॥८९॥

---

[८५] निरवधि = सीमाहीन, असीम। [८६] अपनपौ = अपनत्व। [८७] संपुट० = बंद कर लिया। इकौसे = एकांत, अकेले। [८८] रसमसो = रसीला। [८९] संपदा = वैभव।

वियोग-बेलि

(बंगाली बिलावल)

सलोने स्याम प्यारे क्यौं न आवौ। दरस-प्यासी मरैं तिनको जिवावौ।
कहाँ हौ जू कहाँ हौ जू कहाँ हौ। लगे ये प्रान तुम सौं हैं जहाँ हौ॥१॥

रहौ किन प्रान प्यारे नैन-आगैं। तिहारे कारनै दिन-रैन जागैं।
सजन! हित मानि कै ऐसी न कीजै। भई हैं बावरी सुधि आय लीजै॥२॥

कही तब प्यार सौं सुखदैन बातैं। करौ अब दूर तें दुखदैन घातैं।
बुरे हौ जू बुरे हौ जू बुरे हौ। अकेली कै हमैं ऐसें दुरे हौ॥३॥

सुहाई है तुम्हैं यह बात कैसैं। सुखी हौ साँवरे, हम दीन ऐसैं।
दिखाई दीजियै हा हा अमोही। सनेही ह्वै रुखाई क्यौं ऽब सोही॥४॥

तुम्हैं बिन साँवरे ये नैन सूनै। हिये मैं लै, दिये बिरहा अभूनै।
उजारौ जौ हमैं काकौं बसैहौ। हमैं यौं ख्वाय कै औरैं हँसैहौ॥५॥

कहौं अब कौन सौं बिरहा-कहानी। न जानी ही न जानी ही न जानी।
लिखैं कैसें पियारे प्रेम-पाती। लगै अँसुवन भरी ह्वै टूक छाती॥६॥

पर्‌यौ है आन कै ऐसो अँदेसो। जरावै जीव औ कानन सँदेसो।
दसा है अटपटी पिय आय देखौ। न देखौ तौ परेखौ है परेखौ॥७॥

अजू ऐसैं कहौ कैसें बितैयै। अवधि बिन हूँ सदा पैंड़ो चितैयै।
अनोखी पीर प्यारे कौन पावै। पुकारौं मौन मैं कहि बैन आवै॥८॥

अचंभे की अगिन अंतर जरौं हौं। परौं सीरी भरौं नाहीं मरौं हौं।
कहा जानौं तिहारे जी कहा है। असोची मोहिं तोसी सो महा है॥९॥

---

[५] अभूनै = (अजूनै) जो कभी जीर्ण न हो, जो समाप्त होनेवाला न हो, चिरस्थायी।

तिहारे मिलन की आसा न छूटै। लग्यौ मन बावरौ तोरैं न टूटै।
अजौं धुन बाँसुरी की कान बोलै। छबीली छैल-डोलन-सँग डोलै॥१०॥

सलोनी स्याम-मूरत फिरै आगैं। कटाछैं बान सी उर आन लागैं।
मुकट की लटक हिय मैं आय हालै। चितौनी बंक जिय मैं आय सालै॥११॥

हसन मैं दसन-दुति की होत कौधैं। बियोगी नैन चेटक चाय चौंधैं।
अधर को देख प्यासे नैन दौरैं। अमी के पान बिन ह्वै बिबस बौरैं॥१२॥

अचानिक आय मदन जब सतावै। कहौ तब की दसा कहि को बतावै।
लगै लालन! बिरह की तब चटपटी। सहँ कैसैं यह गत अटपटी॥१३॥

बहै तब नैन तैं अँसुवान-धारा। चलावै सीस पै बिरहा जु आरा।
इतै पै जौ न पाऊँ पीर प्यारे। रहँ क्यौं प्रात ये बिरही बिचारे।१४।

सुहाई है तुम्हैं कैसैं अनैसी। कहौं कासौं करौ तुम ही जु ऐसी।
जरावै नीर तौ फिर को सिरावै। अमी मारै कहौ जू को जिवावै १५

जु चंदा ते झरैं दैया अँगारे। चकोरन की कहौ गति कौन पारै।
अजू ब्रजनाथ गोपीनाथ कैसे। करै बिरहा हमारे हाल ऐसे॥१६॥

अचंभो है अचभो है यहाँ जू। सनेही हौ कहौ कीनौ कहा जू।
हियो ऐसो कठिन कब तैं कियो है। बली अबलीन मारैं सुन लियो है १७

करौ अब सो तुम्हैं आछी लगै हो। जसोदानंद जैसैं जग-जगे हो।
तिहारे नाम के गुन बाँध डारी। बिचारो जू बिचारी है बिचारी।१८॥

दसा*दिखराय बिनती कीजिये जू। परे पायन हिये धरि लीजिये जू।
भरोसो है भरोसो है भरोसो। रही ब्रत धारि अजू अब तो परोसो॥

रँगीले हौ छबीले हौ रसीले। न जू अपनीन सौं हूजै गँसीले।
लगौ नीकै सबै विधि प्रान-संगी। तिहारी मौन है प्यारे तरंगी॥२०॥

तुम्हैं बिनु क्यौं जियैं तुम ही विचारौ। बचैं कैसैं कहौ तुम ही जु मारौ।
रहौ नीके अजू घनस्याम प्यारे। हमारे हौ हमारे हौ हमारे॥२१॥

*दया।

तिहारी है तिहारी है तिहारी। बिचारी है बिचारी है बिचारी।
तिहारे नाम पर हम प्रान वारैं। जहाँ हौ जू तहाँ रहियै सुखारैं२२
तुम्हैं निसद्योस मनभावन असीसैं। सजीवन हौ करौ हम पै कसीसैं।
लगै जिन लाड़ले जू पौन ताती। सुहाई है हमैं तुम कौं सुहाती॥२३॥
गहौ तुम ही जू प्यारे दीन दोखैं। दया की दृस्टि सौं फिर कौन पोखैं।
सुरत कीजै बिसारैं क्यौं बनैगी। बिरहिनी यौं अवधि कब तक गिनैगी
हियो ऐसो कठिन कब तक कियौ है। मिलौ औरन हमैं बिरहा दियौ है।
नहीं पाई परै प्यारी लपेटैं। कहौं हा हा कहाँ धौं आह पेटैं॥२५
भई सूधी सुनौ बाँकेबिहारी। न करिहैं मान फिर सौंहैं तुम्हारी।
पढ़ाई मूड़ अब पायन परैंगी। कहौ जोई अजू सोई करैंगी॥२६॥
दई कौं मान कै, अब आन ज्यावौ। पियासी हैं पियारे सुरस प्यावौ।
तिहारी हैं बिछुर क्यौं हूँ जियैंगी। बिरह-घायल हियो ज्यौं त्यौं सियैंगी
बिसासिन बाँसुरी फिरि हूँ सुनैंगी। कियौ ही सीस ऐसैं सिर धुनैंगी।
न तोरौ जू कहौ क्यौं हूँऽब जोरी। निगोड़ी प्रीति की दुखदैन डोरी२८
करी तुम तो अजू गुनखान हाँसी। परी गाढ़ैं गरें बिसवास फाँसी।
न छूटै जू न छूटै जू न छूटै। ठगोरी रावरी बिरहीन लूटै॥२९॥
हमारी एक तुम सौं टेक प्यारे। मिलन मैं कै कपट ह्वै गए न्यारे।
चकोरी बापुरी ये दीन गोपी। अहो ब्रजचंद क्यौं पहचान लोपी३०
छबीले छैल तुम को पीर काकी। बिथा की कथा तें छतिया जु पाकी।
सजीवन साँवरे कब धौं ढरौगे। मेरे साधा, बिरहबाधा हरौगे॥३१॥
टरै नाहीं हिये तें हेत-थाती। सम्हारौ आय कै प्यारे सँघाती।
बढ़ै आसा हियें भादौं-नदी सी। न दीसे कौं मसोसैं भाँवरी सी॥३२॥

---

[२३] कसीसैं = खिंचना, रुजू होना अर्थात् कृपा करना। [२५] पेटैं = घिराव। [३२] सँघाती = संगी।

तिहारी ह्वै दुखारी बूझिये क्यौं। सुनौ सुखदैन प्यारे दीन हैं ज्यौं।
दईमारीन की अब दया आनौ। परें पाँ दूर तें व्रजनाथ मानौ॥३३॥
सनेही ह्वै तुमैं सँग राख जानैं। सबै मिल रावरे गुन कौं बखानैं।
अजू अब संग लागे प्रान प्यारे। सुने निज कान मोहन गुन तिहारे३४
तिन्हैं घर बात कैसे सह परी है। विना ही काज ज्यों जूझै भरी है।
हमैं तुम तौ लगौ सब भाँति नीके। करौ किरपा तो रोवैं *साल ही के३५
कहा वारैं निछावरि ह्वै रही हैं। कहैं कौ लौं कही हैं जू कही हैं।
रसिक सिरमौर हौ रस राखि लाजै। तनक मन नाम के गुन बीच दीजै३६
धरैये नावँ को अब नावँ ऐसैं। दुहाई है सुहाई परै कैसैं।
सदा तें रावरी बिन मोल चेरी। घरनि तें काढ़ि बन बंसीनि घेरी३७
किये की लाज है व्रजराज प्यारे। विराजौ सीस पै जग मैं उज्यारे।
सदा सुख है हमैं तुम साथ आछैं। लगी डोलैं छबीले-छाँह पाछैं॥३८॥
तुम्हैं देखैं तुम्हैं भेटैं भलैं ही। जगैं सोयें 'रु बैठैं यों चलैं ही।
न न्यारी हैं न न्यारी हैं न न्यारी। भई हैं प्रानप्यारे प्रानप्यारी॥३९॥
हमारी औ तिहारी एक बातैं। रँगीले रंग रात-द्यौस रातैं।
सदा आनंद के घन स्याम संगी। जियौ ज्यावौ सुधा प्यावौ अभंगी४०

---

[३५] साल = पीड़ा। करौ० = यदि आपकी कृपा हो तो हृदय की व्यथाओं को रोना पड़े। [३८] पाछैं = रहते हुए। [४०] अभंगी = अखंड, निरंतर।

* हरौ ये।

प्रकीर्णक

कवित्त

लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाय-भरी,
लसति ललित लोल-चख-तिरछानि मैं ।
छवि को सदन गोरो वदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं ।
दसन दमक फैलि हियें मोती-माल होति,
पिय सौं लड़कि प्रेम-पगी वतरानि मैं ।
आनँद की निधि जगमगति छवीली वाल,
अंगनि अनंग-रंग ढुरि मुरि जानि मैं ॥ १ ॥

सवैया

झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै ।
हँसि वोलनि मैं छवि-फूलन की वरषा उर-ऊपर जाति है ह्वै ।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ वनी जलजावलि द्वै ।
अँग अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अवै धर च्वै ॥ २ ॥

कवित्त

छवि को सदन, मोद मंडित वदन-चंद,
तृपित चखनि लाल ! कव धौं दिखायहौ ।
चटकीलो भेप करें,मटकीली भाँति सौं ही,
मुरली अधर धरें लटकत आयहौ ।

---

[१] भाय = भाव । लड़कि = लटक या ललक के साथ । निधि = खजाना । [२] जलजावलि० = दो लर की मोतियाँ की माला । [३] ढुराय =

लोचन दुराय, कछू मृदु मुसक्याय, नेह [illegible]
भीनी बतियानि लड़काय बतरायहौ।
बिरह-जरत जिय जानि, आनि प्रानप्यारे,
कृपानिधि! आनँद को घन बरसायहौ ॥ ३ ॥

वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै
लड़कीली बानि आनि उर मैं अरति है।
वहै गति लैन औ बजावनि ललित बैन,
वहै हँसि दैन हियरा तैं न टरति है।
वहै चतुराई सों चिताई चाहिवे की छवि,
वहै छलताई न छिनक बिसरति है।
आनँद निधान प्रानप्रीतम सुजान जू की,
सुधि सब भाँतिन सौं बेसुधि करति है ॥ ४ ॥

जासों प्रीति ताहि निठुराई सौं निपट नेह,
कैसैं करि जिय की जरनि सो जताइयै।
महा निरदई, दई कैसैं कै जिवाऊँ जीव,
वेदन की वढ़वारि कहाँ लौं दुराइयै।
दुख को वखान करिबे कौं रसना कैं होति,
ऐपै कहूँ वाको मुख देखन न पाइयै।
रैन-दिन चैन को न लेस कहूँ पैयै, भाग
आपने ही ऐसे, दोष काहि कौं लगाइयै ॥ ५ ॥

सवैया

भोर तैं साँझ लौं कानन-ओर निहारति बावरी नेकु न हारति।
साँझ तैं भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सौं इकतार न टारति।

मटकाते हुए। लड़काय = ललककर। [४] लड़कीली = ललकवाली। बैन = वेणु, बाँसुरी। चिताई = चैतन्य की हुई। [५] बढ़वारि = बढ़ती। कैं = कई। ऐपै = इतने पर भी, किंतु। [६] न हारति = थकती नहीं। तारनि = तारों को। तारनि सौं = पुतलियों से। इकतार = एक सा, लगातार। भावतो = प्रिय।

जौ कहूँ भावतो दीठि परै, घनआनँद आँसुनि औसर आरति।
मोहन-सौंहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति ॥ ६ ॥

कबित्त

भए अति निठुर, मिटाय पहचानि डारी,
याही दुख हमैं जक लागी हाय हाय है।
तुम तौ निपट निरदई, गई भूलि सुधि,
हमैं सूल-सेलनि सो क्यौं हूँ न भुलाय है।
मीठे मीठे बोल बोलि, ठगी पहिलें तौ तब,
अब जिय जारत कहौ धौं कौन न्याय है।
सुनी है कै नाहीं, यह प्रकट कहावति जू,
काहू कलपायहै सु कैसें कल पायहै ॥ ७ ॥

सवैया

आँखिन आनि रहे लगि आस कि वेस-बिलास निहारियै हूँगे।
कानन बीच बसैं भरि प्यास अमी-निधि बैननि पारियै हूँगे।
यौं घनआनँद ठौरहि ठौर सम्हारत हैं सु सम्हारियै हूँगे।
प्रान परे उरझैं सुरझैं कि कहूँ कबहूँ हम वारियै हूँगे ॥ ८ ॥

रूप-सुधारस-प्यास-भरी नित ही अँसुवा ढरिबोई करैंगी।
पीवन-साध असाध भई इहि जीवन कौं मरिबोई करैंगी।
हाय महा दुख है सुखदैन! बिचारौ हियैं, भरिबोई करैंगी।
क्यौं घनआनँद मीत सुजान! कहा अँखियाँ बरिबोई करैंगी ॥ ९ ॥

तुम्हैं प्रान लगे तुम प्रानन हूँ मनमोहन सोहन मानियै जू।
निठुराई सौं कौ लौं निवाहियैगी कबहूँ तौ दया उर आनियै जू।

आँसुनि० = उस अवसर पर आँसू गिराती है, अथवा आँसू गिराकर अवसर खो देती है। सौंहन = संमुख। जोहन = देखना। आरति = लालसा। [७] सूल० = वेदना की हूक। कलपायहै = तरसाएगा। कल = चैन। [८] अमी-निधि = अमृत के समुद्र। पारियैं० = कानों में पड़ेंगे, सुनने को मिलेंगे [९] साध = उत्कंठा। असाध = असाध्य। भरिबोई = दुःख से दिन काटना

दरसे तैं कहौ हो कहा घटिहै घनआनँद चातक-दानियै जू।
बरसौ सरसौ अरसौ न दई जग-जीवन हौ जग जानियै जू ॥१०॥

कबित्त

नंद को नवेलो अलबेलो छैल रंग-भर्यौ,
कालिह मेरे द्वार ह्वै कै गावत इतै गयौ।
बड़े बाँके नैन महा सोभा के सु ऐन आली,
मृदु मुसक्याय मुरि मो तन चितै गयौ।
तब ते न मेरे चित्त चैन कहूँ रंचकौ है,
धीरज न धरै सो, न जानौं धौं कितै गयौ।
नेकु ही मैं मेरो कछू मो पै न रहन पायौ,
औचक ही आय भटू लूट सी बितै गयौ ॥११॥

जाके उर बसी रस-मसी छबि साँवरे की,
ताहि और बात नीकी कैसे करि लागिहै।
चखनि चषक पूरि पियौ जिन रूप-रस,
कैसैं सो गरल-सनी सीखनि सौं पागिहै।
आनँद को घन स्यामसुंदर सजल अंग
छाड़ि, धूम-धूँधरि सौं कैसैं कोऊ रागिहै।
ये तौ नैन वाही को बदन हेरैं सीरे होत,
और बात आली सब लागति ज्यौं आगि है॥१२॥

हिलग अनोखी क्यौं हूँ धीर न धरत मन,
पीर-पूरे हिय मैं धरक जागियै रहै।
मिले हूँ मिले को सुख पाय न पलक एकौ,
निपट बिकल अकुलानि लागियै रहै।
मरति मरूरनि बिसूरनि उदेग-बाढ़ि,
चित चटपटी मति चिंता पागियै रहै।

---

[१०] सोहन = शोभन। अरसौ० = आलस्य मत करो। [११] ऐन = घर। लूट० = लूट सी करके। [१२] रसमसी = रसीली। चषक = प्याला।

ज्यौं ज्यौं बहरैयै सुधि जी मैं ठहरैयै,
त्यौं त्यौं उर अनुरागी दुख-दाह दागियै रहै ॥१३॥

सवैया

रैन-दिना घुटिबो करैं प्रान, झरैं अँखियाँ दुखिया झरना सी।
प्रीतम की सुधि अंतर मैं कसकै सखि ज्यौं पँसुरीनि मैं गाँसी।
चौचँद-चार चवाइन के चहुँ ओर मचैं, बिरचैं करि हाँसी।
यौं मरियै भरियै कहि क्यौं सु परौ जिन कोऊ सनेह की फाँसी ॥१४॥
अलि ! जो विधिना व्रजवास न देतौ न नेह को गेह हियो करतौ।
अरु रूप-ठगी अँखियाँ रचतौ नहीँ रूखियै दीठि सौं लै भरतौ।
कहि तौ लखि नंद को छैल छबीलो सु क्यौं कोऊ प्रेम-फँदा परतौ।
दुख कौ लौं सहौं घुटि कैसें रहौं भयौ भाकसी देखें विना घर तौ ॥१५॥
होते हरे हरे रूखे जो दूखे, कितै गई सो चिकनानि तिहारी।
मोह-मढ़ी बतियाँ जु गढ़ी सु कढ़ी छतिया छिदि बंक विहारी।
चूक पै मूक भए ही बनै, घनआनँद हूकनि होति दुखारी।
एहो कहा भयो कान्ह कठोर है एक ही बारि चिन्हारि बिसारी ॥१६॥

कवित्त

छबि सौं छबीलो छैल आजु भोर याही गैल,
अति ही रँगीली भाँति औचक ही आयगौ।
चटक मटक भरी लटकि चलनि नीकी,
मृदु मुसक्यानि देखें मो मन विकायगौ।
प्रेम सौं लपेटी कोऊ निपट अनूठी तान,
मो तन चिताय गाय लोचन ढुरायगौ।
तब तें रही हौं घूमि झूमि जकि बावरी ह्वै,
सुर, की तरंगनि मैं रंग बरसायगौ ॥१७॥

धूम० = धूएँ का धुध। [१३] हिलग = लगन। मरूर = पीड़ा। [१४] गाँसी = फाँस। चौचँद० = बदनामी की चर्चा। [१५] भाकसी = (भस्त्री = भाथी) भट्ठी। [१६] होते० = रूखे दूखे भी जिससे हरे (प्रसन्न) हो जाते थे। [१७] ढुरायगौ = मटका गया। घूमि = मतवाली हो गई हूँ। [१८]

छवि की निकाई पहो मोहन कन्हाई, कछू
बरनी न जाई जो लुनाई दरसति है।
वारिधि-तरंग जैसे धुनि-राग-रंग जैसे,
प्रतिछिन अधिक उमंग सरसति है।
किधौं इन नैननि सराहौं प्रानप्यारे,
रूप-रेलहिं सकेलें तऊ दीठि तरसति है।
ज्यौं ज्यौं उत आनन पै आनँद सु ओप औरै,
त्यौं त्यौं इत चाहनि मैं चाह बरसति है ॥१८॥

सुंदर सरस लोनो ललित रँगीलो मुख,
जोवन-झलक क्यौं हूँ कही न परति है।
लोचन चपल चितवनि चाय-चोज-भरी,
भृकुटी सुठौन भेद-भायनि ढरति है।
नासिका रुचिर अधरनि लाली सहजै ही,
हँसनि दसन-जोति हियरा हरति है।
नख-सिख आनँद उमंग की तरंग बढ़ि
अंग अंग आली छवि छलक्यौ करति है ॥१९॥

वैस है नवेली अलबेली ऊठ अंग अंग,
झलकै अनंग-रंग पैंड़त चलत है।
सहज छबीले दसननि मैं रची री बीरी,
अधर-तरंगनि सुधा सी उझलत है।
छके छुवे कान वारौं कोटि तीखे बान, ऐसे
नैननि बिहँसि हेरि मैन निदलत है।
कारी घुँघरारी अलकनि के छलानि, छैल
ताननि लुभाय फिरि प्राननि छलत है ॥२०॥

रेला = प्रवाह, अधिकता। चाहनि० = देखने से लालसा की वृद्धि होती है। [१९] सुठौन = सुदर। [२०] ऊठ = उठान। उलझत० = उड़ेलता है। मैन० = काम को पराजित करता है। छला = केशों के छल्ले। [२१]

रूप-गरबीलो अरबीलो नंद लाड़िलो सु
दृग-मग उरस्यौ परत आली उर मैं।
काननि ह्वै प्राननि निकासि लेत एरी बीर!
ऐसी कछू गावत मधुर वंसी सुर मैं।
ढोरियै दरेरनि निदरि लाज देखिबे कौं,
पौरि पौरि याही रौरि माची ब्रज-पुर मैं।
कैसे करि जीजै,बसि कीजै कहा,महा सोच,
चार्‌यो ओर चलत चवाव लघु-गुर मैं ॥२१॥

पीरे पीरे फूलनि की माला रचि हिय धारि,
वारि वारि ताही कौं सफल करै काय कौं।
ऐसे धीर काचे, पूरे प्रेम-रंग राचे बीर!
पीरे फल चाखैं अभिलाखैं नीके दाय कौं।
डोलैं वन वन वावरे ह्वै साँवरे सुजान,
धाय धाय भेटै भावती ही दिसि बाय कौं।
उमगि उमगि घनआनँद मुरलिका मैं
गौरी गाय ढौरी सौं बुलावैं गोरी गाय कौं ॥२२॥

तेरे हित हेली! अनुराग-बाग-बेली करि,
मुरली-गरज भूमि भूमि सरसत है।
लोने अंग रंग जानि चंचला छटा सौं पट
पीत कौं उमगि लै लै हियैं परसत है।
चाह के समीर की झकोरनि अधीर ह्वै ह्वै,
उमड़ि घुमड़ि याही ओर दरसत है।
लोचन सजल क्यौं हूँ उघरैं न एकौ पल,
ऐसैं नेह-नीर घनस्याम बरसत है ॥२३॥

उरस्यौ० = धँसे आ रहे हैं। ढोरियै = साथ लगना। रौरि = शोर। [२२] दाय = दावँ। बाय = वायु (आकाश)। गौरी = एक राग। ढौरी = ढंग। गोरी = गौर वर्ण। [२३] हेली = हे सखी। घनस्याम = श्रीकृष्ण ; बादल।

आई आन गाँव तेँ नवेली पास पायसेँ लु,
गुरु-जन-लाज के समाजनि मैँ आवरी।
आनँद-सरूप अलि साँवरो तक्यो ता कहूँ,
दीठि के मिलत बढ़ि पर्‌यौ चित चाव री।
रीझि-परवस पर बस न चलत कछू,
ऐसैँ ही मैँ होरी को रँगीलो बन्यौ दाव री।
दिन ही मैँ तिन-सम कानि के कपाट तोरि,
धूँधरि अबीर की कौँ मानत विभावरी॥ २४॥

गोरी बाल थोरी वैस, लाल पै गुलाल-मूठि
तानि कै चपल चली आनँद-उठान सौँ।
बायेँ पानि घूँघट की गहनि चहनि-ओट
चोटनि करति अति तीखे नैन-बान सौँ।
कोटि दामिनीनि के दलनि दलमलि, पाय
दाय जीति आय झुंड मिली है सयान सौँ।
मीड़िबे के लेखैँ कर मीड़िबोई हाथ लग्यौ,
सो न लगी हाथ रह्यौ सकुचि सखान सौँ॥ २५॥

नीकी नई केसरि को गारौ हू गरब गारै,
फीकी रोरि, गारि सी निहारैं रूप गोरी को।
चाह चुहचुही मँजी पड़िनि ललाई लखैं,
चपरि चलत च्वै बरन बूकी बोरी को।
हँसि बोलैँ कोरिक कपूर सौंधे वारि ढारि,
डारि डारि दीजै हो कलंक इन्हैँ चोरी को।
प्यारे घनआनँद के राग भाग फाग देखौ,
रस-भीजे अंगनि अनूठो खेल होरी को॥ २६।

[२४] पास = निकट, पड़ोस। पायसैँ = जेवनार मैँ। आवरी = व्यग्र। विभावरी = रात्रि। [२५] चहनि = देखना। [२६] गारौ = गौरव। गारि सी = अर्थात् रोली कलंकित सी जान पड़ती है। चुहचुही = आर्द्र। बूकी० = लाल बुकनी और उसमैँ रँगी वस्तु का। सौंधे = सुगंधित पदार्थ, इत्र

सवैया

बैस नई अनुरागमई सु भई फिरै फागुन की मतवारी।
कौंवरे हाथ रची मिहँदी डफ नीकैं बजाय हरै हियरा री।
साँवरे भौंर के भाय भरी घनआनँद सौनि मैं दीसति न्यारी।
कान ह्वै पोखति प्रानपियैं मुख-अंबुज च्वै मकरंद सी गारी ॥२७॥
पिय के अनुराग सुहाग-भरी रति हेरैं न पावति रूप-रफै।
रिझवारि महा रसरासि-खिलारि गवावति गारि बजाय डफै।
अति ही सुकुवारि उरोजनि भार भरै मधुरी डग लंक लफै।
लपटै घनआनँद घायल ह्वै दृग-पायल छ्वै गुजरी-गुलफै ॥२८॥

कबित्त

नई तरुनई भई, मुख आछी अरुनई,
सरद-सुधाधर-उदोत-आभा रद की।
अंग अति लोनी लसै ललित तिलोनी सारी,
भाग-भरे भाल दिपै बेंदी मृगमद की।
बोलै हो हो होरी घनआनँद उमंग-बोरी,
छैल-मति छकै छबि हेरैं रदछद की।
रोरी भरि मुठी गोरी भुज उठी सोहै मनौ,
पराग सौं रली भली कली कोकनद की ॥२९॥

सवैया

घूँघट-ओट तकै तिरछी घनआनँद चोट सुघात बनावै।
बाँह उसारि सुधारि बरा बर बीर! छरा धरि ढूकति आवै।
कौंधि अचानक चौंधि भरै चख, चौकस चौंकति छाँह न छ्वावै।
बाल अनूठियै ऊठ गुलाल की मूठि मैं लालहि मूठि चलावै ॥३०॥

आदि। ढारि = गिराकर। [२७] सौनि० = अबीर की ललाई से भरे मुँहवाली होकर। [२८] रफै = सुंदर ढंग। लफै = लचकती है। दृग० = नेत्ररूपी नूपुर। गुजरी० = गोपी का टखना। [२९] तिलोनी = फुलेल से सुगंधित। रदछद = होंठ। रली = भरी। कोकनद = लाल कमल। [३०] उसारि =

दाँव तकै, रस-रूप छकै, बिथकै मति पै अति चोपनि धावै।
चौंकि चलै, ठठि छैल छलै, सु छबीली छराय लौं छाँह न छ्वावै।
घूँघट-ओट चितै घनआनँद चोट चितै अँगुठाहि दिखावै।
भावती गौं-बस ह्वै रसिया हिय-हौंसनि सौं सनि आँखि अँजावै ॥३१॥

पिय नेह अछेह भरी दुति देह दिपै तरुनाई के तेह तुली।
अति ही गति धीर समीर लगैं, मृदु हेमलता जिमि जाति डुली।
घनआनँद खेल-अलेल दसै बिलसै, सु लसै लट भूमि भुली।
सुठि सुंदर भाल पै भौंहनि बीच गुलाल की कैसी खुली टिकुली ॥३२॥

आछी तिलौनी लसै अँगिया गसि चोवा की वेलि बिराजति लोइन।
साँवरी पोति-छरा छलकै छवि गोरी अँगेट लखैं सम कोइ न।
पड़ी-झँवैलिनि ताकि थकै घनआनँद छैल छकै डग दोइन।
भावती गौं पगि लावनि सौं लगि डोलैं लला के लगौंहैं लोइन ॥३३॥

कवित्त

चिहुँटि जगाई अधराति औटपाई आनि,
जानि भहराई सम्हराई मुँह चाँपि कै।
संकट सनेह को विचारैं प्रान जात घुटे,
उरे नाह, नाहर-डरनि उठी काँपि कै।
दिन होरी-खेल की हराहर भयौ हो सु तौ,
भाग जाग सोयौ निधरक नैत ढाँपि कै।

वस्त्र में से निकालकर। बरा = भुजा पर पहनने का एक गहना। छरा = माला की लड़। ढुकति० = पास चली आती है। ऊठ = उमंग। मूठि चलावै = जादू करती है। [३१] ठठि = शान से डटकर। छराय० = पकडी जाने की आशंका से। चोट० = आघात करके। [३२] तेह = जोश। तुली = युक्त। अलेल = मग्न होकर किलोल करना। खुली = फबती है। [३३] तिलौनी = सुगंधित। लोइन = सुंदर। पोति = काँच की गुरिया। अँगेट = अंगदीप्ति। झँवैलिनि = झाँवे से रगड़ी हुई। लावनि = पैर रखना, चलना। लोइन = लोचन। [३४] चिहुँटि = चुटकी काटकर। औटपाई = नटखट। उरे = दूर

गमागम-बस भयौ रस को समागम है,
आगे तें अधिक अब लागन लगी भली।
सकुच-बिकच-दसा देखौं मन आई मनौ,
चाहति कमल होन कौन रूप की कली।
बड़भागी रागी चलि ऐहै घनआनँद सौं,
आँखिनि सिरैहै मधु लैहै भावतो अली ॥४२॥
अलप अनूप लटपटी सु लपेटी रूप,
अलग लगी सी तामैं केती सूध-बाँक है।
कोटिक निकाई मृदुताई की अवधि सोधौं,
कैसे कै रची है जामैं बिधि-बुधि राँक है।
दीठि नीठि आवै कोऊ कहि क्यौं बतावै, जहाँ
बात हू के बोझ हिय होत नमि साँक है।
चलि चित चोरै मुरि मनहिं मरोरै सुठि,
सुभग सुदेस अलबेली तेरी लाँक है ॥४३॥
लाली अधरान की रुचिर मुसक्यान-समै,
सब मुख भोर ही सिँदूरा की सी फैल है।
जोबन गरूर गरुवाई सौं भरे, बिसाल
लोचन रसाल चितवनि बंक छैल है।
सुंदर-सलोने लोने अंगनि की दुति आग
मन मुरझानो मंद मैन को सो मैल है।
दुहूँ हाथ अंसनि तें पीरो पट ओढ़े लखि,
ठाढ़ो सिंह-पौरि रौरि परि थाकी गैल है ॥४४॥
मंजु मोरचंद्रिका-सहित सीस साँवरे के,
कैसी आछी फबी छबि पाग पँचरंग की।

सची = इंद्राणी। थरसै = त्रस्त होती है। [४२] बिभाकर = सूर्य। गमागम= जाना (शैशव का) और आना (यौवन का)। बिकच = खिलने की। सिरैहै = शीतल करेगा। [४३] लटपटी = टेढ़ी-मेढ़ी। सूध = सीधी। बाँक = वक्रता। साँक = सशंक। लाँक = कमर। [४४] सिँदूरा = उषा की रक्तिमा।

दारिम-कुसुम के बरन झीने नीमा मधि,
दीपति दिपति सु ललित लोने अंग की।
मंजन करत तहाँ मन वनितान के,
निहारि मोती-मालहि बिचारि धारा गंग की।
आनँदनि भरो खरो मुरली बजावै, मीठी
धुनि उपजावै राग-रागिनी-तरंग की ॥४५॥

सवैया

नैन के सैन मैं कोटिक मैन लजैऽरु भजै तजि कै सर पाँचनि।
आनँदमै मुसक्यानि लखैं पघिल्यौई परै चित चाह की आँचनि।
ता पिय के हिय कौं हँसि हेरि लई सु रई सी नई गति नाचनि।
नूपुर-वीन सौं लीन कै प्यारी प्रवीन अधीन किये सुर साँचनि ॥४६॥
जात नए नए नेह के भार विंधे उर ओर घनी वरुनी के।
आनँदमै मुसक्यानि उदोत मैं होत हैं रोल तमोल अमी के।
भोर की आवनि प्रान अँकोर किये तित ही चलि आए जहीके।
डारियै जू तिन तोरि कै लालन और दिनान तैं लागत नीके ॥४७॥
नैन किये नरजी दिनरैन रती-बल कंचन-रूपहि तोलैं।
बारह बानि वनी ठनी षोड़स प्यारी के प्रेम छकी नित डोलैं।
श्रीवन-रानी के छत्र की छाँह करैं सुख-वारिधि माहिँ कलोलैं।
चाड़ न काहू की, लाड़-लड़ी हम गोरी गरूर भरी नहिँ बोलैं ॥४८॥
पूरन चंद के चूरन कौं तट धूरि हँसै सु कपूर किती पति।
जौ मघवा-मनि को सतु सोधियै तौऽव कहा परसै पय की मति।
स्याम के संग पगी सब अंग, लसै रस-रंग तरंगनि की गति।
आनँद-मंजन आँखिन अंजन होत लखैं सबिता-दुहिता अति ॥४९॥

मैन = कामदेव, मोम। [४५] नीमा = नीचे पहनने की कुरती। मंजन = स्नान। [४६] सर० = अपने पाँचों बाणों को। प्रबीन = (वीणा बजाने मैं) निपुण। [४७] रोल = प्रवाह। तमोल = तांबूल। अँकोर = भेंट। [४८] नरजी = तौल करनेवाला। रती = रति (प्रेम), रत्ती। बारह० = बारह बानी सोना, कुंदन, बारह आभूषण। षोड़स = सोलह शृंगार। श्रीवन० = राधा।

गोपी—

छैल नए नित रोकत गैल सु फैलत का पै अरैल भए हौ।
लै लकुटी हँसि नैन नचावत बैन रचावत मैन-तए हौ।
लाज अँचै बिन काज खगौ तिनहीं सों पगौ जिन रंग-रए हौ।
पैंड़ सबै निकसैगी अबै घनआनँद आनि कहा उनए हौ ॥५०॥

श्रीकृष्ण—

है उनए सु नए न कछू, उघटै कत पैंड़ अमैड़ अमानी।
बैन बड़े बड़े नैनन के बल बोलति क्यों हौ इती इतरानी।
दान दियें बिन जान न पाइहै आइहै जौ चलि खोरि बिरानी।
आगें अछूती गईं सु गईं घनआनँद आज भई मनमानी ॥५१॥

गोपी—

जाय करौ उहि माय पै लाड़ बढ़ाय बढ़ाय किये इतने जिन।
भीत की दौरनि खोरनि है सठता हठ ओरनि सों समझे बिन।
दान न कान सुन्यौ कबहूँ कहूँ काहे को कौन दयौ सु लयौ किन।
टोड़िक ह्वै घनआनँद डाँटत काटत क्यों नहीं दीनता सों दिन ॥५२॥

श्रीकृष्ण—

देहैगी दान जु ऐहै इतै, नहीं, पैहै अबै सु किये को सबै फल।
बाबा दुहाई, सुहाई कहौ जिय, जानि कै मानि छुटै न कियें छल।
एकहि बोल, दै जाहु चली झगरो सगरो मिटि बात परै सल।
नावँ पर्यौ अबला घनआनँद ऐंठति ग्वैंठति भौंहँ किते बल ॥५३॥

चाड़ = लालसा, यहाँ अपेक्षा या परवाह। [४६] पति = प्रतिष्ठा। मघवा० = इंद्रमणि, नीलम। पय = पानी। मति = समता। सविता० = यमुना। [५०] अरैल = अड़नेवाले। तए = तप्त। खगौ = छेदते हो। [५१] उघटै० = अर्थात् ताना क्यों मारती है। अमैड़ = मर्यादा को न माननेवाली। अमानी = किसी की मान-प्रतिष्ठा न माननेवाली। खोरि० = दूसरे की गली में। [५२] भीत० = अर्थात् छेंकना। टोडिक = पेटू। [५३] बात० = अर्थात् झगड़

गोपी—

जीभ सँभारि न बोलत हौ, मुँह चाहत क्यौं अब खायौ थपेरैं।
ज्यौं ज्यौं करी कछु कानि-कनौड़ त्यौं मूड़ चढ़े बढ़े आवत नेरैं।
खाय कहा फल माय जने, जिय देखौ बिचारि पिता तन तेरैं।
कंज कनेरहि फेर वड़ो घनआनँद न्यारे रहौ कहौं टेरैं ॥५४॥

श्रीकृष्ण—

लेहु भया! गहि सीसन तें दधि की मटुकी अब कानि करौ कित।
जैसे सौं तैसे भए ही बनै घनआनँद धाय धरौ जित की तित।
एकहि एक बराबरि जाहु, करौ अपने अपने चित को हित।
फेरियै क्यौं दुहूँ हाथ सकेरियै, जो विधिना घर वैठें दयौ वित ॥५५॥

गोपी—

गोद भरै, वित धाय कै जाय धरौ गहि मोद सौं माय के आगै।
पेट परे को लखै फल ज्यौं, उपजे हौ सपूत सुभागनि जागै।
वाँटिहै बोलि वधाई कमाई की जाति मैं जातैं महापति पागै।
चास दिये को यहै फल है घनआनँद जौ छिन दोष न लागै ॥५६॥

मधुमंगल—

नंदलला रससागर सौं ललिता! रिस की सलिता न वढ़ैयै।
नागरि आगरि हौ बहु भाँति तुम्हैं अब कौन सी बात पढ़ैयै।
चोखन तोष नहीं उपजै घनआनँद क्यौं गुन दोष कढ़ैयै।
नेकु ढरैं सुधरैं सब काज, अकाज इतौ अपलोक चढ़ैयै ॥५७॥

ललिता—

सुनि रे मधुमंगल! दान-कथा सु जथारुचि होत वृथा हठि है।
कर ओड़ि, दिखाय दया, मृदु ह्वै चलियै बहु भाँति विनै करि है।

मिटे। सल = परत। [५४] कानि० = मर्यादा और एहसान का विचार। फेर = अर्थात् अंतर। [५५] सकेरियै = समेटो। वित = धन। [५६] पति = प्रतिष्ठा। [५७] सलिता = सरिता। आगरी = चतुर। चोखन = तैश से।

घनआनँद ओठ अमेठ कियेँ कहियै कहा पै अब पैयति है।
रिझवारनि पै गुन गाय रिझावहु देहिँ लली की निछावरि है ॥५८॥

सखा—

स्याम सुजान सबै गुन-खानि बजावत बैन महा सुर साँचनि।
अंग त्रिभंग, अनंग-भरे दृग भौँहैं नचाय नचावत नाँचनि।
कीरतिदा-कुलमंडन ज्यौँ निरखै भरि नैन बढ़ै सुख-माँचनि।
दान हँसैँ चुकिहै घनआनँद रीझन ही रुकिहैँ हित-आँचनि ॥५९॥

सखी—

आवौ सखी चलि कुंज मैँ बैठि लखैँ घनआनँद की सुघराई।
पैठन देहिँ न एक सखै, अकिलैँ इन्हैँ छेकि करैँ मनभाई।
भावती टेक रही बहु भाँति, किये न बनै, अति ही कठिनाई।
लेति हौँ राधे बलाय, कह्यौ करि, आज मनौ इतनी हम पाई ॥६०॥

राजदुलार-भरी इकसार, सुभाय मथैँ मन डारति पी को।
कुंज चली सुखपुंज अली सँग भाल बिराजत लाज को टीको।
लोचन कोरनि छोरनि ह्वै मुसक्यानि मैँ ह्वै दरसै हित ही को।
बोलनि बापुरी डारियै वारि लखैँ घनआनँद रूप लली को ॥६१॥

रंग रह्यौ सु न जात कह्यौ उमह्यौ सुखसागर कुंज मैँ आएँ।
केलि पर्‌यौ रस को झगरो अति ही अगरो निबरै न चुकाएँ।
काहू सम्हारि रही न भटू तनकौ तन मैँ घनआनँद छाएँ।
प्रेम पगे रिझवारिन की तहाँ रीझि कै रीझहि लेत बलाएँ ॥६२॥

['घनानंद-कबित्त' से]

अकाज = व्यर्थ। अपलोक = कलक। [५८] मधुसंगल = कोई कृष्ण-सखा। ओढ़ि = पसारकर। ओठ = हौँठ टेढ़ा-मेढ़ा करने से। [५९] कीरतिदा = यशोदा। [६०] सुघराई = चतुरता। [६१] इकसार = एक ढंग से। ही = हृदय। [६२] अगरो = अधिक। निबरै० = रसक्रीड़ा समाप्त होने पर भी

कवित्त

लाख अभिलाषन की चिंता गुनकथनन,
सुधि करि दीन की उदेग दसा दहियौ।
लाप के प्रलाप उनमाद के सँताप व्याधि,
पापिन की आप नेकु वेगि सुधि लहियौ।
जड़ता कही न जात ज्यौं तौ अति अकुलात,
मैनन कही है बात मेरी ओर चहियौ।
जानी दिलजान सौं जु मानी वा सुजान सौं,
निसानी दै कै प्रान सौं निदान प्रान कहियौ ॥६३॥

एकै डोलै बेचत गुपालहि दहेंड़ी लियैं,
नैनन समायौ सो ही बैनन जनात है।
और उठि बोलै आगैं लावरी कहा है मोल,
कैसो धौं जम्यौ है ज्यौं सवादै ललचात है।
आनँद को घन छायौ रहत सदा ही ब्रज,
चोपन पपीहा लौं चहूँधा मँडरात है।
गोकुल वधून की बिकान पै बिकाय रह्यौ,
गली गली गोरस ह्वै मोहन बिकात है ॥६४॥

विविध * सुगंध भाँति भाँति भाव फूल बिछे,
सब रस रीति जामैं केसरि की झोलना।
बिसद सुवास नाना विधि सौं सँभारि रच्यौ,†
चौकस गुननि गस्यौ गूढ़ गाँस खोलना।
राधा-मन‡ मोहन-बिलास को सुखासन है,
दोऊ एक बानक सलोने मिठबोलना।

समास नहीं होती। रीझि० = रीझ को भी रिझाकर। [६३] लाप = सलाप, बातचीत। निसानी = पहचान का चिह्न। [६४] दहेंड़ी = दही की मटकी।

* सरस। † सुवासना बसन सौं सुधारि सज्यौ। ‡ ब्रज।

तनकौ न कहूँ बसौ बस न तनक मेरो,
मन ब्रज-मंडल को उड़न-खटोलना ॥६५॥

सवैया

धुनि पूरि रहै नित कानन मैं अज को उपराजिबोई सी करै।
मनमोहन जोहन गोहन के अभिलाष समाजिबोई सी करै।
घनआनँद तीखियै तानन सौं सर से सुर साजिबोई सी करै।
कित है वह बैरिन बाँसुरिया बिन बाजिबे बाजिबोई सी करै ॥६६॥
आपु ही तै मन हेरि हँसे तिरछे करि नैनन नेह के चाउ मैं।
हाय दई सु बिसारि दई सुधि कैसी करौ सु कहौ कित जाउँ मैं।
मीत सुजान अमीत कहा यह ऐसी न चाहियै प्रीति के भाउ मैं।
मोहन मूरति देखिबे कौं तरसावत हौ बसि एक ही गाउँ मैं ॥६७॥
दृग फेरियै ना अनबोलियै सो सर से ही लगे कित जीजियै जू।
रसनायक दायक हौ रस के सुखदाई ह्वै दुःख न दीजियै जू।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ बिनती मन मानि कै लीजियै जू।
बसि कै इक गाँव मैं एहो दई चित ऐसो कठोर न कीजियै जू ॥६८॥

['शृंगार-संग्रह' से]

तब तौ दुरि दूरहि तैं मुसक्याय बचाय कै और की दीठि हँसे।
दरसाय मनोज की मूरति ऐसी रचाय कै नैननि मैं सरसे।
अब तौ उर माहिं बसाय कै मारत एजू बिसासी कहाँ धौं बसे।
कछु नेह-निबाह न जानत हे तौ सनेह की धार मैं काहें धँसे ॥६९॥

['सुजान-शतक' से]

कबित्त

गुरनि बतायौ राधामोहन हू गायौ सदा,
सुखद सुहायौ बृंदाबन गाढ़े गहि रे।

---

[६५] बिसद = निर्मल। [६६] अज = नाद-ब्रह्म। उप० = उत्पन्न। समा० = संचय। [६७] भाउ = भाव, वृत्ति। [६८] रस = आनंद। [६९] हे = थे।

अद्भुत अभूत महि-मंडन परे तैं परे,
जीवन को लाहु हाहा क्यौं न ताहि लहि रे।
आनँद को घन छायौ रहत निरंतर ही,
सरस सुदेस सौं पपीहापन बहि रे।
जमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी,
पावन पुलिन पै पतित परि रहि रे ॥७०॥

ऊधौ विधि-ईरित भई है भाग-कीरति,
लही रति जसोदा-सुत-पावन-परस की।
गुलम लता ह्वै सीस धर्‍यौ चहैं धूरि जाकी,
कहियै कहा निकाई महिमा सरस की।
झूम्यौई रहत सदा आनँद को घन जहाँ,
चातकी भई है मति माधुरी बरस की।
आँखिन लगी है प्रीति पूरन पगी है अति,
आरति जगी है ब्रजभूमि के दरस की ॥७१॥

विरह-विसूरे पीर-पूरे मन सबन के,
राति-द्यौस भयौ जिन्हैं पलकौ कलन को।
औधि-आस ओसनि सहारैं हाय कैसैं करि,
जिनको दुसह दीसै पारिवो पलन को।
या विधि वियोग ब्रज बावरो भयौ है सब,
बाढ़त उदेग महा अंतर-दलन को।
आनँद-पयोद-के पपीहनि पै छायौ अब,
दीरघ दुसह घाम स्याम के चलन को ॥७२॥

आँखिन को जो सुख निहारे जमुना के होत,
सो सुख बखाने न बनत देखिबेई है।

---

[७०] बहि = वहन कर। [७१] ईरित = घोषित। आरति = लालसा।
[७२] कल = चैन। पारिबो = बिताना। [७३] आदरस = दर्पण। सलाका

गौर स्याम रूप आदरस है दरस जाको,
गुपित प्रकट भावना बिसेखिवेई है।
जुग कूल सरस सलाका दीठि परस ही,
अंजन सिंगार रूप अवरेखिवेई है।
आनँद के घन माधुरी को झर लागि रहैं,
तरल तरंगनि की गति लेखिवेई है ॥७३॥
['मिश्रबंधु-विनोद' से]

सवैया

नेह सों भोय सँजोय-धरी हिय दीप-दसा जु भरी अति आरति।
रूप-उज्यारे अजू ब्रजमोहन सौंहनि आवनि ओर निहारति।
रावरी आरति बावरी लौं घनआनँद भूलि बियोग निवारति।
भावना-थार हुलास के हाथनि यों हित मूरति हेरि उतारति ॥७४॥
['खोज', सन् १९१२]

कवित्त

चलि रे सुबल आजु वाही के बगर काल्हि,
जो ही मेल खाइ घनआनँद सु औसरै।
फरहरे गात मँडरात मोर भाँवरी दै,
छूटे बार मोतिन की द्वै-लरी बनी गरै।
आँचर उलटि सीस डारै कौन जानै क्यौं,
निहारैं तेही होवै त्यौं सुबात मन मैं धरै।
औचक ही कित इत डीठि के परत पीठि,
दैनि देखि नैन ईठि नीठि न कह्यो करै ॥७५॥
['खोज', सन् १९२३]

= अंजन लगाने की सलाई। [७४] नेह = प्रेम ; घृत। भोय = भिंगोकर। सँजोय = जलाकर। दसा = अवस्था ; बत्ती। [७५] बगर = घर। [७६]

सवैया

कीरति की मति की गति की अति की रति-प्रापतिदाइनि देखी।
देवनदी अहियान-पदी महिमान वदी स्रुति साखि विसेखी।
और कहौ कहि कौन सकै घनआनँद यौं उर ही अवरेखी।
तेरेई तीर तिविक्रम, ताकि दया करि दै विदिसा अनिमेखी॥७६॥

कवित्त

नाद को सवाद जानै वापुरो बधिक कहा,
रूप के विधान को बखान कहा सूर सौं।
सरस परस के विलास जड़ जानै कहा,
नीरस निगोड़ो दिन भरै भखि ऊरसौं।
चाह की चटक तैं भयौ न हियैं खौंप जाके,
प्रेमपीर कथा कहै कहा भकभूर सौं।
चाहै प्रान-चातक सुजान घनआनँद कौं,
दैया कहूँ काहू कौं परै न काम कूर सौं॥७७॥
[खोज, सन् १९२९]

सवैया

मन मेरो घनेरो अनेरो भयौ अब कौन के आगे पुकार करौं।
सुखकंद अहो व्रजचंद सुनौ जिय आवति है तुम ही तें लरौं।

अति० = अत्यत प्रेमप्राप्ति की दात्री, अत्यंत प्रिय बना देनेवाली। देवनदी = गगा। अहियान० = शेपशायी विष्णु के पद से उद्भूत। स्रुति = वेद। अवरेखी = विचार किया। तिविक्रम = त्रिविक्रम, वामन का अवतार। विदिसा = विदिशा, एक नदी। पुराणानुसार यह पारियात्र पर्वत से निकली है और वामन ने त्रिविक्रम का रूप यहीं धारण किया था। अनिमेखी = निरंतर। [७७] सूर = अंधा। भरै = काटता है। भखि = खाकर। ऊरसौं = कुरस, स्वादहीन वस्तु को। खौंप = कौंपल, अंकुर। भकभूर = उजड्ड, मूढ़। [७८] अनेरो =

अनमोह भए जन मोहत हौ मनमोहन या बिधि याहि अरौं।
घनआनँद ह्वै दुख-ताप तपावत भावते नावँहिं नावँ धरौं ॥७८॥

कबित्त

गौर भए स्याम गोरी साँवरी ह्वै रही देखौ,
रूप की निकाई आजु औरै पेखियत है।
बदलि परी है प्रीति-रीति परतीति-नीति,
निपट अचंभे की समीति लेखियत है।
देखें भूलियत कछू कहत न आवै सखी,
इनकी हिलग नई नई देखियत है।
चिरजीवौ जोरी घनआनँद बरस यह,
ब्रज बृंदावन ही मैं यौं बिसेखियत है ॥७९॥

['खोज', सन् १९३४]

—

दुष्ट। [७९] समीति = समूह। हिलग = लगन।

आनंदघन

(भक्त कवि)

प्रशस्ति

हरिभक्ति-बेलि-सेचन करी
घनआनँद आनंदघन।
—[नवभक्तमाल से उद्धृत]।

इश्कलता

दोहा

छैल छबीलो साँवरो, गोपवधू-चित-चोर।
'आनँदघन' बंदन करै, जै जै नंदकिसोर ॥ १ ॥

लगा इस्क ब्रजचंद सौं, सुंदर* अधिक अनूप।
तब ही 'इस्कलता' रची, आनँदघन सुखरूप ॥ २ ॥

स्याम सुजान बिना लखैं, लगे बिरह के सूल।
तामैं इस्कलता भई, घन आनँद को मूल ॥ ३ ॥

संयोगी सैं इस्क सैं, इस्क-बियोगी खूब।
आनँदघन चस्मों सदा, लगा रहे महबूब ॥ ४ ॥

बिरह-सूल सौं बारि करि, घन आनँद सौं सीच।
इस्कलता झालरि रही, हिये चमन के बीच ॥ ५ ॥

अरिल्ल

सजन सलोना यार नंद दा सोहना।
रसिक बिहारी छैल सु मनमथ मोहना।

---

[२] इस्क = प्रेम। [४] चस्म = आँख। महबूब = प्रिय। [५] सूल =

* अंधर, अदर।

दिखलाओ मुखचंद सु झाँकी प्यारियाँ।
आनँद-जीवन जान असाडी ज्यारियाँ॥ ६॥

पल पल प्रीति बढ़ाय हुआ बेदर्द है।
आसिक-उर पर जान चलाई कर्द है।
घनी हुई महबूब सु मरम न छोलियै।
आनँद-जीवन जान दया करि बोलियै॥ ७॥

क्यौं चितचोर किसोर हुआ बेपीर है।
भौंह कमानैं तान चलाया तीर है।
अंत कहा हौ लेत नंद के लाड़िले।
आनँदघन के जान सुचित के लाड़िले॥ ८॥

इस्क नहीं यह होय करंदे जोर हौ।
लीना चित्त चुराय अनोखे चोर हौ।
जानी जू दिल-जान कपट की प्रीति है।
आनँद-जीवन जान अटपटी रीति है॥ ९॥

प्यारे प्रीति बढ़ाय लिया चित चोरि कै।
हूठो दै इठलाय चलौ मुख मोरि कै।
रूप-सुधा दरसाय दिया क्यौं जहर है।
आनँद-जीवन जान किया तैं कहर है॥ १०॥

हौ हलधर के वीर चले कित जात हौ।
निठुर कान्ह महबूब सुनिंदे बात हौ।
इत्थे आवत नाहिं सु की तकसीर है।
आनँद-जीवन जान कहर बेपीर है॥ ११॥

= पीड़ा ; काँटा। वारि = काँटे की रोक। [६] दा = का (पुत्र)। सोहना = (शोभन) सुदर। मनमथ = कामदेव। असाडी = हमारी। ज्यारियाँ = जिलानेवाली। [७] कर्द = छुरा। घनी० = बहुत चोट कर चुके। [८] अंत० = मारते क्यों हो। [९] करंदे० = जबर्दस्ती करते हो। [१०] हूठो० = हाथ मटकाकर। कहर = आफत। [११] हलधर० = बलदाऊजी के भाई। सुनिंदे = सुनो। इत्थे =

भरि पिचकारिन रंग सुरंग गुलाल है।
बाजत चंग उपंग झाँझ डफ ताल है।
गावति हैं ब्रजनारि फाग रँगबोरियाँ।
आनँद-जीवन जान सु हो हो होरियाँ ॥ १२ ॥

लावनी

खूबी कहै तुसाडी हो हो हो हो हो हो होरी है।
बूका बंदन अगर कुमकुमा भरै गुलालन झोरी है।
आनँद-रंग घनैं सो भिजवै हाथ लिये पिचकारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी, जिंद असाडी ज्यारी है ॥१३॥

अहो अहो नँद-नंद साँवरे छिन छिन बानिक न्यारी है।
ओढ़ौ जरद दुसाला यारा केसरि की सी क्यारी है।
आनँदघन-हित प्यारे जानी मूरत लगदी प्यारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥१४॥

सजन सनेही यार नंद दे एती क्या मगरूरी है।
दरदवंद दरसन दी खातर बंदी हुकम हजूरी है।
ब्रजमोहन घनआनँद तैंडी निपट अटपटी न्यारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥१५॥

यारा गोकुलचंद सलोने, दिया चस्म दा धक्का है।
ढोरि दिया घनआनँद जानी हुसन सराबी पक्का है।

(अत्र) यहाँ। की = क्या। तकसीर = अपराध, चूक। [१२] चंग = डफ के ढंग का एक बाजा। उपग = जलतरंग। ताल = मँजीरा। [१३] तुसाडी = आपकी। बूका = बुक्का, अभ्रक का चूर्ण। बंदन = सिंदूर। महर = कृपा। दी = की। जिंद = जिंदगी, जीवन। असाडी = हमारी। ज्यारी = जिलानेवाली। [१४] बानिक = मुद्रा। जरद = पीला। लगदी = लगती। [१५] सजन = स्वजन, प्रिय। नंद दे = नंद के पुत्र। मगरूरी = घमंड। दरसन० = दर्शन के लिए। तैंडी = तेरी बात। [१६] चस्म० = आँख की चोट। ढोरि० = पीछे लगा

सैन-कटारी आसिक-उर पर तैं यारा झुक झारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥१६॥

दरदवंद डाला वेदरदी खूब इस्क दा फंदा है।
हंस हंस मन मूसि लिया वे बड़ा गरीव गिरंदा है।
टुक भी तो घनआनँद प्यारे सुनियो अरज हमारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥१७॥

जिगर जान महबूब अमाने को वेदरदी दैंदा है।
पाक दिलाँदे अंदर धँस कर बिना साफ दिल लैंदा है।
आनँदघन हो प्रान-पपीहा निसदिन सुध न विसारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥१८॥

दिलपसंद दिलदार यार तू मुजनूँ की तरसाँदा है।
रात-दिहाडे तलब तुसाडी अकल इलम लडाँदा है।
मैंनूँ ध्यान न आवत जानी तू घन-कुंज-बिहारी है।
महर-लहर ब्रजचद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥१९॥

नंद महर दा कुँवर कन्हैया मैंडा जीवन जानी है।
विसरै नहीं रैनदिन जो से प्यारा प्रीतम प्रानी है।
दीजै यही असानूँ झाँकी आनँदघन गिरधारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥२०॥

रहौ खुसी महबूब नंद दे मनमानै तित जावौ जू।
कहीं कदी घनआनँद जानी इन गलियन भी आवौ जू।

लिया। सैन = इशारा। झुकि० = क्रुद्ध होकर चलाई है। [१७] हंस = हँस-कर। मूसि० = चुरा लिया। वे = रे। गिरंदा = फंदा लगानेवाला, फँसानेवाला। [१८] अमाने = जो किसी की माननेवाला न हो। दैंदा० = देता है। विना० = नापाक, अस्वच्छ। लैंदा० = लेता है। [१९] की = क्या। तरसांदा = तरसाँता है। दिहाडे = दिन। अकल = अक्ल, बुद्धि। इलम = इल्म, यत्न। [२०] महर = गोपों के सरदार। मैंडा = मेरा। असानूँ =

आस लगी अँखियाँ नूँ याराँ दीजै झाँकी प्यारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥२१॥

दोहा

आनँदघन बरसावनो, स्याम सलोनो गात।
आवत धीर-समीर तैं, चल्या पुलिन को जात ॥२२॥

उपमान

इननूँ क्यौं कर गहि सकौं घनआनँद दीया।
मैं तैंडी लटकन फँद्या क्या तुजनूँ कीया।
क्यौं महबूब सुजान तैं औरै क्या कीया।
मैंडा दिल तैंने अबे क्यौं मुसि कै लीया ॥२३॥
चोर लिया चित चाहते घनआनँद जानी।
मैंडा दिल तैं मोहि कै उर औरहि ठानी।
इस्क-सहर के बीच है यह अकह कहानी।
अलकौं सैं बाँधे रहे महबूब गुमानी ॥२४॥
क्या कहियै ब्रजमोहना तू मानै नाहीँ।
तू ही जानैगा अबे अपने दिल माहीँ।
घनआनँद नित दीजियै नहिँ कीजै नाहीँ।
अँखियाँ तैंडी चुभि रहीँ मैंडे दिल माहीँ ॥२५॥

दोहा

आनँद के घन जानि कै, कीनौ तुम सौं हेत।
रूप-सुधा दरसाय कै, कहर-जहर क्यौं देत ॥२६॥
बंसी के बिच मोहनी, मोहन याको नावँ।
आनँदघन निरमोहिया, मोह्यौ सिगरो गावँ ॥२७॥

अरल्ल

कालिंदी के तीर बजी हरि-मुरलिया।
समझि परै नहिँ प्रान अनोखा सुर लिया।

हम को। [२१] कदी = कभी। [२२] धीर-समीर = कुंज विशेष। पुलिन = तट। [२३] इननूँ = इनको। तैंडी = तेरी। फँद्या = फँसा हुआ। तुजनूँ = तुमको। मैंडा = मेरा। अबे = ओ, ऐ। मुसि कै = चुराकर। [२५] मैंडे = मेरे। [२८] सुर = स्वर,

पूरि रही धुनि कान न छाँड़त गैल है।
आनँद-जीवन जान छबीलो छैल है ॥२८॥
बाढ़ी गाढ़ी पीर करेजैं आय कै।
मोहन मन हरि लिया सुबैन बजाय कै।
लागा मैंनूँ तीर इस्क दा खूब है।
आनँद-जीवन जान कान्ह महबूब है ॥२९॥
बीजु-छटा पटपीत घनों तन स्याम है।
इंद्रधनुष बनमाल लाल अभिराम है।
बंसी-धुनि घन-घोर रूप-जल छलमलै।
आनँद-जीवन जान मेघ लौं झलमलै ॥३०॥
दीजै तुजनूँ सीख सलोने साँवरे।
खून करैं ये नैन हुए लड़बावरे।
खूनी कीजै जाय करेजैं घाव है।
आनँद-जीवन जान न आन बचाव है ॥३१॥

दोहा

बरसै आनँदघन अनत, इत नित नित ही छाय।
प्रान-पपीहा की दसा, कहै कौन अब जाय ॥३२॥
आनँद के घन तुम बिना, हीतल नेही दीन।
पल हू कल नहिँ परत है, जैसे जल बिनु मीन ॥३३॥

उपमान

आनँद के घन तुम बिना, मुजनूँ नहिं भावै।
नयन असाडे लाग तैं तुम ही नूँ धावै।

ध्वनि। [२९] बैन = वेणु, बाँसुरी। मैंनूँ = मुझको। दा = का। [३०] बीजु = विद्युत्, बिजली। घनों = बादलों सा। बनमाल = घुटनों या पैरों तक लंबी माला। घोर = ध्वनि, गर्जन। रूप = सौंदर्य। छलमलै = छलकता है। [३१] लड़बावरे = सिरचढ़े, दुलरुए। [३२] अनत = अन्यत्र। [३३] हीतल० = प्रेमी हृदय। [३४] मुजनूँ = मुझको। असाडे = हमारे। तुम ही नूँ = तुम्हारी

हुन क्या कीजे लाड़िले बेषन नहिँ पावै।
जुलम करैँ जे बावरे तुजनूँ तरसावै ॥ ३४ ॥
तैँडे मुख पर तिल अबे अति खून करंदा।
अलकैँ तैँडी यौँ छुटी ह्वै नागिन लसँदा।
तिलक बीच छापे अबे दिल का है फंदा।
चंदागोबिँद सु नँद दे घन आनँद-कंदा ॥ ३५ ॥

दोहा

आनँदघन हित पोखि कै, पाले प्रान अमीन।
ते ही अब बिललात या, जैसे जल बिनु मीन ॥ ३६ ॥

लावनी

दे गिरंद गिरँदा हूआ वे जिद असाडी छीनी है।
छिप छिप कर मुखड़ा दिखला वे रीति अनोखी लीनी है।
मगजदार महबूब करंदा खूब मजे दी यारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिद असाडी ज्यारी है ॥ ३७ ॥
अहो अहो घनआनँद जानी जित्थूँ तित्थूँ जाँदा है।
बेपरवाही जाहर कर कर चस्माँ नूँ चमकाँदा है।
नोक नजर टुक करदा नाहीँ की तकसीर हमारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिद असाडी ज्यारी है ॥ ३८ ॥
ब्रजमोहन घनआनँद जानी जद चश्माँ विच आया है।
इस्क सरावी कीया मुजनूँ गहरा नसा पिलाया है।
तन मन और जिहान माल दी सुधि बुधि सबै बिसारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिद असाडी ज्यारी है ॥ ३९ ॥

ही ओर। हुन = अब। [३५] करंदा = करता है। लसंदा = सुशोभित हैं। नँद दे = नँद के पुत्र (गोविंदचंद्र)। [३६] अमीन = अमृतोँ से। [३७] गिरंद = फंदा। गिरंदा = बंधन लगानेवाला। जिद = जिंदगी, प्राण। असाडी = हमारी। मगजदार = बुद्धिमान्। [३८] जित्थूँ० = जहाँ तहाँ जाता है। चस्माँ नूँ० = आँखोँ को चमकाता है। नोक = अनी, कोना। करदा० = करता नहीँ। की० = हमारा अपराध क्या है। [३९] जद = जब। चश्माँ = नेत्रोँ के बीच। इश्क० =

हीन भए जल मीन छीन बुधि मैंडी पीर न पावै है।
लाय कलंक यार अपने को तेही छिन मर जावै है।
आनँदघन इस दिल दी वेदन लहै सुजान-विहारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी न्यारी ॥ ४० ॥

दोहा

आनँद के घन छैल की, छवि निरखै धरि ध्यान।
'इस्कलता' के अरथ कौं, समुझै चतुर सुजान ॥ ४१ ॥
आनँद के घन छैल सौं, करि ले, चित को चाव।
'इस्कलता' जौ चाहियै, तौ वृंदावन आव ॥ ४२ ॥
'इस्कलता' ब्रजचंद की, जो बाँचे दै चित्त।
वृंदावन सुखधाम सो, लहौ नित्त ही नित्त ॥ ४३ ॥

यमुना-यश

चौपाई

जमुना को जस बरन्यौ चाहौं। अति अगाध कैसैं अवगाहौं।
जमुना कहैं रसवती बानी। होति मधुर रसनिधि की रानी ॥१॥

जाके तीर रसिक रसरंगी। बसत लसत गोपाल त्रिभंगी।
जमुना को रस कहत न आवै। नित-बिहार-रस-पारस पावै ॥२॥

जो रस अगम अगोचर महा। सो याके तट प्रगटित अहा।
या जमुना की भाग-निकाई। मति अति रीझि बिचारि बिकाई ॥३॥

महा रसवती राधापति की। पूरन-प्रेम-तरँग नित तकी।
श्रीजुत अंगराग की धारा। जमुना-रूप अनूप अपारा ॥४॥

सबिता पिता उजागर यातैं। कृस्नचंद सुख पावत न्हातैं।
विबिध केलि सुख-बेलि बढ़ावै। बनमाली कौं निपटै भावै ॥५॥

जमुना बृंदाबन की सोभा। नितनित प्रगटि करति हित-गोभा।
कुंजनि. पुंज तरंगनि तोपै। कुंज-रवन कौं बहु बिधि-पोषै ॥६॥

जमुना पाथ हेत की खानि। कौन सकै पामर नहिँ जानि।
गुपत प्रगट रस जमुना जानै। जमुना को हित को पहचानै ॥७॥

घूमति फिरति भरति भाँवरी। नित संगम-रंगति साँवरी।
गौर बरन राधा को गोय। स्याम-रंग मैं धर्यौ समोय ॥८॥

राधा को रस जमुना जानै। भानु-नंदिनी नातो मानै।
जमुना-हृदै रहति नित राधा। जमुना लखैं टरति भ्रम-बाधा ॥९॥

---

[६] गोभा = अंकुर। [७] हेत = हित, कल्याण। [९] भानुनंदिनी = भानु (सूर्य) की पुत्री, (यमुना); (वृष-) भानु की पुत्री (राधा)।

सुख-सेवा साधिवो करति है। राधा-धव के रसहि ढरति है।
यह जमुना को मरमु कह्यौ है। जमुना ही की कृपा लह्यौ है ॥१०॥

या जमुना कौं हौं ही गाऊँ। या जमुना को सुदरस पाऊँ।
या जमुना मैं नित ही न्हाऊँ। या जमुना तजि कहूँ न जाऊँ ॥११॥

यह जमुना मेरी सुखदायनि। याकी लहरि भर्यौ चित चायनि।
उफनत स्याम-रसामृत-सिंधु। विविध भाव वर पूषन-बंधु ॥१२॥

या जमुना को मोहि प्रसाद। रसनैं जमुना-सुजस-सँवाद।
ऐसी जमुना मोकौं चहिये। जमुना-कृपा कहाँ लौं कहिये ॥१३॥

जमुना के तट फूल्यौ फिरौं। हेरि तरंगनि रंगनि हिरौं।
जमुना लीला रंग दिखावै। परम प्रीति की रीति सिखावै ॥१४॥

यह जमुना जीवति है मेरी। जमुना सी जमुना ही हेरी।
ऐसइ या जमुना हौं देखौं। नित नित नैननि भाग विसेखौं ॥१५॥

जमुना-महिमा वेद बखानैं। सप्तसिंधु-मेदिनि जग जानैं।
जमुना जा करुना-रस-रैनी। दरस-परस पूरन-पद-दैनी ॥१६॥

जमुना देखि न देखै जम कौं। भानकुवरि मेटति दुख-तम कौं।
जमुना-जलहि सहज ह्वै पियैं। तव दव-ताप न व्यापति हियैं ॥१७॥

जमुना देखत ही हरि दरसैं। स्याम रूप आनंदनि वरसैं।
वहुत भाँति महिमा जमुना की। कहि न सकति न सकति रसना की१८

गोकुल-घाट पियौ जिन पानी। जमुना-रस-महिमा तिन जानी।
जमुना-तीर बसत बलबीर। गोचारन-सुख बिलसत तीर ॥१९॥

स्याम-सरीर गुननि गंभीर। जमुन-तीर विहरत बलबीर।
कुँवर कान्ह जमुना मैं न्हात। मसरत सुभग साँवरे गात ॥२०॥

---

[१०] राधा-धव = राधा के पति, श्रीकृष्ण। [१२] पूषन० = सूर्य का बंधु चद्रमा। [१३] रसनैं = रसना को, जीभ को। [१४] रगनि = आनद मैं। हिरौं = खो जाता हूँ। [१७] दव = दावाग्नि। [१८] न सकति = नहीं सकती।

कहा कहौं जमुना को भाग। अंग-रंग पूरन रस-पाग।
पैरत जमुना अपने रंग। कान्ह कौतुकी ग्वारनि संग ॥२१॥
बिविधि कलोल केलि बिस्तारत। जमुना सौं पूरन पन पारत।
यह जमुना रस-रास खिलावै। पुलिन सुमंडल रुचिर रचावै ॥२२॥
स्रमित जानि ब्रजमोहन धीर। जमुना सीतल सजति समीर।
बहुत भाँति जमुना सुख देति। उमँग-भरी हित-लहरैं लेति ॥२३॥
महल टहल की चहल-पहल है। जमुना लहरनि भरी लहलहै।
जमुना बिहरत बैठि सहेसनि। सगन स्यामसुंदर सजि बेसनि ॥२४॥
जमुना बिबिधि कलोलनि ठानति। टहल रीति जमुनाई जानति।
यह जमुना जु भरी जजमानि। दंपति-सुख-संपति की दानि ॥२५॥
मधुर-केलि-चिंतामनि जमुना। रटि जमुना जटि राखी रसना।
जमुना दई रसवती वानी। तब जमुना-रस-रीति बखानी ॥२६॥
जमुना जमुना जमुना कहौं। धीर-समीर-तीर बसि रहौं।
जमुना मोकौं सब कछु दियौ। दरसि परसि सरसान्यौ हियौ ॥२७॥
जमुना नावँ जगत-उजियारो। रसिक जननि कौं अति ही प्यारो।
जो जन जमुना को रस चाखै। सो नित जमुना जमुना भाखै ॥२८॥
जमुना चाहि चैन चित होत। उमगि चलत लीला-रस-सोत।
जमुना कहत जीभ जगि परै। कृस्नचरित-लीला-रस ढरै ॥२९॥
जमुना बहत कृस्न ढरि आवै। रस ही रस निज दरस दिखावै।
जमुना ढरैं ढरत ब्रजनाथ। बहुरि जानि कै गहत सुहाथ ॥३०॥

सकति = शक्ति। [२०] मसरत = मसलते हैं, रगड़ते हैं। [२४] टहल = काम-धंधा। सहेसनि = सहर्ष; मिलाइए 'सूर' की पंक्ति—'किधौं वहि देस बाल नहिं फूलति गावत गीत सहेसनि।'—भ्रमरगीत, २८०। सगन = मंडली-सहित। [२५] टहल = सेवा। भरी = भरी-पूरी, संपन्न। जजमानि = यजमान का स्त्रीलिंग रूप, दानशीला। [२६] जटि० = जड़ रखा है। [२७]

ऐसो जमुना को प्रताप-बल। और कहा यातें उत्तम फल।
जमुना को फल जमुना न्हैयै। नित ही जमुना जमुना गैयै ॥३१॥
जमुना जाचें जमुना पैयै। मन वच करि जमुनाई ध्येयै।
जमुना सब स्वारथ-भंडारिनि। जमुना परमारथ-बिस्तारिनि ॥३२॥
जमुना है मगल की माला। जमुना देखी दीन-दयाला।
जमुना जो कछु मो पर ढरी। पावन पैज प्रगट है करी ॥३३॥
जमुना सुकृत कहाँ लौं बरनौं। पालै पोखै राखै सरनौं।
जमुना सुख-समाज दरसावै। नीरस मनहिं परसि सरसावै ॥३४॥
कृस्न-तरंगिनि यातें कहियै। जमुना देखि कृस्न उर गहियै।
जमुना तें निरवधि रस लहियै। जमुना चहियै जमुना चहियै ॥३५॥
जाके मन जमुना को पन है। रती अतुल को पूरो मन है।
जमुना जमुना जमुना एक। जमुनाई सौं निवहौ टेक ॥३६॥
वृंदावन जिहिं जमुना-कूल। यह नित ही मोकौं अनुकूल।
जमुना-तट बनराज निकेत। सदा स्याम को निज संकेत ॥३७॥
यह-जमुना यह बन मेरो धन। या जमुना सौं ही मेरो पन।
यह जमुना यह बन यह पन है। यह जमुना बन मान्यौ मन है ॥३८॥
जमुना वन पन मन मैं बसौ। रसना जमुना के रस रसौ।
स्रवन सदा जमुना-जस सुनौ। मति जमुना-कीरति-गुन गुनौ ॥३९॥
जमुना-वचन मौन मैं रचौ। मन जमुना-चिंतन मैं खचौ।
जमुना सुंदर लोचन देखैं। सजौ सिंगार सुअंजन रेखैं ॥४०॥
राधा मोहन-सहचरि दरसौ। जमुना दरसि केलि-सुख सरसौ।
जमुना को आनद अमोघ। गोपीजन-वल्लभ रस-ओघ ॥४१॥
मो पर ढरौ भरौ रस-रंगनि। निरखत जमुना रुचिर तरंगनि।

धीर० = कुज विशेष, मिलाइए—'धीरसमीरे यमुनातीरे।'—गीतगोविंद। [३३] पैज = प्रतिज्ञा। [३४] सरनौं = शरण में भी। [४१] ओघ = प्रवाह,

निरवधि रस की रासि रसीली। हित-कादंबिनि नित बरसीली ॥४२॥

प्रगट पुहमि अचरजमय देखी। जमुना-कीरति-कला बिसेखी।
जमुना को मंगल जस गायौ। रसना निज सवाद-फल पायौ ॥४३॥

जमुना-जस जैसैं मन भायौ। जमुना ही अपढार कहायौ।
जमुना-रस-जस ऐसैं कह्यौ। बानी निज परमारथ लह्यौ ॥४४॥

जमुना-जस कौं जियरा तरस्यौ। जमुना-कृपा-सुरस उर सरस्यौ।
तब कछु जमुना-मरमहि परस्यौ। बानी ह्वै आनँदघन बरस्यौ ॥४५॥

दोहा

जमुना-जस बरन्यौ बिसद, निरवधि रस को मूल।
जुगल-केलि-अनुकूल है, बसिबो जमुना-कूल ॥४६॥

बाढ। [४२] कादंबिनि = मेघमाला। [४४] अपढार = औढर, मनमौजी।

पदावली

विनय]　　　　　　　(१)　　　　　　[राग भैरव, चौताल

ए　जगतारन　करुनासिंधु　उदार
　　　　दीन　असँभारन　लेत　सँभार।
अधम-उधारन　बहु-बिधि-सुख-बिस्तारन
　　　　स्वामि दयाल परिपूरन　पारन　व्रतधार।
अघ-बारन-कंठीरव　दारुन　दुख-दल-
　　　　बिदारन गुन अपारन को सकत बिचार।
आनँदघन-रस-धारन सकल-सँताप-निवारन
　　　　घमड़ि　बिराजौ　प्रान-पपीहनि-पार॥

याचना]　　　　　　　(२)

अब मेरो स्वारथ हू परमारथ तिहारे है हो हरि हाथ।
तुम ही तें तुम कौं जाचति हौं देहु दया करि नाथ सब सुख साथ।
गाय गाय ज्यौं त्यौं जीवत हौं रावरे बिसद बिरुद गुन-गाथ।
प्रान-पपीहन के आनँदघन, मीन-दीपन पाथ॥

युगल-केलि]　　　　　　(३)

प्रात उठे री स्यामा-स्याम कुंज तें निसि-बिलास-अरसाने।
मंद मंद गति अति रति-पागे जागे चोपनि परम प्रेम-सरसाने।
अंगनि दुति द्रुम-बेलिनि फैलति सुंदर मुख सुखमय दरसाने।
गोरि-स्याम　आनँदघन दामिनि　देखत　नैन　सिराने।
　　　　जमुना-तीर भूमि भूमि बरसाने॥

---

[१] बारन = हाथी। कंठीरव = सिंह। पार = पालनेवाले। [२] दीपन =

गुण-गान]　　　　　　　(४)　　　　　　　[इकताल

गुपाल तेरेई गुन गाऊँ।
करहु निरंतर कृपा कृपानिधि बिनती करि सिर नाऊँ।
टरै न मोहन मूरति हिय तैं देखि देखि सुख पाऊँ।
आनँदघन ह्वौ बरसि सिरैयै प्रान-पपीहा ज्याऊँ॥

कृपा-याचना]　　　　　　　(५)　　　　　　　[चौताल

अपार-गुन-ग्राम हौं कहा गाऊँ।
तीरहि गएँ थकित मति गति होति, तुम लौं कहौं धौं हौं क्यौं करि आऊँ।
अमित चरित की तरल तरंगनि विसमय बूड़ि न ठिक ठहराऊँ।
है उपाय मो हित-बोहित आनँदघन सुदृढ़ कृपा जौ पाऊँ॥

गोवर्धन-पूजन]　　　　　　　(६)　　　　　　　[झपताल

गिरिराज दाहिनो देत आनंद सौं नंद वृषभानु परिकर-सहित देखौ।
बाल-गोपाल-गोधन-कुसल-छेम-हित नित लहत यहि पूजि सब लेखौ।
कान्ह कुल-मंडन थप्यौ उथपि अमरपति प्रगट दरस्यौ देवगिरिवर सुबेखौ
आनँदघन नँदनंदन उदार की लीला ललित अमित अद्भुत विसेखौ॥

उपालंभ]　　　　　　　(७)　　　　　　　[तालजात्रा.

आनु रे मोरी प्रीति लगी है।
कल न परति घरि पल छिन बिन देखैं प्यारे।
कठिन कठिन बीतत दिन गिनत रैनि तारे।
कहा कहियै पिय तुम सौं बसत हिय-मझारे।
आनँदघन चातिक-जन क्यौं बध्यौ बिसारे॥

खंडिता]　　　　　　　(८)　　　　　　　[मूलताल

आए जू आए भोर, भलेई।
रसिक रँगीले छबीले मया करि सब निसि
जागे दृग अनुरागे पागे-रंग-तमोर।

जिलानेवाले। पाथ = जल। [५] हित० = कल्याणरूपी जहाज। [६] गिरिराज = गोवर्धन। परिकर = मंडली। [८] तमोर = तांबूल। बिजन =

बैठो जू बैठो बिजन डुलाऊँ स्रमित भए नए जुगुलकिसोर।
आनँदघन रस बरसि सिराए छाए हैं इहिं ओर॥

विरहिणी] (६)

जीयरा मैं क्यौं समझाऊँ।
क्यौं समझाऊं क्यौं वहिराऊँ क्यौं परचाऊँ।
रूप-उज्यारे अँखियन तारे ब्रजमोहन देखे बिन हाहा।
उठि उठि धावै ठौर न पावै गहि गहि ल्याऊँ फिर मुरझावै।
दैया री यह पीर निगोड़ी निपट सतावै कहाँ दुराऊँ।
मेरे मन की कोउ न पावै जैसें हौं दिनरैन बिताऊँ।
प्रान-पपीहन की यह वेदनि आनँदघन बिन काहि सुनाऊँ॥

वेणु-नाद] (१०) [तालजात्रा

आव रे जिय-ज्यावन प्यारे, अँखियाँ भई हैं दरस-पियासी।
हियो उमग्यौ है रहत न रोक्यौ साँवरे ब्रजचंद हहा रे।
जब तें सुनी है मोहन मुरलिया, तरफरात ये प्रान बिचारे।
अपने पपीहनि ज्याय लीजियै आनँदघन रस राखि सुखारे॥

विरह-संदेश] (११)

निमानिया तुझ बिना असी कुइयाँ।
दरस दिखावीं आनि जिवावीं नतर ईबी मुइयाँ॥

खडिता] (१२) [मूलताल

रसमसे लाल तिहारे नैन कहत ये निसि जगिबे के चैन।
भली करी भोर हीं भाग-राग-भरे हमैं आप सुखदैन।

(व्यजन) पंखा। [११] निमानिया० = मर्यादा न माननेवाला, अमानी। असी = हम। कुइयाँ = कुईं, कुमुदिनी। नतर = नहीं तो। [१२] रसमसे = रस-

सौहँ न देखि सकति डीठि-डर नखसिख बने नवल छवि-ऐन।
आनँदघन प्राननि पोखत हौ बोलि अमीनिधि बैन॥

विरह-व्यथा] (१३) [इकताल

प्रान मेरे तुम संग लागि रहे ब्रजमोहन।
इतने पै घर ही मैं जीवति ए अपराधी तजत न गोहन।
सब बिधि तुम्हैं सुखी चाहति है स्याम सुजान सुभाय की सोहन।
अपने पपीहनि राखि लीजियै आनँदघन पिय बिरह-बिछोहन॥

विरुद-रक्षा] (१४) [झपताल

बिरुदै सुमिरि बेसँभारनि सँभारौ।
अकारन-करुन, कहा करनी निहारौ।
सुकृती कुसल ह्वै मिलौं तुमहिं तौ कहौ या बिधि कृपानिधि पलै पन तिहारौ।
संकटहरन प्रभु प्रभाव कित दुरि रह्यौ दलमलत दीन यह प्रबल मतवारौ।
ताप-आतप तलफि बिलखि मुरझात जन नाम आनदघन कौन हित धारौ॥

यमुना-प्रशस्ति] (१५) [तालजात्रा

तरनितनूजा तोहि तकौं।
चंचलता तजि भजि नँदलालै मन करि तेरे तीर थकौं।
धीर-समीर सुदेस ठावँ ठिक ठहरि भला बिधि पनहिं पकौं।
सावकास ह्वै घनी घुटनि तें बिसद पुलिन मँडराय सकौं।
सरस सिँगार सुदेस स्याम कौं लखि चखि मादिक-रूप छकौं।
निरवधि रस की रासि रसीली तरल तरंगनि संग बकौं।
उघरि परौं अनुराग-उमँग मैं नाद-बिबस मरजाद ढकौं।
व्रज-नवबधू-बिमोहन लीला लटकि एक टक टेक टकौं।
एरी कुँवरि कलिंदनंदनी बिनती बिरचि बिचारि चकौं।
महिमा अमित कृपा आनँदघन चोपनि चातक जलपि जकौं।

युक्त। [१३] गोहन = साथ। सोह = शपथ। [१४] हित = लिए। [१५] सावकास० = छूटकर। मादिक० = सौंदर्यरूप मदिरा। ढकौं = धारण करूँ।

वृंदावन-प्रशस्ति] (१६) [झपताल

सकल-सुषमा-सदन वनराज राजै ।
राधिका-मदनमोहन-निवासित सदा अति मधुर केलि-हित संपदा साजै।
तरनितनया तीर जगमगत जोतिमय पुहमि पै प्रगट सब लोक-सिरताजै।
अद्भुत अनूप आनंदघन-रसरूप महामंगलकरन पूरन-कला जै।

ब्रज-प्रशस्ति] (१७) [मूलताल

मंगल आरती ब्रज मंगल की करियै मंगल रूप निहारि।
मंगल ब्रज, मंगल वृंदावन, मंगलदायक जमुना-वारि।
मंगल गोपी-गोप धेनु-हित गिरि गोधन मंगल-विस्तारि।
मंगल मुरली धुनि आनँदघन मंगल गुन लीला उर धारि॥

नारद-स्तुति] (१८)

रिषि मुनि-सत्तम, सब बिधि उत्तम, हरि-हित-हारद नमो नमो।
पर-उपकारक गुह्यक-तारक रस-आसारद नमो नमो।
प्रेम-प्रकासक भ्रम-तम-नासक मुख ससि सारद नमो नमो।
भवनिधि-पारद गान-बिसारद जय जय नारद नमो नमो॥

रूप-माधुरी] (१९) [आड़ो चौताल

नित आइवे की गैल।
रहत गाहत गहत वहियै सब समै ब्रज-छैल।
लखी बारक कोऊ निकसत वदन आभा फैल।
चाँपि चोप चकोर की, चख भए रूप-अरैल।
अब कहा सोचति सखी सुनि मची आरति-रेल।

जल्पि० = बकते हुए धुन में लग जाऊँ। [१६] वनराज = वृंदावन। निवासित = बसा हुआ। [१७] गिरि० = गोवर्धन पर्वत। [१८] हरि० = विष्णु के हार्दिक प्रिय। हारद = (हार्द) हार्दिक। गुह्यक = एक प्रकार के देवता। आसार = वृष्टि। आसारद = वर्षक। सारद = शारदीय। भव० = संसार-सागर से पार करनेवाले। [१९] अरैल = अड़नेवाले। ऐल = अधिकता।

मुरलिका कल विकल धुनि की, जाति समझि हठैल।
उघरि मिलि आनंदघन सौं कौन की सु दबैल॥

दानलीला] (२०) [रामकली, इकताल

गोरस जौ चाहै तौ दीजियै जौ रस चाहै सोऽव दियौ क्यौं जाय।
देखि बिरानी धरोहरि पै मन बहकावै ऐसो ढीठ न कान्ह सकाय।
औरनि लौं मो हूँ सौं उरझत नित-नित कैसैं निबहियै हाय।
आनँदघन रसबादनि घमड्यौ कोऊ काहू दिन देहिंगी समझाय॥

(२१) [मूलताल

बहुत दिनन को दान दुरायौ लैहौं गहि गनि एकौ झूठ न भाखौंगो।
व्रज मोहन दानी सब जानत साँची सौंहनि साखौंगो।
आनँदघन रस रिझै भिजैहौं तब सब दैहै जोइ जोई अभिलाखौंगो॥

(२२)

डगर न छाड़ै मेरी लँगर कन्हैया।
आनि अचानक घेरि लेत है कैसैं बचौं अकेली हौं दैया।
हौं सकुचौं वह ढीठ न मानत निडर निपट रसदान-लिवैया।
आनँदघन घुरि लाजनि भिजवै ऐसे हैं गोकुल के रहवैया॥

(२३) [तालजात्रा

रहौ जू रहौ गहौ आपनी गैल भए रसिया दान के।
ओटपाव के दाव चाव रचि घेरत हौ अबलानि आनि भरे जोबन गुमान के।
बढ़ि बढ़ि बोलत एड़े डोलत लोभी हौ रसपान के।
आनँदघन रसबादनि उनए मिस ही मिस ढिग ढूके आवत गिधए आन के॥

खंडिता] (२४) [रूपताल

भुरहरैंई कान्ह कहौ कित भूले।
रैन-रसमसे नैन विराजत मनौं कोकनद फूले।

---

[२१] रिझै = रिझाकर। [२२] लँगर = शरारती, नटखट। [२३] ओटपाव = शरारत। गिधए = परचाए हुए। [२४] भुरहरैंई = बड़े तड़के। धुरवा =

रुचिर अधर मसि-रेख रही लसि अति रति-रस अनुकूले।
आनँदघन घुरि घमड़ि सजल भए अलकनि धुरवा झूले॥

(२५)

अहो हरि, आए महा हरबर मैं कहा बनि आवै टहल दरबर मैं।
साधु-सिरोमनि धरमहिं साधन धोखैं धँसे परघर मैं।
सजल सिथिल सब अंग देखियत पैरे निपट मनोरथ-सर मैं।
द्वैजचंद की पाति प्रगट उर आनँदघन रस-झर मैं॥

विरह-सँदेश] (२६) [मूलताल

रूप-उज्यारे अँखियन तारे ब्रजमोहन प्रानन के प्यारे तुमसौं कहा कहियै।
तिहारी औसेरनि कैसैं सहियै मनहिं मसोसनि गहियै रहियै।
तुमहिँ न सोच कछू काहू को जाहि लगी जानति है वहियै।
आनँदघन पिय बरसि सरसि तब अब यौं दुसह परेखनि दहियै॥

उपालंभ] (२७) [तालजात्रा

तुम्हैं काहू की कछू कहा, अजू भए कान्ह कठोर महा।
नेह-कनावड़ नेकु नहीँ कहुं अपनी गौं के अहा।
बस करि देत बिसारि बिसासी लेत फिरत नित नए लहा।
आनँदघन इन प्रान-पपीहन की गति कौन हहा॥

विरह-व्यथा] (२८) [रामकली, तालजात्रा

ब्रजबासी कान्ह हौ हो कबहुँ तौ सुधि दीजै।
लागी रहै औसेर घरी घरी खरी कठिन परी हरी हरी जियरा क्यौं धीजै।
दुसह परेखनि कैसैं मन समझैयै हा हा कहौ तुमहिं कहा कीजै।
आनँदघन पिय अचरज-झर बरसौ कोऊ सूखै कोऊ भीजै॥

बादलों के स्तंभ। [२५] हरबर = हड़बड़ी। दरबर = उतावली। द्वैज० = द्वितीया का चंद्रमा; नखक्षत। [२६] औसेरनि = प्रतीक्षाजन्य दुःख। परेखनि = पछतावों से। [२७] नेह० = प्रेम का दबाव माननेवाले। बिसासी = विश्वास-

राधा-विलासी] (२६)

कान्ह राधा-रंग-विलासी।
गोकुल-जीवन प्रान-छबीलो गिरि-गोवरधन-वासी।
जमुना-तीर-बिहारी मोहन कुंज-कुटीर-निवासी।
आनँदघन ब्रजमडल-मंडन बट-संकेत-उपासी॥

प्रेम-पीड़ा] (३०) [मूलताल

तिहारी पीर है प्यारे तुम हूँ तें अति प्यारी।
पूरि रही है पिरौं हैं हिय मैं होति न कबहूँ न्यारी।
याको दुख सुख कहियै कासौं अकथ कथा अरु रसना विचारी।
आनँदघन पिय याकों घमड़नि दुरति न जात उघारी॥

खंडिता] (३१)

छाड़ौ जू तुम छाड़ौ मेरी बाँहा।
भोर भएँ रसबाद करन कित आए मो सौं हाहा।
आनँदघन घुरि कितहूँ बरसे, उघरि अब इतहूँ सरसे काँहा।
तहीं जाउ जहाँ पायौ है नयो लाहा॥

(३२) [आड़ो चौताल

गोरे वदन बिथुरे केस।
रैन जागे मैन-पागे नैन अरुन सुदेस।
मृदु कपोलनि पीक लाकें भाल स्रमकन-लेस।
मुदित आनन-कांति पर बलि करौं नव राकेस।
अंग-अंग प्रति भीर छवि की, बनौ सहज सुवेस।
निरखि दुति आनंदघन-दग भयौ चैन बिसेस॥

यमुना-स्तुति] (३३)

सविता-नंदनी सुख देति।
कृपा-रस-पूरन सदाई उमगि लहरें लेति।

घाती। लहा = लाभ। [२८] धीजै = धैर्य धरे। [३०] पिरौं हैं = पीड़ा सहनेवाले। [३२] राकेस = पूर्णिमा का चंद्रमा। [३३] रमेति = धारण

स्याम-सुंदर-रंग-संगिनि अंगराग रमेति।
नीर-महिमा माधुरी को बदति बानी नेति।
तीर-भूमि निहारि हिय तें जाति भँडता चेति।
द्रवत आनँदघन निरंतर परत नाहिँन छेति॥

(३४) [झपताल

कृपा-कादविनी जमुना विराजै।
मोह-मंडित दरस, प्रेम-पूरित परस,
स्यामरस बिमल जस-संपदा साजै।
अद्भुत अभूत भूतल लसति बसति
नित द्वैतमय नाम के लेत भ्रम भाजै।
आनँदघन घमड़ि तीर बिहरत रमड़ि
व्रजबधू बसकरन वंसिका गाजै॥

वाणी-महिमा] (३५)

सुरसरित-हरिचरित-मज्जित सुबानी।
महा मोहन-मधुर-रस-बलित ललित अति
सुखद सुछंद सुचि काव्यकुल रानी।
वदन सुषमा-सदन दरस, महिमा वरस,
परस सर्वार्थदायक महत मानी।
व्रजरमनि-रमन-आनंदघन-चातकी
बिसद अद्भुत अखंडित जगत जानी॥

खंडिता] (३६) [मूलताल

हाँ जी हो जी व्रजराज कँवार अमलाँरा माता आया जी मन भाया।
म्हाँने थारी ओलू सतावै, थे ओठै बिलमाया।
अधराँ अंजन, माथै अलतौ लाग्या छै खरा सुहाया।
सगली रैन आनँदघन वरस्या मगड़ै, ह्याँ पर छाया।

करती है। वदति० = अनिर्वचनीय है। भँडता० = बुरी चेतना। छेति = (छिद्र) रुकावट। [३४] रमड़ि = रमण करते हुए, मन रमाते हुए। [३६] कँवार =

अभिलाष] (३७) [चौताल

सुदिन ह्वैहै जाहि भेटिहौं स्याम।
तन की तपति विपति हरि जैहै पैहै मन बिसराम।
बहुत भाँति के सुखनि सौं चिहैं रसमूरति ब्रजजीवन नाम।
आनँदघन हित-रमड़-घमड़ सौं हरिहैं बिरहा-घाम॥

वेणुवादन] (३८)

बरजि री बरजि अनोखे छैल कौं मेरे द्वार मुरली न आनि बजावैं।
हौं सुनि सिथिल होति इत घर मैं उत बाहिर सब लोग चवाव चलावैं।
जिय की दसा जौ जीऊ जानै तौ इन बातनि मैं कहा पावैं।
चातुर ह्वै आतुर आनँदघन छाए पराए, प्रान-पपीहनि तावैं॥

(३९)

बंसी बाजि बाजि घर घालै।
घरबसी सौं कोऊ बोलै न चालै।
ब्रजमोहन की अधर-सुधा लै देति सौति के साल।
जाकी बनि आवै सो गावै रस-बस ह्वै छिन छाड़ै न लालै।
आनँदघन गरजै सो लेखै परम प्रीति-पन पालै॥

वियोग व्यथा] (४०) [रूपताल

ढरकि ढिग आवौ लाल ढरारे मोहन स्याम उज्यारे।
दूर भजैंऊ भजति भाव तें क्यौं हित बोल बिसारे।
मन उरझ्यो ह्वो सुनि सुनि गुनि गुनि मोहन गुननि तिहारे।
अब आनँदघन सुरस सौं चियै चातक-प्रान बिचारे॥

कुमार। अमलाँरा० = नशे से मतवाला। ओलू = विरहजन्य स्मृति। ओठै = वहाँ। अलतौ = (अलता) महावर। सगली = सारी। मगड़ै० = मार्ग मैं। [३७] जाहि = जिस दिन। हित = प्रेम। [३८] छाए० = दूसरे के यहाँ छाए हैं। तावैं = संतप्त कर रहे हैं। [३९] घरबसी = रखेली। सो = वह (राधा या गोपी)। [४०] ढरारे = द्रवीभूत होनेवाले। [४१] रचन = रचना।

सर्वस्व-समर्पण] (४१) [रूपताल

देवी पूजि पूजि वर पायौ।
चीर-चोर चित-चोर और को सरवस दै अपनायौ।
कों समझै यह प्रेम-नेम-गति पूरन पन दरसायौ।
रसमय बचन-रचन आसा-बल उर आनँदघन छायौ॥

उपालंभ] (४२) [तालजात्रा

जमुना-तीर की बातें।
सालति हैं हियें स्याम उज्यारे सरद की रातें।
को जानत हो ऐसें करौगे व्रजमोहन घातें।
आनँदघन रस-रीझनि भीजे कहियत है यातें।

श्रीकृष्ण-चरण-चिह्न] (४३) [झपताल

नंदनंदन चरन वंदन करौं हौं।
राधिका नव-उरज - राग - रंजित ललित
अति संवलित क्यौं कमल सरवरौं हौं।
रुचिर दछिन सु अँगुठा मूल कूल क्रम
जव चक्र छत्र लखि चख सुख भरौं हौं।
अरध पद लौं सुभग तर्जनी-संधि तें
सूछम सुरेख कुंचित चित धरौं हौं।
मध्यमा-तर मंजु कंज सपताका धुज
दृग-अलि तहीं हिय कहत फरहरौं हौं।
छिंगुनी तरें चारु अंकुस कुलिस लसत
मन-गज-गर वर गिरिथकनि अनुसरौं हौं।
मंगल-सदन चारु साथिये तिन तरें जुत
जंबु फल चारि तकि सुख फरौं हौं।

---

[४३] सरबरौं = समानता दूँ। कूल = पास। क्रम = क्रमशः। कुंचित = टेढ़ी। थकनि = स्थिर होना (वज्र से पंख कट जाने पर)। साथिये = सथिया,

तिन मधि बन्यौ अस्टकौन सब सिधि-
भौन दाहिने बल बाम करि भव तरौं हौं।
बाम अभिराम अँगुठा-मूल संख सुभ
मध्यमा-तरेँ निभ निहारि न टरौं हौं।
तिन द्वै तेर धनु अवनि चित चढ़ि रह्यौ
ता तरेँ गोपद न नेकु बिसरौं हौं।
तिहिं तर त्रिकौन घट चँवर सुधासर
अरध बिधु मीन दुति किहि पटतरौं हौं।
कहत को बाम पै दाहिनो मोहिँ नित
हित चित लगाय रुचि पानि पकरौं हौं।
उदित ससि सरद के कोटि, नख पाँति
पर वारि त्रिभुवन-चकोरनि दुख दरौं हौं।
सुढरि गुलफनि पीठि तकि दीठि थकि
रही मनसा रढ़ति पूतरिन ही अरौं हौं।
बृंदाबिपिन अवनि-सीस-आभरन जुग
गति कलाधर रासरसिक उचरौं हौं।
बिहरत सुजान प्यारी सहित जमुना-तट
प्रान-पट आनंदघन बिस्तरौं हौं॥

श्रीराधा-चरण-चिह्न] (४४)

राधिका-चरन बंदन करि बखानौं।
पाय जिन बल नंदनंदनहिँ हाथ करि
चैन भरि नैन मधि देहौं थिर थानौं।
बाम अँगुठा-मूल जव चक्र जगमगत
हिय-हरित-करन दुख-दल-दलन जानौं।

स्वस्तिक। सुख० = सुख के फल फला लूँ। दाहिने० = इस दाहिने के सहारे संसार को बाँयाँ करके तर जाऊँ। निभ = चमक (चंद्रिका)। अवनि = पृथ्वी। पटतरौं = समता दूँ। [४४] जमल = (यमल) दोनौँ (कमल और ध्वज)।

अरध पद लौं सुभग तर्जनी-संधि तैं
सूछम सुरेख अनिमेप उर आनौं।
मध्यमा तर कमल धुज अमल दुति जमल,
मन-मधुप सुख-सदन प्रान-धन मानौं।
तिन तर पुहपलता लहलहति महमहति
सुफलित ललिन नित चित-थावरे ठानौं।
छवि-धनी छिगुनी-निकट करी-वसकरन
इतर मदमत्त मन करखन प्रमानौं।
पुनि चक्र-तर रुचिर वलय अरु छत्र छवि
कवि कहि सकत कौन मौन अनुमानौं।
अरुन पँड़ी उदित अरध विधु मुदित लखि
पिय-चख-चकोर-जुग चोप चित सानौं।
यौं सुमनि वाम पद केलि लीला-रसद
अति विसद मति तिहिं प्रसाद पहचानौं।
दुतिय पँड़ी मकर कामधुज स्याम तन
रति-समर-समय फरहरनि गुन गानौं।
तापर मनोरथ सुरथ अरु विलस गिरि
तिन इत उतैं गदा सकति करि ध्यानौं।
अँगुठा-सुमूल सुभ संख सोभित महा
सारदा स्रौन-हित चित-विधि धवानौं।
पिय जिय-निवास वेदी छिँगुनिया-तरैं
ता तर सुकुडल निरखि लजत भानौं।
रासमंडल-रसिक वरदानि देव विमाननि
मधि यौं चित चाहत लुभानौं।
मनसा सिंहासन सुदेस आनंदघन
तापर विराजित सुचि रुचि वनक वानौं॥

थावरे = थाले में। करी० = हाथी को वश में करनेवाला अंकुश। इतर = दूसरा। रसद = रसदायक। इत उतैं = इधर उधर। सकति = शक्ति, बरछी। स्रौन० =

यमुना-वंदना] (४५) [तालजात्रा

जमुना आगैं जमुना पाछैं जमुना देखौ सब ही ठौर।
बनवारी की ढूँढ़ि थकनि मैं जमुना ही लौं मेरी दौर।
याके तीर सदा खुलि खेलत राधारमन रसिक-सिरमौर।
अब आनँदघन-घमड़-भरोसैं या बिन कौन ताकियै और॥

प्रेमी मन] (४६)

लगौं हैं मन ही औरैं होत।
ज्यौं जलचर विचरत अनेक पै, अमिल मीन गति-गोत।
जंत अनंत उलूक आदि हैं देखत चंद-उदोत।
कछु चकोर की चोप न्यारियै अमित सुधा को सोत।
जहाँ जगमगै प्रेम-दिवाकर तहाँ नेम न खद्योत।
आनँदघन-हित त्रिषित पपीहा कहूँ अमी तैं ओत॥

साधु-संगति] (४७) [देवगांधार, तालजात्रा

तिन सब कछु साध्यौ हो जिन साधी साधु-जननि संगति।
पतितपावन पुरुषोत्तम पदवी पावन कौं परम गति।
धोय धोय मन-बसन-वासना रच्यौ रुचि रंगति।
आनँदघन-रस परसि प्रसादहि पाय पल्यौ पन-पंगति॥

नयन-बाण] (४८) [चौताल

मृगसावकनैनी री तैं कृस्नसार नंदकुमार मोह्यौ।
गोहन लयौ लगाय लगौं हीं
मदन-पारधी की भेदनि ललचौं हीं अँखियन जोह्यौ।
वृंदाबन जमुना के तीर हरियारो ठावँ तहाँ टोह्यौ।
आनँदघन हित पारि छंद-फँद बिषम बान सौं मरम पोह्यौ॥

सुनने के लिए। धवानौं = (ध्वान) ध्वनित हुआ। बँदी = विंदु। सुदेस = सुंदर। [४६] गति० = चंचल (होकर भी)। सोत = स्रोत। अमी० = अमृत में डूबा हुआ भी। ओत = ओत-प्रोत। [४८] पारधी = व्याध।

मोहन-महिमा] (४९)

गन गंधर्व गुनी गिरापति गुरु गनेस गुन गरवै गावत हैं तिहि हारे।
गाय गाय छकि जीभ थकि जीवत है जनम कहि हारे।
सेस महेस निगम असेस गति पावत नाहिँ विचारि विचारे।
व्रजमोहन आनँदघन हौ चित-चातक-पन रखवारे॥

प्रेम-प्रसूति] (५०) [ख्याल, मूलताल

व्रजमोहन सोहन सौं प्रीति लगी है अब तौ मेरी।
कहा करैगी सासु ननदिया रहत इनकी घेरी।
× × × आनँदघन रस चितवनि हेरी॥

सुरतांत] (५१) [विभास, चौताल

सब रैनि जगाई री प्रानेस्वर यातैं दगनि ललाई छाई।
अंगनि आलसताई लेति जँभाई लागति मोहिँ सुहाई।
आरस की सरसाई नीके देति दिखाई कंचुकि हिय दरकाई।
रोम रोम कामांकुर प्रगटे आनँदघन बरखि सुहरखी है हरष-हँसाई॥

(५२) [तालजात्रा

भुज भरि भरि गाढ़ैं लगाई री सु तौ प्यारे छतियाँ।
आनन पियराई धरके हियराई लगाई बहुत भँतियाँ।
पीक कपोल सुहाग छाप जगि, लगियै आवति आँखैं मदमतियाँ।
अँग अँग ऊठ अनूठ भई आनँदघन घुरि घुरि ढुरि ढुरि भिजई सब रतियाँ॥

प्रेम-क्रीड़ा] (५३) [चौताल

अचानक मूँदी री अँखियाँ ओटपाई अछन अछन पाछैं ह्वै आय।
हौं जमुना के तीर इकौसैं न्हाय बसन पलटाय।
सुखावति केस कहूँ तैं वैरी विचारौ धाय।
जो कोऊ कहुँ देखि पावतो कैसी होती हाय।
आनँदघन घमड्यौई रहै इन बातनि ज्यौं अनखाय॥

टोह्यौ = खोजा, ढूँढ़ा। पोह्यौ = वेधा। [४९] गरवै = भारी। [५१] हरष० = हर्ष की हँसी। [५२] ऊठ = उठान। [५३] ओटपाई = नटखट। अछन० = धीरे

रहःकेलि] (६३) [चौताल

मोहिँ जगाय जगाय जागे री वाके जिय की न जानियै बात।
इकटक नैन लगाय लखैं हौं लजाय रहौं नकबानी भई उहि गात।
तऊ नई नई रुचि छिन छिन इन भाँतिन ही जु होत परभात।
अति गति कहि न परति आनँदघन इत आवत उत जात॥

प्रेमाभिलाष] (६४) [चौताल

बरति मेरी रसना ब्रजमोहन की केलि।
अद्भुत सुख-सवाद को सार धरैं कित सबै सकेलि।
मधुर बिनोद सदा फल जामै फलित ललित अभिलाषा-बेलि।
आनँदघन-रस-रूप-चातकी की गति गसि नीकैं खुलि खेलि॥

पूर्वानुराग] (६५)

अरी चलि चलि उठि चलियै घर कौं ये तौ मचलि परे हैं।
इन बातनि कबहूँ न अघाने (ये धुर के रस के लोभी
रसिक छैल) अति छल-बलनि भरे हैं।
चोरी मैं चौचँद सठताई चतुर कहाय निसंक खरे हैं।
फूँकि फूँकि धरि पाय ब्रज बसन,ये आनँदघन छाय छाय उघरे हैं॥

सुरतांत] (६६) [तालजात्रा

आई है उनींदी तू सुनि राधे पिय के संग सब निसि की जागी।
घुरि घुरि आवत नैना तेरे ढुरि ढुरि आनँदघन-गर लागी रस पागी।
आगैं आय बलैया लैहौं अगनि रंगनि की रुचि रागी।
झपि रहौ री नेकु बिजना ढुराऊँ जिय की जीवनि जान सभागी॥

पूर्वराग] (६७) [ललित, मूलताल

यह जोबन ऐसो काम करै, अपनी अरनि अरै।
कित कौं छैल छबीलो मोहन मेरी दीठि परै।

चहचारे = चहचह बोलनेवाले। भरम = भेद, रहस्य। [६३] नकबानी० = नाक में दम हो गया। [६४] गसि = बाँधकर, रोककर। [६५] धुर के = परम, अत्यंत। [६६] घुरना = झपकना। [६७] उघरि० = खुल्लमखुल्ला

मन मिलि गयौ मिलत ही अँखियन आई घूमि घरै।
अपनो सो बरजत बहुतेरो नेकु न धीर धरै।
चलत चवाव चाव चित बाढ़त क्यौं हित-टेक टरै।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौं अब सब डारि डरै॥

प्रेमोन्माद] (६८)

सब जग कान्ह कान्हई दीसै अब मेरी स्याम-रँग-रँगी दीठि।
रुप-उज्यारो सनमुख डोलै लाज रही दै पीठि।
कैसो घूँघट कहति कौन सौं क्यौं ऽब करौं सुनि सुघर बसीठि।
उघरि परी आनँदघन-घमड़नि ऊतर दीजै नीठि॥

विरह-सदेश] (६९) [तालजात्रा

लागी है रे निरमोहिया तोही सौं जिय की लाग।
घर मैं बैठि कहाँ लौं साधौं या विरहा-बैराग।
अब तौ सब डर डारि सदा सँग बिहरौंगी बन-बाग।
प्रान-पपीहन के आनँदघन उचित न क्यौं हूँ त्याग॥

पूर्वराग] (७०)

सलोने स्याम प्यारे बैन बजाय रिझाय लई।
जमुना-तीर कदम-तर ठाढ़ौ भोरहि भेंट भई।
देखत ही मनमोहन मूरति सब सुधि बिसरि गई।
आनँदघन पिय हँसि चितयनि मैं नखसिख लौं भिजई॥

दानलीला] (७१) [मूलताल

चले किन जाहु लला तुम सूधे आपनी गैल।
काहे कौं उरझत काहू सौं भली भई भए छैल।
दान दान यौं ही करि राख्यौ रोकत खोरि खरेई अरैल।
आनँदघन रसबादनि उनए फिरत मनावत सैल॥

प्रेम करूँगी। [६८] सुघर० = ऐ चतुर दूती। नीठि = कठिनाई से।
[७०] बैन = बाँसुरी। [७१] मनावत० = मौज उड़ाते फिरते हो।

कहा करौं मन क्यौं हूँ न समझत तनहिं दहत दुखदाई मैन।
आनँदघन पिय चोपनि छाए आए अजहुँ तनैन॥

विरहोन्माद] (८१) [दोहा

सुधि आएँ पिय मिलि खिली, यौं याही बन माँझ।
सरसौं सी फूलति सखी, देखति फूलो साँझ॥

उपालंभ] (८२) [चौताल

सुनहु कान्हा ब्रजवासी, तिहारे दरस-रस की हौं प्यासी।
तुम ही सौं मन लागि रह्यौ अब सब तें भयौ है उदासी।
ऐसी भाँति मरियत भरियत एक गावँ बसि भए प्रवासी।
प्रान-पपीहा के आनँदघन दैया निपट बिसासी॥

मुरली-माधुरी] (८३) [इकताल

बंसी मोहन की फँदवारी।
मदन-गुपाल बजाय हमारे प्रान गरैं गहि डारी।
घुटत अधीर पीर को पावै दरसन-आस जियारी।
आनँदघन-रस पियें जियैं तौ रमैं विरही व्रतधारी॥

प्रसाधन] (८४)

मिहँदी राचनि लागि लसी है नवेली के हाथ।
छुटे बार मुख ओप डहडही अलि गावत गुनगाथ।
ब्रजमोहन की नवल दुल्हैया सोहति ललित सहेली-साथ।
आनँदघन पिय उमँगनि उनए भरत सु बलि कौं बाथ॥

उपालंभ] (८५) [ख्याल, तालजात्रा

न जानियै कौन भाँति मिलौ तिहारी भँवर की सी रीति।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे ठौर ठौर सवाद हिलौ दई नई परतीति॥

के लिए। [८१] फूली साँझ = सायकाल का वह समय जब अंधकार आने के पूर्व प्रकाशाधिक्य जान पड़ता है। [८२] बिसवासी = विश्वासघाती। [८३] फँदवारी = फंदा। जियारी = जिलानेवाली। [८४] राचनि = अर्थात् ललाई। डहडही = भरी पूरी। बलि = प्रिया। बाथ = अँकवार। [८५] सवाद० = स्वाद

पूर्वराग] (८६) [मूलताल

ठगिया बसत है री अरी यही गावँ।
जमुना-तीर तैं मन न हाथ मेरे, सुधि न रहत घर पावँ।
परी ठगौरी लगि वहि ढौरी बौरी भई जागत बररावँ।
साँवरे वरन आनँदघन भिजई जानौं न कहा धौं नावँ॥

निर्मोही प्रिय] (८७) [तालजात्रा

कहा बनि आई रे जियरा ! तोहि करि निरमोही सौं मोह।
अब तौ आनि पर्यौ कितहूँ तैं बैरी बीच बिछोह।
काहे कौं पछितात परेखनि तैं ही कियौ अपनो हित टोह।
वे आनँदघन तू है चातिक, वे चुंबक तू लोह॥

टोड़ी की तान] (८८) [टोडी

बजावै कान्ह तीखी तान टोड़ी की।
मुरली अधर धरें सुंदर बदन मैन-मद-घमरे नैनन,
केसरि-खौरि छुटी अलकैं और मुरि परसनि ठोड़ी की।
मन ही मन मैं रीझि रीझि तहाँ ताही सौं होड़ा-होड़ी की।
सुघर-सिरोमनि आनँदघन पिय की छवि देखैं
सुधि काहि लाज निगोड़ी की॥

मुरली-माधुरी] (८९) [मूलताल

सुधियौ न रहे तन की तनकौ भनकौ मुरली की सुनत ही कान।
तान-बान लगि घूमत घायल प्रान उत चाहत चलि जान।
रीझि मुरझि अरबरनि उरझि ससकत न सकत उठि, मगन-गान।
आनँदघन पिय को मिलन अभिलाखत
सुर-विमान चढ़ि कौन सुकृत-अभिमान॥

ही लेते फिरते हो। [८६] लगि० = उसके पीछे लगकर। बररावँ = बर्राती हूँ। [८७] कहा० = क्या लाभ हुआ। टोह = खोज। [८८] मैन० = काममद से नशीले। सुघर = चतुर। [८९] भनक = क्षीण ध्वनि। मगन० = गान में

(९०) [झपताल

बजावै साँवरो बंसी जमुना-तीर ठाढ़ो पनघट पर कैसेँ जैयै।
घट पट-सँभार तजि निकट कौँ धैयै मोहिनी धुनि सुनि लुभैयै।
वाकी छवि हेरि तन सुरति बिसरैयै डगमगत पग डग भरन हूँ न पैयै।
जौऽब आनँदघन नीठि घर ऐयै तौ निपट ही अररैयै॥

(९१) [इकताल

सलानैं ब्रज बगराई है, अपने रस की ठगौरी।
ब्रजमोहन सब ही भाँति नीरस रीति चलाई है।
काहू की कछु कही न परति अति ही गिराई है।
आनँदघन मुरली-धुनि-घमड़नि प्रेम-दुहाई है॥

गो-चारण] (९२) [चौताल

गैयनि चराय चराय गौँ गहि करत कान्हा कितेऊ काम।
गिरि गोबरधन घटियाँ घेरत हेरत हौ नव वाम।
हम जानैं जैसे हौ मोहन गोहन लागत सोहन स्याम।
आनँदघन कहा भूमि आवत घर जान देउ किन फिरत बरावत घाम॥

खंडिता] (९३)

तिलक महावर को अति सोहै।
लाल आजु की बानिक मो मन आगे हूँ तैं मोहै।
मूड़ चढ़ाय लई अनुरागिनि अब ताकी पटतर कौं को है।
ऐँड़ि भाग उनयौ आनँदघन उघरी परत अहो है॥

लीन। सुर० = स्वर; देवता। [९०] अररैयै = गिर पड़ती हूँ। [९१] गिराई = वाणी ही, बहुत अधिक कहने पर भी। [९२] घटियाँ = घाटियाँ। सोहन = शोभन। घाम बराना = मुसीबत टालना। [९३] बानिक = सजधज। पटतर = समता। ऐँड़ि० = ऐँड़ाकर अर्थात् भली भाँति। उघरी० = रहस्य की बात उद्घाटित

कृपा-याचना] (९४)

ज्ञान ध्यान धारना समाधी धरि धरि देखे पै न देखे।
ईस गिरीसन हूँ जौ कहूँ देखे तौ चटपटिन रतन परेखे।
× × × अपनीयै इच्छा बिसेखे।
मोसे अनकछु की गिनती कहावत एक कृपा-गुन उर अवरेखे।
आनँदघन हौ ढरौ तौ हरौ दुख पूरौ परै सब लेखे॥

दधिदान] (९५) [रूपताल

ऐंड़ी ऐंड़ी सिर धरै दहैंड़ी।
अब सब दिन को दान कान्ह को देत बनै है लखि पाई गिरि-छैंड़ी।
रूखी परिखत रीति ग्वारि कित बहुत बार यौं गई अमैंड़ी।
आनँदघन सौं मिलि चलि दामिनि नातर मचिहै दधि की उरैंड़ा-उरैंड़ी॥

उपालभ] (९६)

कहा मन मिलाएँ होत अनमिले सौं
जाको सहज चंचल पर्यौ है सुभाय।
दिन दस गौं लागि लाहौ बपुरी अबलानि भुराय।
करत फिरत बिसवास वधुनि को ब्रजमोहन कहूँ मोहे न हाय।
कहूँ उघरि कहूँ घमड़ि आनँदघन रचत नए नए दाय॥

प्रेम की रहन] (९७) [चौताल

नेही सो बिदेही और जग माँझ कौन है।
बिरह को ताप महा आनँद को सीत सहै,

हो रही है। [९४] ध्यान० = अष्टांग योग की साधना से। चटपटिन० = हड़-बड़ी में ही रत्न की परीक्षा की। अनकछु० = अत्यंत तुच्छ की भी। अवरेखे = विचारे। [९५] ऐंड़ी = अभिमान से टेढ़ी। दहैंडी = (दधिभांड) दही की मटकी। छैंड़ी = घाटी, उपत्यका। अमैंड़ी = मर्यादा को न माननेवाली। उरैंड़ा० = (उलेड़ना) अभिमान से बलपूर्वक गिरा देना। [९६] लाहौ = लाभ। भुराय = ठगकर। उघरि = हटकर। घमड़ि = अर्थात् छाकर। दाय = घात।

नाहीं कछु कहै जाके सम बन भौन है।
जीवत अदस्ट-बल खाय पै न जानै स्वाद,
खाटो कटु तिक्त मीठो किधौं यह लौन है।
बृंदावन-प्रभु प्यारो बस्यौ रहै नैनन मैं,
देखन कौं बावरो सो भयौ फिरै मौन है॥

(९८) [मूलताल

बेगि लै आव री लालबिहारी प्रानपिया कौं, प्रानपिया कौं।
कलमलात उनके देखन कौं राखि लै बिकल जिया कौं।
हाहा करति हौं पायनि परति हौं चेरी मानि अधीन तिया कौं।
आनँदघनहिं मिलै सियरो करि बिरहा-जरत हिया कौं॥

मन की बात] (९९) [इकताल

मन की बात नहीं जानै री, जब तें देखे मोहन सोहन स्याम।
कैसें रहौं कहौं अब कासों को अब मानै री।
उर अरि रही रसीली सूरति प्राननि छानै री।
चातक-रट लागी आनँदघन पानै पानै री॥

रूप-माधुरी] (१००) [रूपताल

मोरचंद्रिका सीस धरें यह साँवरो चेटक है धौं को।
पैठि परत आँखिन ह्वै अनेरो याहि निरखि पन लै निबहै धौं को।
फिरि याकी मोहन मुरली सुनि धीरज धरि धरि तरुनी रहै धौं को।
गुपत प्रगट भिजवै आनँदघन मन की गति पति बिसरि रहै धौं को॥

बिरहोद्वेग] (१०१) [इकताल

मोहिं तुम ही तुम दीसत हौ।
स्याम उज्यारे नैननि तारे अब क्यौं रीसत हौ।

---

[९७] बिदेही = देहाध्यासशून्य। जीवत० = अदृष्ट के बल से वह अनेक वस्तुएँ खाता है, पर उनका स्वाद नहीं जानता। [९८] चेरी = दासी। [९९] अरि = अड़कर। छानै = बाँधती है। पानै = पानी। [१००] चेटक = जादू। धौं को = न जाने

इतने पै न जान दीसत हौ तौ प्रान परेखनि पीसत हौ।
तुमहि जु दीसि परी सोई दीसौ पै नहिँ प्यास परीसत हौ॥

विरही कृष्ण] (१०२) [मूलताल

राधा राधा दीसै स्यामैँ घर राधा वन राधा।
चायनि भरि गायनि लै निकसत डुरि मिलिबे की साधा।
व्रज वसि कैसैँ बनत कुलीननि लोकलाज गुरुजन की बाधा।
आनँदघन चातक लौँ जीवत रसबस प्रान समाधा॥

बिरागी मन] (१०३) [चौताल

को पावै ये भेद जो गावै मेरो बैरागी जियरा।
व्रजमोहन के सँयोग बियोग भखौई रहै हियरा।
अँसुवन जल सौँ अधिक जगति जोति परेखनि होत मनौँ पियरा।
आनँदघन औसेर-अँध्यारनि दुसह-दसा दियरा॥

राधा-रूप] (१०४)

तेरी निकाई तोहि दई है विधाता राधे रूप रती भरिपूरि।
रति रंभा सची उमा रमा आदिकनि के गरब डारे री चरननि चूरि।
रसिक मुकुटमनि व्रजमोहन मनमानी जानी
बखानी बेदनि महिमा भूरि पदवी परम पूरि।
आनँदघन पिय कौँ रस संपति दैनी जिय की जीवनि मूरि।

(१०५)

मंजन करि कंचन-चौकी पर बैठी बाँधति केसनि जूरौ।
रुचिर भुजनि की उचनि अनूपम ललित करनि बिच झलकत चूरौ।

कौन। अनेरो = अनोखा। [१०१] दीसि० = आप को जो दिखाई पड़ता है उसे ही देखते हैं। परीसत० = स्पर्श करते हो। [१०२] साधा = उत्कंठा। समाधा = समाधान। [१०३] अँसुवन० = आँसुओं से वेदना की ज्वाला बढ़ती है। पियरा = पीला। औसेर० = प्रतीक्षाजन्य दुःखरूपी अंधकार के लिए विरह की दुस्सह दशाएँ दीपक का काम करती हैं। [१०४] रूप० = सौंदर्य का रत्ती-

लाल-जटित बर भाल सुबैंदी कछुक रह्यौ फबि माँग सिंदूरौ।
आनँदघन प्यारी-मुखछबि पै वारौं कोटि सरद-ससि पूरौ॥

यमुना-महिमा] (१०६)

कृस्न-तरंगिनि रस-रंगिनि जमुना जाको दरस परस
सरस करत हिय नैननि बैननि।
कहा कहियै देखि देखि रहियै लहियै जे जे अपूरब चैननि।
बृंदाबन बिनोद दरसावनि भानुकुँवरि लगियै रहै नैननि।
याके तीर बलबीर धीर आनँदघन घमड़ि घमड़ि
बसत लसत बरसत केलि-कुंज-ऐननि॥

विरह-निवेदन] (१०७) [मूलताल

तू जब चाही री मुसुकौंहीँ सखियनि तब तैं उन मन मानी।
मोहन रसिकराय रसनागर सब ही बिधि सुखदानी।
प्रीति बढ़ै चित चोप-रंग चढ़ै सो कीजै सुनि सुघर सयानी।
आनँदघन तोसौं हित गति चातिक तें अधिकानी॥

मोहन रूप] (१०८)

तेरी लटकि चलनि पर वारी, वारियै वारि वारि डारी रे।
ब्रजमोहन रस-भीनी मूरति लगति प्यारी रे।
हँसि चितवनि मदछाकी अँखियनि जीय-जियारी रे।
रिझै भिजै लीनी आनँदघन रसिकबिहारी रे॥

पनघट-लीला] (१०९)

कैसैं कै जाऊँ जमुना-जल लँगर छैल,ठाढ़ो गैल माँझ करै बोली ठोली।
ब्रजमोहन आनँदघन उनयोई रहै कहि कहाँ लौं रहौं दैया ऐसैं अबोली॥

भर अंश भी छोड़ा नहीं, उसे परिपूर्ण करके तुझे वह रूप विधाता ने दिया है। सची = इंद्राणी। [१०५] चूरौ = कलाई पर के कड़े। बैंदी = माथ पर पहना जानेवाला गहना। [१०६] ऐन = अयन, घर। [१०७] हित० = प्रेमदशा। [१०८] वारियै = निछावर होना ही। जियारी = जिलानेवाली। [१०९]

वेणुवादन] (११०) [देशी टोड़ी

मुरली मैं मोहन मंत्र वजावै कान्ह छबीला छैल।
व्रजगोरिन के गोहन लाग्यौ वरज्यौ न मानै अरैल।
प्रेम-लहरि उठि तन उरझावै नाद निगोड़ो निपट बिसैल।
रोम रोम आनँदघन छायौ विरह-विथा को फैल॥

उपालंभ] (१११) [आसावरी, इकताल

निमाणी जिंद लगी वे तैंडी नाल।
वेखणी कारण तपदी वे कान्ह वेखि असाडे हाल।
तुझ गल मैंडा कुझ वस नाहीं चलदी ज्यौं भी त्यौं भी करी वे बेहाल।
आनँदघन हुण वंदियाँ विचारियें यौं जानी वे तुसाडे ख्याल॥

संदेश] (११२) [काफी, मूलताल

वो वो वो मैं वारी वारि वारि जाँमी।
अरज असाडी सुन व्रजमोहन सोहन मुख विखलाँमी।
तुज बाजू असी खरी वो निमाणी खिमा दिल परचाँमी।
प्राण-पपीहौं हे आनँदघन रिमिझिमि रिमिझिमि आँमी।

विरह-व्यथा] (११३) [ईमन बिलावल

अब तौ लागी लगनि तुम सौं है।
व्रजमोहन कित ह्वाँ हिलगे तुम, अपनी अपनी गौं है।

लँगर = ढीठ। [११०] गोहन = साथ। निगोड़ो = (स्त्रियाँ की गाली) बुरा। बिसैल = जहरीला। फैल = फैलाव, प्रभाव। [१११] निमाणी = मनमानी करनेवाली। वेखणी० = आप के दर्शन के लिए। तपदी = तपती हूँ। वेखि = देखो। असाडे = हमारे। गल = बात मैं। मैंडा = मेरा। कुझ = कुछ। हुण = अब। वंदियाँ = दासियाँ। तुसाडे० = तेरे विचार। [११२] वारि जाँमी = निछावर हो जाती हूँ। असाडी = हमारी। विखलाँमी = दिखाइएगा। तुज० = तेरे भरोसे। असी० = हम खड़ी हैं। खिमा = क्षमा। खिमा० = अपने मन को

छिन-पल कल न परत बिन देखें गति चकोर-ससि-लौं है।
आनँदघन पिय बरसि सिराए हिये परेखनि दौं है॥

वेणुवादन] (११४) [भीमपाली

बन बजी बँसुरिया कैसें रहूँ घर दैया।
कलमलात जियरा मिलिबे कौं को है धीर धरैया।
न्यौज* लगौ यह लाज निगोड़ी, करिहै कहा चवैया।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौं अब डर करै बलैया॥

भक्त का अभिलाष] (११५) [बिलावल, इकताल

माँगि मन ब्रजबासिन सौं टूक।
तजि बिंजन सब स्वाद इतै उत यहै बिचार अचूक।
प्रान राखि अभिलाष स्याम को लोकलाज दै लूक।
आनँदघन दिसि त्रिषित पपीहा ह्वै, बन मैं करि कूक॥

सूर्यस्तुति] (११६) [कपोतताल

दिनदेव दिवाकर दिव्य रूप दीनदयाल।
परम धाम पुनीत परिपूरन प्रताप, तूरन चूरन भ्रम-तम-जाल।
बंदनीय बिभु, विज्ञान-प्रकास, बिकासक हृदै कमला-कमल-माल।
आनँदघन उदै उदयाचल मैं अब उपजैयै हरि-अनुराग अमोल लाल॥

क्षमा से परचाओ, मन मैं क्षमा ले आओ। प्राण० = प्राण-पपीहों के पास। आँमी = आना। [११३] हिलगे = प्रेम करने लगे। गौं = घात। दौं = दावाग्नि [११४] न्यौज लगना = देवता को अर्पित हो जाना; बलि चढ़ जाना (स्त्रियों की गाली)। चवैया = बदनामी करनेवाले। उघरि० = खुल्लमखुल्ला प्रेम करूँगी। डर० = मेरी बला डरे। [११५] टूक = टुकड़ा। बिंजन = व्यंजन। लूक = (आग की) लुत्ती। करि० = चिल्लाओ। [११६] तूरनं = तूर्ण, शीघ्र।

* आग।

पनघट-लीला] (११७) [मूलताल

मोहिं न करि रे नकबानी लंगर होत अवार जान दै जमुना पानी।
कहा तेरैं आयौ राज, लाज तजि खोवत औरैं काज,
तोहि तलबाहि, घरबसे न जानत विरानी।
भरि भरि डगरि गईं सँग की, हौं कौन बेर की घिरी हाय,
उतर न आयहै बूझैगी जब ननँद जिठानी।
आनँदघन हठ सठ स्वारथ लगि जानी हो पहचानी हो पहचानी।
रावरी अब सु बावरी जु फिरि पत्याय
इहिं गैल निगोड़ी आजु तैं करिहौं सयानी॥

(११८) [रूपताल

गागरि दै रे उचाय लँगर अठिलात कहा, ए लँगर अठिलात कहा।
अब ही जो कोऊ कितहू तैं देखि पायहै परिहै कठिन महा।
या व्रज के सब लोग चवाई करत फिरत हैं चही-चहा।
आनँदघन हठ घमड़ छाँड़ि किन, पायनि परत इहा॥

गोपिका-प्रीति] (११९) [इकताल

गोकुल की नारि नवल अनुराग भरी रहैं
स्यामसुँदर देखन कौं दिनदिन हीं।
मधुर रूप-रस पिवतिं जियति आनँद उमगि उमगि छिनछिन हीं।
इनको सुख येई पै समझतिं रहि न सकतिं उन देखे बिन हीं।
रोम रोम भीजी आनँदघन यह रस तौ पायौ है इनहीं॥

[११७] न करि नकबानी = दिक मत कर। लंगर = शरारती। अवार = देर। तेरैं० = क्या तेरा ही राज हो गया है। खोवत० = तू दूसरे का काम बिगाड़ता है। तलबाहि = उतावली। घरबसे = उपपति, यार। न जानत० = दूसरे की पीड़ा नहीं समझते। डगरि० = चली गईं। कौन० = न जाने कितनी देर से। रावरी पत्याय = आप की बात का विश्वास करे। निगोड़ी करिहौं = अर्थात् त्याग दूँगी। [११८] दै रे० = उठा दे। चही-चहा = (लुक-छिपकर) देख-ताक

वेणुवादन] (१२०) [मूलताल

बँसुरिया सौति तैं अधिक दहै।
वन घन लियें फिरत मोहन सौं कौन कहै।
देखनि हूँ की चोर, कानिबस को यह सूल सहै।
परी न रहन देति घर हू मैं साँसन गिनत रहै।
चाहत कियौ कछू इतने पै कल पल एक न है।
आनँदघन पिय बसौ किये, पै बैठी बैर चहै॥

शिव-स्तुति] (१२१)

संकर गिरिजापति नंदीस्वर चंद्रचूड़ गंगाधर।
आदिनाथ कैलास-निवासी भक्तराज भव भयहर।
महाईस जगदीस जोगिमनि महादेव सिव संभु दयापर।
आनँदघन सुरूप गोपेसुर, मंडित बृंदावन थर॥

संत-प्रशस्ति] (१२२)

जिनके मन सुबिचार परै।
गुरुपद-पदुम परम परसादहि पाय प्रेम आनंद भरै।
जग तैं बिरल विवेक-देस बसि देखन कौं तित रहत ररै।
खान-पान परिधान आन बिधि अनासकत ह्वै करम करै।
साधारन सुभ असुभ न जानत, नित निहचै रुचि-सोच टरै।
सावधान अति बिरह-बावरे, मिलि सरूप इहिं ढार ढरै।

(करना)। हहा = हाय। [११९] दिन० = प्रतिदिन। [१२०] देखनि० = मैं उनके देखने की भी चोर हूँ, देखती भी हूँ तो लुक-छिपकर। कानि = मर्यादा। कल० = एक क्षण का भी चैन नहीं। पिय० = प्रिय को वश कर लेने पर भी वैर की घात लगाए रहती है। [१२१] दयापर = दयापरायण, दयालु। सुरूप = गोपेश्वर-रूप, श्रीकृष्ण-रूप। [१२२] बिरल = पृथक्। ररै = रटे। परिधान = पहनावा। आन० = दूसरे ही प्रकार का होता है। अनासकत = अनासक्त, विरक्त। रुचि० = इच्छापूर्ति न होने का सोच। मिलि० = भगवान्

अमल अनूप बिदेह रूप धरि थिर मति करि निज गति विचरै।
तिनके पद पावन की रज मैं अखिल-लोक-उपकार धरै।
कृस्न-रसासव अति सुपान तैं पूरन, पूरनकाम खरै।
तत्वबोध की बलक छलक-बस दोक-गाँस-ब्यौरनि उघरै।
कब धौं मिलैं हाय हम हूँ वे संत-कलपतरु कृपा फरै।
सोभा-मूल फूल-सुख बरसत सरसत छाया हरै हरै।
सुभ सीतल सुदृस्टि-धारावलि सींचैंगे उर-दाह-वरै।
आनँदघन अमोघ रसदायक प्रान रहत अभिलाष अरै॥

मोहन-माधुरी] (१२३) [सुघराई, रूपताल

कान्ह की देखौ हो सुघराई।
सुघराई सुर सौं मुरली मैं अपनीयै तान बजाई।
मोहिं जनाई मैं हूँ पाई उनकी हित-अँगराई।
आनँदघन पिय घर बैठें हूँ रीझनि-भीज भिजाई।

अभिलाष] (१२४)

यह मेह मोहीं पर बरसैहौ।
रसभीजी चितवनि चितै चाहि चाप-चटक सरसैहौ।
कहा कहौं मन अँखियन की गति जब मोहन मुख दरसैहौ।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौं कौ लौं ज्यौ तरसैहौ॥

(१२५) [कन्नड़ी बिलावल, मूलताल

बनवारी के सँगवा फिरिहौं, गुरजन-डरनि कहा घर घिरिहौं।
सनमुख ह्वै ह्वै व्रजमोहन कौं भावभरी भटभेरनि भिरिहौं।

के रूप मैं मिलकर। धरै = धरा है, रखा है, होता है। खरै = उत्कृष्ट। बलक० = छलबल से। दोक = द्वैत, दो का भाव। गाँस = ग्रंथि। ब्यौरनि = पृथक् करने का विवेक। उघरै = उद्घाटित हो जाता है। हरै० = धीरे धीरे। [१२३] सुघराई = चतुरता, सुंदरता। हित० = प्रेम की अँगड़ाई, प्रेम का स्फुरण। [१२४] चटक = फुरती। [१२५] भटभेरनि = आकस्मिक मिलन। [१२६]

अब तौ जिय ऐसी बनि आई प्रीतम के मन तैं क्यौं फिरिहौं।
आनँदघन-हित चातक-चोपनि कौ लौं इन अँसुवनि-झर झिरिहौं॥

पूर्वराग] (१२६)

नैना मेरे लागे री, स्यामसुँदर ब्रजमोहन पिय सौं।
बिन देखैं नहिँ चैन सखी री निसदिन इकटक जागे री।
लोकलाज कुलकानि बिसारी उनहीँ सौं अनुरागे री।
आनँदघन-हित प्रान-पपीहा कुहुकि कुहुकि पन पागे री॥

पनघट-लीला] (१२७)

अरी पनघटवा आनि अरै।
अटपटि-प्यास-भर्‌यौ ब्रजमोहन पलकनि ओक करै।
रुचि रचाय ललचाय, निहोरै मेरोऊ धोर हरै।
उघरि उघरि भिजवै आनँदघन चोपनि लाय झरै॥

(१२८)

बंसी वजावै रँग सौं, जमुना के तीर कन्हैया।
हौं दौरति हो सो ही इकौसैं औचक दीठि परि गयौ दैया।
रूप-गहर मन जाय पर्‌यौ है जैसैं भँवर जाजरी नैया।
उघरि उघरि भिजवै आनँदघनताननि बिष बाननि बरसैया॥

(१२९)

आँखिन लाग्यौ री गोपाल।
जमुना-तीर गई गागरि लै भरि लाई जंजाल।
औचक दीठि पर्‌यौ ब्रजमोहन ठाढ़ौ गहैं* तमाल।
चितवनि मैं भिजई आनँदघन ये पनघट के हाल॥

कुहुकि = चिल्लाकर। [१२७] ओक = अंजली। [१२८] इकौसैं = एकांत में।

* उठँगि।

प्रेमी मन]　　(१३०)

सलोने स्याम सौं मन लाग्यौ री।
गिनत नहीं कुलकानि तनिक हूँ अब ऐसो अनुराग्यौ री।
कल न धरत पल-छिन बिन देखैं उनहीं के रस पाग्यौ री।
आनँदघन-हित भयौ पपीहा और सबै कछु त्यागौ री॥

वेणुवादन]　　(१३१)

कहा विष ओख्यौ है बँसुरी मैं, अरी इन साँवरिया रसवादी।
घूमत मन, धीरज न धरत ज्यौं करि देख्यौ कसु री मैं।
एक गाँव बसि कैसैं भरियै कठिन कसक पँसुरी मैं।
अब आनँदघन उघरि धुरौंगी लैहौं यह जसु री मैं॥

उपालंभ]　　(१३२)

तुम सौं न नेह लगैयै ब्रजमोहन हो बिसासी।
पावत नाहिं पराई वेदन डोलत भँवर बिलासी।
अपनी गौं दुरि हिलत मिलत हौ रस लै देत उदासी।
आनँदघन पिय हौ बरसौं हे राखत आपनि प्यासी॥

पूर्वराग]　　(१३३)

बनवासी कान्हा चित्त चढ्यौ री, तातें मोहिं घर-अँगना न सुहाय।
सुधि बुधि सोधि लई सुनि सजनी मुरली तनिक बजाय।
जिय की दसा कहति नहिं आवै घूमि घूमि मुरझाय।
उघरि मिलैं बनिहै आनँदघन अब तौ मो पै रह्यौ न जाय॥

(१३४)

रंगी साँवरिया तेरी बनक न बरनी जाय।
जब जब देखौं तब तब भूलौं अँखियन घाली आय।

गहर = गहराई। जाजरी = टूटी-फूटी। [१३१] कसु = खींच-तान। भरियै = सहूँ। [१३२] पावत० = दूसरे की पीड़ा नहीं समझते। उदासी = उदासीनता।

रहि न सकौं मिलि सकौं न घर-डर मनहीं मुरझौं हाय।
सोचति रहौं कछु न ठिक ठहरै अरु कछुवै न बसाय।
देखि जिऊँ तोहीं आनँदघन हाहा जिय तरसाय॥

वेणुवादन] (१३५)

बैन बजावै बनमाली अरी हौं कलमलाउँ सुनि घर मैं।
गोहन पर्यौ सखी ब्रजमोहन ताननि बेधत मरमैं।
कैसैं रहौं कहाँ लौं साधौं टारत धीरज-धरमैं।
आनँदघन सौं उघरि मिलौंगी झुरसति बिरहा-झर मैं॥

पूर्वराग] (१३६)

कहि सुघर सनेही स्याम मिलैंगे कब री।
हेली, मेरो जियरा व्याकुल होत है अब री।
चितवनि मैं करि गए ठगौरी इत ह्वै निकसे जव री।
कहा करौं कछु बनि नहिं आवै अति गुरजन की दब री।
उघरि परैगी बात भरम की लखि लैहैंगे सब री।
आनँदघन-रस भीजी रीझी लै मिलि काहू ढब री॥

उपालंभ] (१३७)

निमाणियाँ दी बस्ती, वो होवे बंगी रहै, तैंडी जान।
ऐसी वे तुसाडे दरस-भिखारी, होवे सौदा दस्त-ब-दस्ती।
तैंडे बे कारणें फिरणे दिवाने हुसन-प रस्त अलमस्ती।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी तैंडे तलब दी मस्ती॥

ब्रज के विरही] (१३८)

निपट बिरहिया लोग या ब्रज के।
स्याम सनेह सगबगे सब ही रूप रगमगे नैन।

आपनि = अपनी ; जल से। [१३४] घाली = आघात किया। [१३५] मरमैं = मर्मस्थल। झुरसति = झुलसती हूँ, जलती हूँ। [१३६] दब = दाब। भरम = भेद, रहस्य। ढब = ढंग, तरीका। [१३७]बस्ती = रखेली। बंगी = टेढी। दस्त० = हाथोंहाथ। हुसन० = प्रेमसाधक। अलमस्ती = मौजी। तलब० = नशे की।

मिलि मिलि बिछुरैं बिछुरैं मिलि मिलि पावत चैन कुचैन।
आनँदघन झर लग्यौ सदाई घर राखत रस-बढ़वार।
मौन धरैं मचि रह्यो चहूँ घाँ कान्है कान्ह पुकार॥

पूर्वराग] (१३९)

जेमन करिया कान्ह देखी, सेई करिबो।
प्रान-सखी बिसाखा बिनती मनैं धरिबो।
बंसी-धुनि सुनिबो या छबिकारी, मदन अनल जाताँ अंतरमा डारी।
स्यामे रमि रम कथा बूझिते ना पारी, आनँदघन व्रजमोहन बिहारी॥

(१४०)

गोकुल के कान्हा मेरो मन मोह्यौ।
डगर चली हौं जात सहज ही मो घाँ मुसकि मुसकि जोह्यौ।
अब तनकौ धीरज न रहत है अपनो सो बहुतै टोह्यौ।
रीझनि ल भिजई आनँदघन मुरला कीताननि पोह्यौ॥

(१४१)

हौं कहा करौं हे, गोकुल गाँव बसि कैसैं भरौं हे।
जमुना-तीर कान्ह बंसी बजावै,वाकी धुनि सुनि मेरो ज्यौ बौरावै।
त्रासै ननँदिया सासुरिया, काहू बिधि कछु न बसाय।
ताननि बाननि बेधे प्रान, और दसा कहा करौं वखान।
औरन सौं हौं करौं दुराव, उघरि परे पै कौन उपाव।
छाँह छुवन हूँ को न बनाव, गैल-गख्वारनि चलै चवाव।
मो ही जो गति लागी मोहिं, कै औरनि हूँ, बूझौं तोहिं।
जो कछु ही सो दई जताय, हा हा अब हित की सु बताय।
आनँदघन या विधि रह्यौ छाय,विरह-ताप डारत तन ताय॥

---

[१३८] सगबगे = सराबोर। रगमगे = लीन। [१३९] जेमन० = जिस प्रकार ष्ण को देखूँ वही करूँगी। छबिकारी = सुंदर। रमि० = रमणीय। बूझिते० = समझ नहीँ सकती। [१४०] डगर = मार्ग। मो घाँ = मेरी ओर। अपनो = अपने भरसक बहुत यत्न किया। पोह्यौ = बेध दिया। [१४१] भरौं = दिन

गोपी-प्रेम] (१४२)

लई कन्हैया ने हौ घेरि।
खोरि साँकरी माँझ सजौटैं आय गयौ कितहू तें हेरि।
कौरि भरी औ धरी औचकाँ अकेली काहि सुनाऊँ टेरि।
आनँदघन घुरि सराबोर करि पठई घर लौं निपट लथेरि॥

प्रिय-प्रतीक्षा] (१४३)

हो जी साँवला थे तो भला विष बसाया।
ब्रजमोहन आनँदघन ऊभी ऊभी बाट डीकाँ थे ओठे भर लाया,
नहीं आया, परचाया॥

वृंदावन] (१४४) [सारंग, चौताल

यह वृंदावन, यह जमुना-तीर, यह सारँग राग।
यह भाग-भरी भूमि, यह तरु-लता भूमि, ये विहंग बड़भाग।
राधा-मोहन को सुहाग-बाग।
याकी लहलहानि याही मैं पैयत सींच्यौ आनँदघन अनुराग।
याहि चाहिबो आँखिन को फल समझति स्यामा-स्याम
जे नित सेवत हैं करि जाग॥

युगल-विहार] (१४५)

अतिसुगंध मलयज घनसार मिलाय, कुसुम-जल सौं छिरकाय,
उसीर-सदन बैठे मदनमोहन संग लै राधा प्रानप्यारी रति रंगनि।
जमुना-तीर बानीर-कुंज, मंजु त्रिविध पवन सुखपुंज,
परसि रोमांच होत छबीले अंगनि।
वृंदावन-संपति दंपति विलसत हुलसत ऐसें अपनी भरि भरि उमंगनि।
आनँदघन अभिलाष भरे खरे भीजे संगम-रससागर की अतुल तरंगनि॥

बिताऊँ। ताय डारत = जला डालता है। [१४२] माँझ० = संध्या होते ही। कौरि = (क्रोड़) गोद। औचकाँ = अचानक। लथेरि = दलमलकर। [१४३] थे = आप। ऊभी = खड़ी। बाट० = मार्ग जोहती हूँ। ओठे = वहाँ। परचाया = वहीं परच गए। [१४४] जाग = जागरण। [१४५] मलयज =

पूर्वराग] (१४६)

एक ही बगर बसत बनमाली पै मेरी आली आँखि लौं आँखि न दीसत।
हित जताय चित कठिन कियौ री अधिक बधिकहूतें प्रान परेखनि पीसत।
निकट आय मनभायो करत किन, दूर ते क्यौं बिष सरनि कसीसत।
आनँदघन सब बिधि वे सुखी रहौ निसिदिन जात असीसत॥

वेणुवादन] (१४७) [रूपताल

हौं कहा करिहौं मेरी दैया मोहन-बँसुरिया बजी है।
मनहि घुमावत तन बौरावत बैरहि लैन सजी है।
लाज-लपेटी कौ लौं रहियै धुनि धीरज की करत धजी है।
आनँदघन रस-प्यासनि त्रासनि अकि कोऊ अबला न लजी है॥

गोवर्धन-प्रशस्ति] (१४८) [झपताल

गिरिराज कंदरा-मंदिर अमंद अति मंदार-तरुवृंद-आवृत बिराजै।
सुख-सेज सौरभ सकल सौंज अनुकूल
अनुचर-निकर वर प्रमोद सौं साजै।
कृस्न वृषभानुजा-संग विहरत जहाँ
समै-रुचि साधि कै करत हित-काजै।
जयति गिरिनाथ व्रजनाथ हिय
हाथ किय आनँदघन सुजस-दुंदुभी बाजै॥

वृंदादेवी-स्तुति] (१४९) [चौताल

वृंदादेवी वृंदावन-सेवी राधा-मोहन की हितकारिनि।
नित नित चित-चिंतन-फल दै दै रिझए भिजए विहारी-विहारिनि।
मोहिं मिली महामंगल-स्वामिनि निज बनवास-आस-पन-पारिनि।
याहि मनाऊँ या गुन गाऊँ आनँदघन रस रसनैं प्याऊँ
सब ही विधि है अंतर की ताप निवारिनि॥

चंदन। घनसार = कपूर। उसीर = खस। बानीर = बैंत। [१४६] कसीसत = खींचते हैं। [१४७] धजी = धज्जी, टुकड़ा। अकि = यों कि। [१४८] मंदार = कल्प-वृक्ष। आवृत = घिरा। सौंज = सामग्री। निकर = समूह। समै० = समयानुकूल

श्रीराधा-चरण] (१५०)

श्रीराधा-चरन करि मन ! मेरे बंदन।
मोहन-मधुप भर्‌यौ अभिलाषनि स-हित लेत मकरंदन।
बन-अवनी रवनी-सिर-मंडन जगमगात दुति उदित अमंदन।
बेद पपीहा लौं आनँदघन रटत निरंतर छंदन॥

पूर्वराग] (१५१)

जब जब सुधि आवै मोहन बनवारी की तब तब मन बन-
तन निकसि जाय।
डरी रहत परबस हौं घर मैं यासौं यौं न बसाय।
मुरली-भनक इते पै सतावै आनि हाथ होति अनपाय।
बिरह-घाम ब्यापत अति मो पर आनँदघन मँडराय॥

श्रीकृष्ण-स्तुति] (१५२)

सरनागत स्वामी, सरबदयाल अंतरजामी।
जिन जिन जहाँ जहाँ सँभारे तहाँ तहाँ धाए कृपानिधि गरुरगामी।
मोसौं न और अधमन में दूसरो कपटी कुटिल कामी।
अतिनामी आनँदघन अघ-ओघ-बहावन
सुदृस्टि-जिवावन बेद भरत हैं हामी॥

वेणुवादन] (१५३)

निकसि निकसि मन तन तें बन-तन कौं जाय हाय याहि कहा बनि आई।
कबहूँ कबहूँ मुरली की टेर सुनि आवत बाहिर हाय यौं बौराई।
घर मैं रहै याकौं घर बन ठहर्‌यौ सासु ननँद न्याय रहत रिसाई।
आनँदघन-हित अँसुवनि भीजी सोचनि सूखति मेरी माई॥

रुचि। [१४६] पारिनि = पालनेवाली। [१५०] स-हित = प्रेमपूर्वक। बन० = वनभूमि में। रवनी० = रमणी श्रेष्ठ राधिका की (द्युति)। अमंदन = परिपूर्ण। [१५१] तन = ओर। डरी० = पड़ी रहती हूँ। अनपाय = दुष्ट। [१५२] सरब = सर्व। सँभारे = स्मरण किया। नामी = प्रसिद्ध। अघ० = पापसमूह। हामी = स्वीकृति। [१५३] बन० = वन की ओर। न्याय = उचित ही। [१५४]

पूर्वराग] (१५४) [मूलताल

तुम सौं लग्यौ है सनेहरा।
रूप-उज्यारे प्राननि प्यारे ब्रजमोहन दृग-तारे,
कह्यौ न परत कछु रह्यौ न परत है सह्यौ न परत छिन छेहरा।
उघरि उघरि अति बरसन लाग्यौ अचरज को यह मेहरा।
आनँदघन दिन-दूलह तुमहूँ बाँधौ जू पन-सेहरा॥

(१५५) [तालजात्रा

न रहै मेरो मन बिन देखें ब्रजमोहन उजियारे।
आनँदघन रसपान करन कौं प्रान-पपीहा निसिदिन रटत बिचारे॥

गोवर्धन-पूजन] (१५६) [मूलताल

महाराज ब्रजराज पूजि गिरिराज परम आनदे।
बल मोहन लै संग रंग सौं दाहिनै दै दै नंदे।
गोपी-गोप-समाज भाव भरि फूले फिरत सुछंदे।
जय जय धुनि आनँदघन गरजनि सुनि मघवा-मद मंदे॥

अभिलाष] (१५७) [इकताल

परौ जौ ब्रज-रज-परस-सवाद।
ब्रजमोहन की चरन-धरन छबि लोचन लहै प्रसाद।
प्रान पोष पाइहै तबहीं सुनिहै मुरली-नाद।
आनँदघन झर लगै निरंतर बढ़ै प्रेम-उनमाद॥

चेतावनी] (१५८) [पूरबी, झपताल

सुमिरन करि रे मन सार, यह सब धोखा है संसार।
हरिचरनन चिंतवन करि निरंतर जिन ही लावै बार।

सनेहरा = प्रीति। छेहरा = वियोग। मेहरा = मेघ। दिन० = प्रतिदिन दूल्हा, नित्य दूल्हा। पन० = पन का मौर (मुकुट)। [१५६] ब्रजराज = नंदराय। बल = बलदाऊ। नंदे = प्रसन्न हुए। सुछंदे = स्वच्छंद। मघवा = इंद्र। मंदे = धीमा। [१५७] परौ० = व्रज की धूल के स्पर्श का सुख मिले। [१५८]

छिनहीं छिन जात बै बीति यौं चेति तू कौन काको बंधु कैसो परिवार।
आनँदघन-चरित अमृत-रसधार करि पान ह्वै अमर निरधार॥

शिव-स्तुति] (१५६) [चौताल

नाद-महंत गिरिजा-कंत दीनन के दयावंत।
तिहारी कृपा तें निसिदिन गाऊँ श्रीहरिगाथा जैसे गाय आप संत।
बरदराज सब काज-सँवारन मंगलमूरति अनघ अनंत।
आनँदघन कौं ब्रजजीवन-त्यौं सरस राखियै जानि आपनो जंत॥

पूर्वराग] (१६०) [इकताल

गुजरिया गुपाल के रंग बीधी गोहन लागियै डोलै।
करति नहीं कुलकानि तनकहूँ जोबन-रूप-छकी
सु गुमान भरियै न बोलै।
ज्यौं ज्यौं चलत चवाव चहूँ दिसि त्यौं ही त्यौं रस-सिंधु कलोलै।
आनँदघन मुखचंद निहारै चातक-चोप चकोरनि टारै
अति अनुरागहि तोलै॥

नयनोक्ति] (१६१) [चौताल

अरी मेरी अँखियनि बानि परी मोहन-मूरति देखें विन न रहति।
सब मिलि देत बहुत विधि सिख सखी ये अमैंड़ तनकौ न गहति।
कहा करौं कैसें करि रोकौं उमगि उमगि काहू त्यौं न चहति।
आनँदघन रस भीजी रीझी औसेरनि जल बहति दहति॥

पूर्वराग] (१६२) [तालजात्रा

मेरो मन मेरे हाथ नहीं कहा करौं री बीर।
ब्रजमोहन के बिछुरन की अलि निपट अटपटी पीर।

सार = तत्त्व। जिन ही० = देर मत कर। बै = वयस्। [१५६] नाद० = नाद-के सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता। अनघ = निष्पाप। जंत = (जंतु) जीव। [१६०] गुजरिया = (गुर्जरी) गोपी। बीधी = (बिद्ध) रँगी। कलोलै = लहराती है अर्थात् स्नान करती है। तोलै = अर्थात् साधती है। [१६१] अमेंड़ = मर्यादा को न माननेवाली। न चहति = नहीं देखती। औसेर = प्रतीक्षाजन्य पीड़ा।

कैसें दुराऊँ ए सखी* नैननि भरि भरि आवत नीर।
आनँदघन पिय के बिन देखें† प्रान-पपीहा अधीर॥

उपालंभ] (१६३)

निपट निठुर तिहारी बानि, दैया तुम सौं यौं ही करी पहचानि।
ब्रजमोहन मोहे न कहूँ पै कहा जानौ अकुलानि।
हम भोरी तुम चतुर सनेही कौन रची बिधना यह आनि।
आनँदघन ह्वै प्यासनि मारत प्रान-पपीहनि जानि॥

विरह-व्यथा] (१६४)

सुजान तोरे देखन कौं मेरो जिय तरसै घरी घरी छिन छिन बल ना।
घर अँगना न सुहाय हाय अब कहा करौं क्यौं भरौं तोरे बिन कल ना॥

(१६५) [चौताल

चटपटी लगाय गए पिय मन कौं कहा करौं बातनि मोह बढ़ाय।
भूलें सुरत्यौ लई न बिसासी कासौं कहौं दुख हाय।
रसलाभी ललचाय रहे कहुँ ब्रजमोहन हौ भँवर-सुभाय।
आनँदघन-हित प्रान-पपीहनि निसिदिन रटत पिहाय॥

वसंतागम] (१६६) (सारंग,चौताल

लहकन लागी री वसंत-बयार‡ मन बनवारी लौं लग्यौ बहकन।
जानौं ना आगैं कह करिहै जब लगिहै पलास-बन दहकन।
मदन मरक कबहूँ कि काढ़िहै औरै पुहुप लागे बरन बरन महकन।
आनँदघन पिय कित अब छाए इत कुंज कुहू लागी गहकन॥

जल = आँसू। [१६२] बीर = सखी। [१६४] बल० = शक्ति नहीं रह गई। कल = चैन। [१६५] सुरत्यौ० = सुध भी न ली। [१६६] लहकन = चलने लगी। मरक काढ़ना = बदला लेना। कुहू = कोयल की ध्वनि। गहकन लागी =

* धीरज धरिहौं। † ब्रजमोहन जानी। ‡ बहार।

उत्सुकता] (१६७) [मालव, मूलताल

बन तेँ ब्रजमोहन आवन की बेर भई है।
गोधन-धूरि-धुधरी देखेँ आँखिन जोतिन जोति नई है।
मुरली-धुनि सुनियत अति नियरेँ बिरह-बिथा दुरि दूरि गई है।
आनँदघन पिय-आगम उलही उर अभिलाष-जई है॥

पूर्वराग] (१६८)

दुरजन बाहिर गुरजन घर मैँ।
लाल गस्यारैँ बोल सुनायौ प्रान परे अरबर मैँ।
निपट अटपटी पीर सखी री को पावै या मरमैँ।
आनँदघन ब्रज रस-झर लायौ हौँ ही बिरहा-झर मैँ॥

(१६९) [गौरी-ईमन, कपोतताल

अँखियाँ उठि उठि उठि दौरैँ बन की ओर आली।
भोर के नंदकिसोर गए इहिँ ओर सु तब तेँ लगी है आवन-आस।
सुंदर बदन-छबि-पान करन कौँ बाढ़ी है
अधिक प्यास मोहूँ तेँ भई अति उदास।
कहा धौँ अबार भई दई अब लौँ ज्यौँ त्यौँ करि
राखी इनकी दसा देखेँ आवत त्रास।
वे आनँदघन हैँ हो भट्ठ, को लहै उर की गति गौरी गावैँ बिभास॥

चैतन्य-प्रशस्ति] (१७०) [इकताल

श्री चैतन्य दयानिधि धीर।
कलिकाल-मलीन-दीनजन-पावन-करन परम गंभीर।

भरने लगी। [१६७] बेर = वेला, समय। उलही = निकली। जई = अकुर। [१६८] गस्यारैँ = गली मैँ। अरबर = मुश्किल। बिरहा० = विरहाग्नि। [१६९] अबार = देर। भट्ठ = वधू, सखी। गौरी = गौर्डी, एक रागिनी जो रात के पहले पहर मे गाई जाती है। बिभास = एक राग जो सबेरे गाया जाता है। [१७०] नाव = नाम; नौका। पठए० = पार किया। अभंग = निरंतर। बिभंगित = तरंगित।

पूरनचंद नंदनंदन को उदै सदा उमगनि की भीर।
बहुत नाव चढ़ाय बहुत जन प्रेम-मगन करि पठए तीर।
भाव-तरंग अभंग विभंगित महा मधुर रस-रूप सरीर।
निज जन रतन-जाल जुत राजत धुनि हुंकार उसास समीर।
त्रिबिध ताप तें जरत जीव जे सीतल किये परस-पद नीर।
करुना-द्रस्टि-बृस्टि सों सींचै जय जय जय आनंद-मुदीर॥

पूर्वराग] (१७१)

आई री बहुरि दुखदाई साँझ।
दिन देखन कौं दाँव दूरि तें बनत बनवारी सौं
अब ताहू मैं परी है लाँझ।
उनहूँ कौं उदेग मोहीं सौं भाँवरि भरत गलानि माँझ।
छाँह-छिवन दूभर आनँदघन इतर देहरी करत झाँझ॥

वेणुवादन] (१७२)

मुरली मैं कौन ठगौरी है।
स्रौननि सुनी तनक भनकौ जिन सुधि बुधि तजि भई बौरी है।
उठि उठि चलत न रहत भवन पग लागो देखन की ढौरी है।
आनँदघन पिय की प्यारी यह हम ही सौं अति खौरी है॥

(१७३) [मूलताल

मुरली-धुनि सुनैं कान्ह रट लागी मेरी रसना कैं।
जब तें गवने बनवारी तब तें ये अँखियाँ
अवसेरनि इकटक उत ही भाँकैं।

परस० = चरणोदक के स्पर्श से। मुदीर = (मुदिर) बादल—आनंद के बादल (श्रीचैतन्य), आनंदघन (कवि) [१७१] लाँझ = (लघन) बाधा। छिवन = छूना। दूभर = कठिन। इतर = और, प्रिय। देहरी = देहली के पास, निकट ही। झाँझ = शोर। [१७२] ढौरी = धुन। खौरी = बुराई। [१७३] कैं = के, को। अवसेर = प्रतीक्षाजन्य पीड़ा। साध = लालसा। कानन० =

मुरली-धुनि सुनिबे की साधन प्रान बसेरो कानन घाँकैं।
वे आनँदघन इत चित चातक को जानै कित कौं धावैं
अरु आवैं कित ह्वै मारग सूधै बाँकैं॥

चेतावनी] (१७४)

मन! बन तें बाहिर जिन जाय।
राधा-हिलन-मिलन-सुख स्यामहि पुरवत यहै बनाय।
दिनहीं धरि राखत उर-अंतर, निसि तें निपट सहाय।
तरु-तरु लता-लता मैं दरसत भयौ सुदंपति-भाय।
याही मैं भाँवरी भयौ करि विनवत हाहा खाय।
आनँदघन सों चातक-पन गहि रस लै प्यास बढ़ाय॥

वन-विहार] (१७५) [इकताल

गोकुल घाँ के ग्वार, डगर बताइ रे।
हौं भूली बिछुरि परी सहचरिन संग तें डोलत बन किललाइ रे।
साँझ निकट घर दूरि साँवरे हियरा सोच सताइ रे।
सुनत ही झूमि आए आनँदघन दीनी गैल जताइ रे॥

रूप-माधुरी] (१७६) [तालजात्रा

अरे अरे साँवरे, तैं कहा टोना कीनौ।
मुरली माँझ ठगौरी गौरी पूरत ही मेरो मन हरि लीनौ।
केसरि-खौरि घूमरे नैना बिथुरी अलक बदन रँग-भीनौ।
रीझनि लै भिजई आनँदघन तो पर सरबसु वारि दीनौ॥

विरह-व्यथा] (१७८) [मूलताल

सहोणी! मैं कद लगि इस्क छिपावाँ, सहोणी!
गुज्झे घाव दिलाँ दे अंदर कित बल कूक मचावाँ।

वन की ओर। [१७४] बन = वृंदावन। पुरवत = पूरा करता है। बनाय = भली भाँति। निसि तें = रात होते ही। सहाय = सहायक। हाहा खाय = दीनता दिखाकर। [१७५] घाँ कैं = ओर के, वाले। किललाइ = चिल्लाकर। [१७६] गौरी० = गौडी रागिनी बजाते ही। घूमरे = नशीले। [१७७] सहोणी =

वंसीवाले नैं घाइल कीती दारू दरसन पावाँ।
वेखे बाजू जिंद नराँ दी, किस मिस इस परचावाँ।
वे गहराँ दी गल्लाँ आनँदघन कैनूँ आखि सुणावाँ॥

चेतावनी] (१७८) [झपताल

हरि-सरन तकहि मन ! मरन-भय भाजै।
हरि-सरन प्रान कौं परम अवसान-पद जहाँ सुख संपदा संतत विराजै।
धाम धामी और दास-सेवा-समय एक रस निरद्वंद दुंदुभी बाजै।
देस अद्भुत महा विभव कहियै कहा
आनँदघन घमड़ि अमित छवि छाजै॥

पूर्वराग] (१७९) [मूलताल

मेरी तिहारी लगनि, अनसहन सहि न सकैं बाम।
राई लोन भरौं तिनि आँखिनि जिनहिँ न देख्यौ भावै यह धन-धाम।
मोहिँ तुम्हैँ धुर को सँजोग-सुख थिर चिर रहौ आठहू जाम।
आनँदघन बरसौ सरसौ हित, तेई दुहेली दहौ दुख-घाम॥

विरह संदेश] (१८०) [धनाश्री, झपताल

ऐसो को जो तिहारो गुन गाय जानै, गाय जानै तुमहिँ रिझाय जानै।
दीन रसना जौ कछु वखानै तौ कृपा के प्रसाद कौं पाय जानै।
कृस्न कमनीय कोविद करुन जानमनि तुम बिना कौन ये भाय जानै।
प्रान-चातकन के आनँदघन सुनौ बिरही विचारो बराय जानै॥

सखी। कद० = कब तक। छिपावाँ = छिपाऊँ। गुज्झै = (गुह्य) गहरा। कित० = किस ओर। कीती = की। दारू = दवा। वेखे = देखे। बाजू० = जीवन के अवलंब। नराँ दी = मनुष्यों की। गहराँ दी = हृदय की गहराई से निकली हुई। गल्लाँ = बातें। किस० = किस बहाने से इसे बहलाऊँ। कैनूँ = किसको। आखि = कहकर। सुणावाँ = सुनाऊँ। [१७८] अवसान० = अंतिम स्थान। [१७९] अनसहन = न सहनेवाली। धुर को = अत्यंत। तेई० = वे ही अभागिनें दु:ख की धूप से जलें (जिन्हें मेरी तुम्हारी प्रीति नहीं रुचती)। [१८०]

विरही-विनय] (१८१) [इकताल

हमारी इतनी विनती चित धरियै।
अपने दासनि के दासनि कौं काहू विधि कछु करियै।
सुनहु रसीले कान्ह छबीले तनिक दया त्यौं ढरियै।
आनँदघन ह्वै प्रान-पपीहैं पालि पोखि लै भरियै॥

तीव्र राग] (१८२) [मूलताल

लगै जौ चटक-चोप की चोट।
तौ क्यौं सही परै प्राननि के प्रानन सौं पल ओट।
पाथर हू तैं खोटे जड़ मेरे मन ही की कछु खोट।
तौ लौं कहा होय नहिं जौ लौं कसकै लोटक पोट।
स्याम सजीवन की बातैं सुनि सुनि चेतन हूँ की टोट।
चरन-धूरि ब्रजगोरिनि की जाचत है निलज निघोट।
बृंदावन रस भिदै न याके कपट कुटेव अगोट।
द्रुम-बेलिन लखि फुरै सु कैसैं ललित रँगीली जोट।
भरि दै री जमुना करुना करि इहि रस आसा-ओट।
घटिहै कहा कृपा-कादंबिनि चारिक छीँटनि छोट॥

पूर्वराग] (१८३)

बरजति बरजति इन अँखियन ब्रजमोहन मुख चाह्यौ।
धीरज धन दै हाथ पराये बिरह के विषहि बिसाह्यौ॥

बरराय० = केवल बकना जानता है। [१८१] दया० = दया की ओर ढलिए, दया करने में प्रवृत्त होइए। [१८२] चटक० = तीव्र उत्कंठा। प्राननि० = अर्थात् प्रिय। पल० = क्षण भर का वियोग। खोटे = बुरे। खोट = बुराई, अपराध। कसकै० = लोटपोट हो जाने की कसक न हो। चेतन० = चेतना की भी हानि हो जाती है, चेतना जाती रहती है। निलज० = अति निर्लज्ज। अगोट = आधार। जोट = जोड़ा। आसा० = आशा और प्राप्ति के बीच का व्यवधान। कादंबिनि = मेघमाला। छोट = छोटे, लघु। [१८३] मुख० = मुख

उनहिं कहा कहि दोष दीजियै इनहीं उरझनि नेह निवाह्यो।
मन गोहन लगाय आनँदघन तन हूँ वन लैं गाह्यो॥

विरह-व्यथा] (१८४) [रूपताल

नदनंदन हिये मैं वसैं आखैं देख्यौई चाहैं।
चोप-चटपटी की गति अति ही अटपटी विन वानियै कराहैं।
दुसह दसा हौं ही जानति जैसें डूबति उछरति प्रीति-परेखनि गहिरे थाहैं।
वे आनँदघन प्रान-पपीहनि की सुधि भूले उनए कहूँ नए लाहैं॥

विरह-सदेश] (१८५) [भीमपाली,

तुम सन मोरी लगन लगी लला तुम विन रह्यौ न जाय रे।
घरी पल मोहिकाँ जुग सम बीतत वेगि सम्हारौ आय रे।
विरहा मोहिकाॅ अधिक सतावै कछु न बसावै हाय रे।
प्रान-पपीहा तरफरात हैं आनँदघन हौ सहाय रे॥

श्रीकृष्ण-गुण-गान] (१८६) [काफी, झपताल

गुन गाय लै गोकुलानंद के व्रज-सुख-कंद सुछंद के।
मंगल-मुकुट-मनि मनोरथ-कलपतरु उदार अति अद्भुत अमंद के।
सकल-संसार-स्तुति-सार मोहन महा सनक सनंद के।
ललित लीला-वलित संपदा-संकुलित अतुलित जस अमल जगवंद के।
क्रीड़त सदा सुहृद-संग जमुना-तीर लाड़िले जसोमति-नंद के।
कृपा-धन-मूल आनँदघन अनुकूल हरन द्वंद्व भ्रम-फंद के॥

प्रिय-मिलन] (१८७) [मूलताल

गोपाल प्यारे, भला किया।
खरी पियासी आँखडियानूँ जीय-जियावन दरस दिया।

देखना। विसाह्यौ = खरीदा। वन० = वन तक उन्हें खोजता फिरा। [१८४] नए० = नए लाभ के कारण। [१८५] मोहिकाँ = मुझे। कछु० = कुछ वश नहीं चलता। [१८६] अमद = श्रेष्ठ। सनक = ब्रह्मा के मानस पुत्र। सनंद = सनंदन (ब्रह्मा के मानस पुत्र)। वलित = युक्त। संकुलित = परिपूर्ण।

उमरदराज गरीबाँ दी बस्ती कीती महर सवाब लिया।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी कुरवानी मुख देखि जिया॥

उपालंभ] (१८८)

घनस्याम पियारे ये बातैं।
मन औरै मुख और बतावत छाँड़त नाहिं कपट की घातैं।
काहू पै दिनहीं झूमत हौ काहू पै त्यौं चितवौ रात।
रसिक छैल रिझवार नित नए ये छल बल सीखे हैं कातैं।
करत फिरत बिसवास भोरिनि के, चतुर-सिरोमनि हौ तातैं।
उघरि उघरि बरसत आनँदघन बनि आई तुम ही मँडरातैं॥

श्रीराधा-चरण] (१८९)

मृदु तरवनि मैं लसति ललाई।
झमकि जहाँ पग धरति लाड़िली मनहु अरुनता आनि बिछाई।
महा रुचिर वर गोरी गुलफनि मुक्तावलि फबि रही सुहाई।
संभ्रम होत निरखि नैनन दुति झलमलाति अति अद्भुत झाँई।
जगमगि रह्यौ सुरँग जावक पै सरस रसिक रचना जु बनाई।
नवल अंग* की मंजु मयूखनि चहुँ दिसि खुलि खिलि रही जुन्हाई।
बिबिध न्यास अनयास प्रकासत नटनागर लखि लेत बलाई।
तब की कहा कहौं आनँदघन जब पिय-सँग निर्तति सुखदाई॥

पूर्वराग] (१९०) [मालकोस, मूलताल

सनमुख चाहन कौं चित चाहै लाज निगोड़ी रोकति आनि।
मोहन रूप माधुरी पान करन की नैननि बानि।

जगबंद = जगद्वंद्य। [१८७] खरी = अति प्यासी आँखों को। उमर० = लंबी उमरवाले। गरीबाँ = गरीबों की बस्ती पर। कीती = की। महर = कृपा। सवाब = पुण्य। कुरबानी = निछावर हूँ। [१८८] कातैं = किससे। [१८९] गुलफ = एँडी के ऊपर की गाँठ। न्यास = पैर रखने की क्रिया। लेत० = बलिहारी

* रुचिर नखनि।

घूँघट कानि करत त्यौं सजनी उपजी जिय मैं अति अरसानि।
रीझनि भिजए प्रान-पपीहा आनँदघन रसखानि ॥

विरह व्यथा] (१९१) [तालजात्रा

अरे हीरे! तो दरस कौं तरसै मोरा जियरा घरी पल।
आनँदघन छाय रहे कहुँ कासौं कहौं यह विथा न परै निसिदिन कल ॥

(१९२) [मूलताल

तिहारी बतिया उघरि परी,
हा हो स्याम उज्यारे काहे कौं सौं हैं खात।
व्रजमोहन आनँदघन प्यारे रस के लोभी लागी अनत झरी ॥

(१९३) [सोहनीताल

जिंद निमाणी! तपदी, सौं हैणा मुख - वेखलामी जानी।
व्रजमोहन बे-परवाह गुमानी वो वो वो तैंनूँ तैंनूँ तैंनूँ जपदी ॥

नयनोक्ति] (१९४) [पूरबी, धनाश्री

देखन को फल हो मोहन देखैं।
नातर खुली मुँदीयै कैसी आँखैं कौन धौं लेखैं।
कहा तिलौंछैं पौंछैं अँगौंछैं रचि काजर की रेखैं।
आनँदघन व्रजनाथ दरस बिन भीजी बरति परेखैं ॥

गो-दोहन] (१९५) [हमीर, रूपताल

दुहत मन गाय-दुहन के साथ, कान्ह छबीलो ग्वार।
हाथ दोहनी देत लेत* धीरज न रहत फिरि हाथ।
नई हिलग की चोप-चटकबस चितवनि ही मैं भरत बाथ।
आनँदघन यौं भिजवै रिझवै खिरक मैं गोकुलनाथ ॥

लेते हैं। निर्तति = नाचती है। [१९३] जिंद = जिंदगी। सौं हैणा = प्रिय। वेखलामी = दिखलाओ। तैंनूँ = तुझको। मुँदीयै० = मुँदी सी ही। तिलौंछना = तेल से चिकनाना। अँगौंछना = गीले कपड़े से पौंछना। [१९५] बाथ = अँकवार।

* लोटा।

मातृस्नेह] (१९६) [हमीर कल्याण, इकताल

जसोमति आरती उतारै उमगि आपनो ज्यौं वारै।
चित चढ़ि रही ललन की बन तें गोधन लै घर आवनि,
अति आरति सौं बदन निहारै।
लै बलाय, आँचर मुख पोंछति प्रेम-पुचकरनि बरसति प्यारै।
दूधनि भरी सपूती या बिधि आनँदघन-हित कान्ह पपीहै पारै॥

ब्रजदूलह] (१९७)

झुरमट लाग्योई रहै नँदरानी के आँगन।
ब्रज की नवल बधू रँगभीनी, मोहन स्याम चितै बस कीनी,
आवत मिस लै लै कछु माँगन।
कौ लौं दुरति सरक सनेह की हियरा बिध्यौ बिबस सर-साँगन।
दिन-दूलह आनँदघन पिय की भाँवरि घर घर, बँध्यौ परसपर काँगन॥

पूर्वराग] (१९८) [मूलताल

मेरे मन मैं मोहन-मृदु-मूरति गड़ी।
को पावै यह पीर अटपटी जिय की गति अति रति-जाग-जड़ी।
जौ लौं दुराय सकी तौ लौं निबह्यो अब न दुरति बनी कठिन बड़ी।
आनँदघन की घमड़नि उघरति तू हितू तातैं
तोसौं कहति, है यह निपट अड़ी॥

उपालंभ] (१९९) [रूपताल

उन्हैं कहा मेरी सी चटपटी है कान्ह सदा के निखरके।
वे रस-लोभी आहिँ पाहुने को जानै कै घर के।
अपनी गौं उठि गोहन लागत ब्रजमोहन हैं भरे छरबर के।
आनँदघन कहुँ अवधनि कौंधत कितहुँ बात के झरके॥

खिरक = गाय बाँधने का स्थान, गोठ। [१९७] झुरमट = भीड़। मिस लै = बहाना करके। सरक = मद्य का नशा। साँग = बरछी। काँगन = कंगन, कंकण। [१९८] जाग = जागरण अर्थात् आधिक्य। [१९९] निखरके = बेखटके रहनेवाले।

नयन-व्यथा] (२००)

तेरी सूरत देखिबे कौं मेरे लालची नैन भए।
तरसत बरसत रहत रैन-दिन ऐसी चाह छए।
अहो कान्ह तैं कहा कीनो जु दिखाइ हू न दीनो अए।
आनँदघन-हित प्रान-पपीहा, भरोसेँई गिधए॥

(२०१) [मूलताल

नैना तरसत हैं, पिय-मूरति देखन कौं।
मोहन-मुख-लालसानि उनए उघरे बरसत हैं।
लोक-लाज त्यौं तनक न ताकत अति ही अरसत हैं।
आनँदघन-हित प्रान-पपीहा पल पल तरसत हैं॥

युगल-प्रीति] (२०२)

ब्रजमोहन की प्यारी, तेरो भाग बड़ौ।
मुरली मैं तेरो गुन गावत जाकी धुनि मोहे जंगम जड़ौ।
तेरे लाड़ की कहा कहियै जाहि लाड़नि लाड़त अलकलड़ौ।
आनँदघन, पै तो हित चातक सौतिन के हियेँ साल गड़ौ॥

प्रेम-पीड़ा] (२०३) [इकताल

कठिन हिलग-पीर दैया कासौं कहियै।
बिन देखें मोहन-मुख माई रैनि-दिना दुख ही मैं दहियै।
नित जित तित छूछे चवाव सुनि सुनि सब ही के बोलनि सहियै।
आनँदघन पिय सौं जु भेंट तनकौ कहुँ होइ तौ कहा चहियै॥

(२०४) [मूलताल

भट्ू, निपट अजान इतौ हित की पीर न जानै।
ब्रजमोहन बहुनायक छैलवा मेरी सी मोसौं अरु
वाकी सी वाही सौं कपट अटपटी बतियानि ठानै॥

आहि = है। कै = कितने। छरभर = छलबल। बात० = हवा चलते ही। [२००] अए = अये, आश्चर्यबोधक अव्यय। गिधए = परचे हैं। [२०१] अरसत = अलसाते हैं।

उपालंभ] (२०५) [श्याम कल्याण, इकताल

अहो हरि हम सौं बतियाँ कब साँची बोलौगे।
कपटी कान्ह कौन दिन दैया मन की गुंजनि खोलौगे।
अवधिन बदि बदि आस बढ़ावत अपनी गौं इत उत डोलौगे।
आनँदघन पिय बरसि परेखनि छतियाँई छोलौगे॥

(२०६) [भूपाली

तिहारे देखे विना मैं कैसें भरौं दिन-रतियाँ।
कैसें मिलैं क्यौंऽब अनमिलैं तुम्हैं जो किये विरह छत छतियाँ।
काहे कौं मन मोहि लियौ तब कहि कहि कै हित-बतियाँ।
आनँदघन कितहू बरसौ पै इतहू लगी ओलतियाँ॥

पूर्वराग] (२०७) [पूरिया, मूलताल

तू नैक दरसन दे रे हे निरमोही नैन तपत हैं आज।
कहा करौं कछु बस न चलत मेरो बैरिनि भई यह लाज।
तन मन की गति भूलि जाति सब तनक सुनत बन बंसी-बाज।
आनँदघन-हित प्रान-पपीहनि रटना ही सौं काज॥

वेणुवादन] (२०८) [ईमन

मेरी आली री मोहिं सुनत बाँसुरिया
सुधि न रहै तन की तनकौ तेरी सौं।
चकित होति मुख-जोति पै, रहि न जाय,चलि
उन पै,घर मैं परी रहति गुरुजन-घेराघेरी सौं।
कैसैं करियै कौ लौं भरियै कुल की कानि जँजर-जेरी सौं।
आनँदघन रसपान करन कौं प्रान-पपीहा तरफरात हैं उरभेरी सौं॥

---

[२०२] अलकलड़ौ = अलकलड़ेता, दुलारा। [२०५] गुंज = गाँठ। [२०६] ओलती = ओरी, वह छोर जहाँ से छप्पर का पानी चूता है (यहाँ 'आँसू की झड़ी')। [२०७] बाज = बजना, ध्वनि। [२०८] जँजर = (जर्जर) पुरानी और शक्तिहीन। जेरी = रस्सी । उरझेरी = हृदय की व्याकुलता। [२०९]

ललिता] (२०९)

अनखि अनखि ज्यौं ज्यौं बोलै री लड़ीली
त्यौं त्यौं मोहिं लगति अति नीकी।
मो सी मनमेलू सौं रूसी रति-अचगरी निपट खुटाई ही की।
हौं तेरे नैननि बैननि ह्वै समझति सब जु कसक है जी की।
आनँदघन घुरि घुरि ढुरि ढुरि भिजई
रिझई तू सुधि करि लै सीबी की॥

युगल-जोड़ी] (२१०) [इकताल

कान्हर है गोकुल को, राधा बरसानेवारी।
है हो या ब्रज की जीवनि यह जोरी सरस बिरंचि-सँवारी।
धुर की लगनि लगी अति गाढ़ी बाढ़ी चोप-चटक जो प्यारी।
नवल नेह रस-झर आनँदघन लाग्यौइ रहत सदा री॥

पूर्वराग] (२११)

लालची नैन हमारे देखें बिन न रहैं।
अपनो सो बरजति बहुतेरो ये तनकौ न गहैं।
मन हरि-हाथ दियौ लै इनहीं अटपटि चोप चहैं।
आनँदघन रस चाखि बस भए सबके बोल सहैं॥

विरहिणी] (२१२) [तालजात्रा

मैं कैसैं भरौं कहा करौं प्यारे ब्रजचंद बिना।
रैन अँधेरी बिरह सतावै कल परै नहीं एकौ छिना।
क्यौं हूँ क्यौं हूँ होत सबारो बाट निहारौं सबै दिना।
आनँदघन पिय भूलेहू लई प्रान-पपीहनि की सुधि ना॥

लड़ीली = लाड़िली, आनबानवाली। मनमेलू = मनमिलानेवाली, हितू। अचगरी = छेड़छाड़। सीबी = शीत्कार, सी सी। [२१०] धुर की = चरम सीमा की। [२११] बोल = बात, व्यंग्य। [२१२] भरौं = समय काटूँ।

पूर्वराग] (२१३)

मोहन सोँ नैना लागे घूँघट की सुधि काहि रही है।
चितवत चकित रहत इत उत ही निसदिन इकटक टेक गही है।
इनकी पीर न पावै कोऊ, अंजन-रंजन एक वही है।
आनँदघन हित तरसत बरसत लोकलाज कुलकानि वही है॥

पूर्वराग] (२१४)

अणी मिठबोलणा यार निमाणी दा।
इत वल आँवदा कूक सुणाँवदा महरम-हाल दिवाणी दा।
मुरली वजाँवदा इस्क जगाँवदा गाहक हत्थ-बिकाणी दा।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारिया मुझ बंदी कुरवाणी दा॥

(२१५) [मूलताल

तू की जाणदा बे हाल निमाणिया ब्रजमोहन आनँदघन वेपरवाह।
ताती वात न लागै तैनूँ प्यारे बुरी वे गरीवाँ दी आह वाह वाह॥

(२१६) [चौताल

अरी मेरे प्रानन के प्यारे हैं बनवारी।
स्याम रूप नैनन के अंजन बानिक पै हौं वारी।
पल पल कोटि कलप सम बीतत लागति दसौं दिसा अँधियारी।
आनँदघन रसपान करन हित चित चातक-व्रतधारी॥

कुँवर कन्हैया] (२१७)

वारी हौं वारि डारी आछी वनक पै नंद के कुँवर कन्हैया।
कोटि काम हू तें अभिराम ललित सलोनी मूरति आँखिन जोतिजगैया।

सवारो = सवेरा। [२१३] अंजन० = इन नेत्रों के लिए उनके दर्शन अंजन की भाँति रंजनकारी हैं। [२१४] अणी = अरी। वल = ओर। महरम-हाल० = मुझ दीवानी के हाल से वह सुपरिचित है। प्यारिया = प्यारा। [२१५] की० = क्या जानता है। ताती० = गरम हवा। गरीवाँ० = गरीबों की

स्रौननि सुधा पिवाय जियावत मुरली-मधुर-तान-सुनैया।
प्रान-पपीहनि हित आनँदघन नित हौ रस-बरसैया॥

पनघट-लीला] (२१८) [रूपताल

ए गागरी भरन गई जमुना-तीर नीर भरन हूँ न पाई आई धीर रितै।
दीठि परि गयौ कान्ह अचानक ता दिन तें नहिं चैन बितै।
बीर कहा कहौं पीर मरम की चितवनि मैं कछु गयौ चितै।
अब आनँदघन पिय सौं मिलौं, ज्यौ सुख पावै ज्यौं इतै॥

पूर्वराग] (२१९) [मूलताल

मोर मन बाँधिलवा है तोरे गुन छैल छबिलवा रसिक रसिलवा।
आनँदघन उजियारे ब्रजमोहन छबि-मतवारे हँसि नैन-बान भरि साँधिलवा॥

(२२०)

मोरे मितवा तुम बिन हा रे रह्यौ ना जाय।
बिषम बियोग जरावै जियरा हा रे सह्यौ न जाय।
निपट अधीर पीर-बस हियरा हा रे गह्यौ न जाय।
आनँदघन पिय बिछुरन को दुख हा रे कह्यौ न जाय॥

राधा रानी] (२२१) [तालजात्रा

सुहागिनि राधा रानी।
स्याम सुँदर ब्रजराज लाड़िलो जाके बस अभिमानी।
सोभा को सिर छत्र बिराजै बृंदावन रजधानी।
जीति लियौ कियौ रूप-पपीहा आनँदघन रसदानी॥

पूर्वराग] (२२२) [इकताल

हेली मन हरि लीनौ इन साँवरे सलोने बिन देखें रह्यौ न जाय।
सुंदर बदन-सुधा-पान चसकें चख रहे लुभाय।
कहियै कहा महा दहियै दुख पल पल कलप बिहाय।
प्यासे प्रान रहत चातक लौं आनँदघनहिं मिलाय॥

आह बुरी होती है। [२१८] आई० = धैर्य खो आई। नहिं० = चैन नहीं है। ज्यौ = जी, जीव। [२१९] बाँधिलवा = बँधा हुआ। रसिलवा = रसीले।

श्रीकृष्ण-विरह] (२२३) [मूलताल

कैसें कैसें मन बहराऊँ, गहत गहत न रहत है।
लोनो मुख सुखनिधि देखैं विन आँखिन कहा दिखाऊँ।
सुनि सजनी राधा के विछुरे विरह विकल आपनपौ न पाऊँ।
दरस-बरस आसा आनँदघन झरै भरोसैं छाऊँ॥

पूर्वराग] (२२४) [तालजात्रा

तुम सनु मोर मनुवा है, लागि रही लौ ललना।
रूप-उजियारे निहारे विना सु परै निस-द्यौस कल ना॥

युगल-जोड़ी] (२२५) [ईमन, मूलताल

रँगीली जोरी की हौं बलि जाऊँ।
ललित रास-गुन कदम-मूल वन घर है जाको जमुना-कूल सुठाऊँ।
गोरी साँवरी दृगनि भाँवरी निरखौं सुखनि सिहाऊँ।
आनँदघन जीवन-धन दामिनि राधा-मोहन नाऊँ॥

वृंदावन-महिमा] (२२६)

बृंदाबन-महिमा कौन बरनि सकै जाहि जानत एकै मोहन।
मंजुल द्रुम-बेलिन दल-फूल-फलनि मैं दरसति राधा-सूरति,
यह सुख समझत जाके जोहन।
श्रीपद-परस सरस नित हितमय अद्भुत, भाग-निकाई गोहन।
दंपति चातक - जुगल आनँदघन करत मनोरथ - दोहन॥

व्रजरस-रहस्य] (२२७) [चौताल

को पावै हो व्रजरस का भेद।
जानत पै न बखानत मन ही मन अनुमानत वेद।
श्रीगोपी-पदरज प्रसाद-बल अगम सुगम
और साधन सकल ये खेद।

साँधिलवा = साधनेवाले। [२२४] सनु = साथ। [२२५] जोहन = देखने से। [२२६] मनोरथ० = अभिलाषा की पूर्ति। [२२७] ढौरि = ढुलाकर। [२२८]

आनँदघन याही रस भीजि रीझि पीत-बसन-छोर
ढौरि सुखवत सुख-स्रम-स्वेद ॥

भक्त का अभिलाष] (२२८)

मोकौं सरन रहौ राधे ये चरन तेरे लहौ मन-नैन इनहीं मैं बसेरे।
झलकत रुचि रुचिर ललकत पिय-मन चोपनि एकटक हेरे।
परसन कौं तरसत रहत नागर भागनि बल अभिसरत सु नेरे।
आनँदघन श्रीवृंदावन-अवनी-मंडन जीवन-धन हैं मेरे ॥

मानवती] (२२९)

कौन हठ परी है, हौं न जानौं, प्रानप्यारो कब को हा हा करत।
तेरो ज्यौ तनक कठोर मैं कबहुँ न पायौं दैया अबकैं न ढरत।
हौं हूँ फिरि तोसों न बोलिहौं, मो बिन कौनहु सौं काज न सरत।
आनँदघन अरु तो सी निठुर सौं पपीहा
प्यासन मरत यह दुख क्यौं हूँ सह्यौ न परत ॥

यमुना-माहात्म्य] (२३०)

आनँद-मंगल-दाता दरसन सूरसुता को।
जब जब देखियै नव नव लागति अदभुत रूप जु ताको।
हरि-राधा सहचरि-समूह मिलि विहरत कूल कुतूहलता को।
रसना छाय रहौ आनँदघन जस याकी प्रभुता को ॥

वेणुवादन] (२३१) [मूलताल

नंद महर को कान्ह अचगरैं मुरली-टेर सुनाय ठगी हौं।
धरम धीर कैसैं धौं साधौं सुर के संग लगी हौं।
मोहन-मूरति आँखिन आड़ी, याही तें निस-द्यौस जगी हौं।
आनँदघन रीझनि भरि भिजई चेटक-चटक दगी हौं ॥

अभिसरत० = निकट आते हैं। [२२९] हा हा० = दीनता प्रदर्शित करते हैं। अबकैं० = इस बार ढलता ही नहीं। [२३०] सूर० = यमुना। कुतूहलता० = कुतूहल के लिए। [२३१] अचगरैं = नटखटपने से। आड़ी = अड़ गई

पूर्वराग] (२३२)

स्याम सलोने सौं दृग अटके रोके रहत न घूँघट-पट के।
रूप-रसासव छके न मानत बहुत भाँति हौं हटके।
मोहूँ अपबस किये नचावत गोहन मोहन नागर नट के।
आनँदघन इनकौं सिख ऐसें जैसे तुष लै फटके॥

श्रीराधाचरण-महिमा] (२३३) [इकताल

बृषभान-कुँवरि के चरन सरन-अभिलाषा-भरन।
सीतल-सुख दरसक-मनरंजन कंज न ऐसे लसत सरन।
श्रीबृंदावन-अवनी-मंडन रास-बिलास-न्यास-गति-बितरन।
आनँदघन कौं रसद बिसदबर सदा बिराजौ अभयकरन॥

विरहिणी] (२३४) [तालजात्रा

कौन देस बसायौ है निरमोही कान्ह
हमारी अँखियनि ऐसें उजारि।
आस बढ़ाय उदास भए बिसवास कियौ
घनआनँद प्रान-पपीहनि प्यासनि मारि॥

स्वादी लोचन] (२३५) [नायकी, चौताल

लोचन स्वादी हैं छबि-रस के।
देखि देखि पिय-मुख सुख पावत त्यागी पलक-परस के।
ताही मैं मुसकनि-आसव छकि नाहिं रहे मो बस के।
क्यौं कुलकानि करैं आनँदघन जिनहिं परे ये चसके॥

अभिलाष] (२३६) [मूलताल

देखन न दैहौं काहू कौं हौं आपने लाल पियारे को हौं।
पलकनि संपुट करि राखौंगी रूप-उज्यारे को हौं।

---

[२३२] रसासव = आनंद का आसव (शराब)। हटके = मना किया। अपबस = अपने वश मैं। तुष = धान की भूसी। [२३३] सरन० = शरणागत की। दरसक = दर्शक। सरन = तालाबों मैं। न्यास० = गति (चाल) का न्यास (रखना) मोच देनेवाला है। [२३५] लागी० = पलकों का स्पर्श

निधरक देखि न सकति दीठि डरि रहि रहि
निकसति हारे को हौं।
आनँदघन रसमूरति व्रजमोहन गुन-भारे को हौं।

उपालंभ] (२३७) [अड़ानो, मूलताल

कहूँ नैन मन कहूँ मैन-रस-बस-हियरे हौ लाल पियारे।
अनमिलता मैं मिलौ सुमिल से ये रँग रँगि, नित नित जु तिहारे।
मोह-मढ़ी बतियानि गढ़त हौ सुघर साँच के साँचे ढारे।
आनँदघन अचिरज-झर बरसत उनए ह्वै पै निपट उघारे॥

वेणुवादन] (२३८)

कान्ह तिहारी मुरली मैं कछु टौना है हो।
खग मृग मोहित होत वहै गति हम ही कौ ना है हो।
आनँदघन रसप्यासनि बरसत बस यासौं नाहीं हौना है हो।
तान-बान लगि भिदै न कैसे जाको जीव रिझौना है हो॥

गिरि-धारण] (२३९)

आजु गिरि धार्‌यौ हो व्रजराज के लला।
कहि न जात छल-बल की निकाई छबीली छिँगुनी-छोर छाजै ज्यौं छला।
कछू न काहू को गयौ व्रज नीकैं राखि लियौ भई है सकल विधि भलीभला।
अति ही चकित आयकै पायनि नयौ लखि सुरपति आनँदघन की कला॥

वेणुवादन] (२४०) [चौताल

नंद महर को कान्ह किसोर छबीलो मेरेई बगर नित आवै।
मुरली मैं रसभेद भरे, भरि तियनि सुनाय रिझावै।
मन अरवरत दौरि देखन कौं सासु-ननद को त्रास तन तावै।
आनँदघन-हित प्रान-पपीहा तरफरात हैं वीर! पीर को पावै॥

त्याग दिया, निर्निमेष रहते हैं। चसके = टेव, अभ्यास। [२३६] हारे० = विवश होकर। [२३८] कौ = के लिए। रिझौना = रीझनेवाला। [२३९] छला = छल्ला, अँगूठी। कला = विद्या। [२४०] बगर = घर। अरवरत =

नयन-सुषमा] (२४१)

आँखैं तेरियै देखी तब कही पै सब काहू पै परति न लही।
याही तैं मृग मीन कमल खंजन इनकी सरबर नहीं।
सरल-कुटिल, मंथर-अधीर, सित-असित, सुछबि लै बिराजि रही।
इनके गुन-गन गनि को सकै जिन बिचित्र
आनँदघन बस कीने जब मिसहीं मुसकि चही॥

चितवन की ठगोरी] (२४२) [मूलताल

क्यौं जू कान्ह कहौ तिहारी चितवनि मैं कौन ठगौरी।
चाहत ही चित जात बिबस ह्वै लागि रहति हित ढौरी।
कैसैं आपुन साधि राधियै सब सुधि टरति होति बुधि बौरी।
लाजौं रीझि भीजि आनँदघन मिलौ चहति भरि कौरी॥

हिँडोला] (२४३) [तालजात्रा

सारी सुरँग चुहचुही निपट पहिरे राधा गोरी।
साँवरे-बरन-गोल-कपोलनि हिलि मिलि खिलै
झूलै जोबन-उमंग-रँग-बोरी।
नथ के मुकता पानिप-भरे भाल पै दिपति लाल बैंदी
मधुर अधर बीरी खात उघरि करत चित की चोरी।
आनँदघन पिय को हिय नीबी-कसनि-गसनि बस्यौ
लंक-लचक निसंक अंक भरति दृगनि ओ री॥

श्रीराधा-प्रेमी] (२४४) [मूलताल

स्याम घन तेरियै घाँ घुरि बरसै।
उघरि उघरि मुरली गरजनि मैं सुर के धुरवा सरसै।

उतावला होता है। बीर = सखी। को पावै = कौन समझे। [२४१] मंथर = धीमा। मिसहीं = बहाने से। चही = देखा। [०४२] ढौरी = धुन। राधियै = काम निकालूँ। कौरी = क्रोड़, गोद। [२४३] सुरँग = लाल। चुहचुही = चटकीली। निपट = अत्यंत। साँवरे = श्रीकृष्ण। बैंदी = माथे पर पहना जानेवाला

रमड़्यौ रहत रैन-दिन राधे ! रसमूरति चातक लौं तरसै ।
आनँदकंद नदनंदन त्यौं कौंधि कहूँ दै दरसै ॥

प्रेम घन] (२४५) [इकताल

उघरि उघरि मो हियें बरसै तिहारो नेहरा-मेहरा, नेहरा-मेहरा ।
व्रजमोहन नवरंग छबीले तिहारी बातनि घातनि कौन छेहरा ॥

जन्म-बधाई] (२४६)

आजु बधावन, सुंदर बर घनस्याम पियरवा अइलौ मोरे छेरवा ।
उमड़ि उमड़ि घुमड़ि घुमड़ि रस रखिलौ नेह-मेहरवा ॥

स्मरण] (२४७) [केदारो, चौताल

तुम कौं जे सुमिरि सुमिरि जीवत हैं,तिनके तुम प्रान-जीवन हौ स्याम ।
तिहारे गुननि सौं सुरति पोहि टोहि बिरह-खौंप सीवत हैं ।
दरस लालसा लगि रहे लोचन, पलक-परस नेकु न छीवत हैं ।
आनँदघन ये प्रान-पपीहा एक आस-बस प्यासन ही पीवत हैं ॥

उपालंभ] (२४८) [मूलताल

तुम सौं मेरी प्रीति लगी, पै तिहारी कौन ठौर ।
साँची कहौ व्रजमोहन हा हा कहावत और ।
मोहीं सौं कै औरन हूँ सौं तोहिं है उर की रौर ।
आनँदघन पिय अचिरज-भूमनि रसिक छैल-सिरमौर ॥

एक गहना या बिंदी । नीवो = फुफुँदी । कसनि० = कसने की गाँठ । [२४४] घाँ = ओर । घुरि = शब्द करके । सुर = स्वर । धुरवा = बादलों के स्तंभ । रमड़्यौ० = रमा रहता है । आनँदकंद = आनंदघन । कौंध० = कहीं कौंधता हुआ दिखाई देता है । [२४५] नेहरा० = स्नेह का बादल ; आनदघन । छेहरा = अत । [२४६] बधावन = बधाई । अइलौ = आए । छेरवा = बच्चा । रखिलौ = रखा । नेह० = प्रेम का बादल , आनंदघन । [२४७] सुरति = सुध । टोहि ॥ खोजकर । खौंप = फटा अंश, चीर । पलक० = निर्निमेष रहते हैं । [२४८]

अभावुकता] (२४६)

मोहन की चलनि चितवनि हँसनि बोलनि गावनि ठगौरी।
सब ही भाँतिन हौं तो मोहि लई भूलि गई सुधि बुधि भई बौरी।
छिन-पल कल न परति बिन देखें लगियै रहति निस-दिन यह ढौरी।
चख-चातकन की तपति तबहिँ तौ मिटै
आनँदघन पिय दरसैं बरसैं कहुँ जौ री॥

वेणुवादन] (२५०) [रूपताल

मुरली के जोरनि संग लगाएँई डोलै।
कहा करै बपुरी ब्रज-अबला, गरब-गाँठि गहि खोलै।
धुनि सुनि और होति थिरचर गति, भोरी बिचारिनि की मति कोलै।
आनँदघन हूँ भिजए रिझए क्यौं न बोल बड़ बोलै॥

(२५१) [मूलताल

मुख मुरली मैं केदारो कैसैं गावै।
जैसी जैसी जीव आवै तैसी तैसी तानि भौंह दरसावै
दृग-बिलास देखें भावै।
चेटक रूप साँवरो मोहन रीझि रीझि मोहुँवै रिझावै।
आनँदघन देखत ही भीजी तू जानत है चित के चावै॥

रासलीला] (२५२)

रीझनि बिबस भए रसरंगी मोहन राधा के गावत ही रस-रास मैं।
सुरस बादन मोय गई मति, गति बिथकी
नैननि संग आछे मुख-उजास मैं मोहन बिलास मैं।
ऐसे रिझवार वारि मोहिँ बलैया लागौ या समैं।
आनँदघन ऐसैं ही नित नित घमड़ि हुलसौ बिलसौ बृंदाबन
जमुना-पुलिन प्रकास मैं॥

उर की० = हृदय की उमग, प्रेम। [२५०] कोलै = विह्वल हो जाती है।
[२५१] केदारो = एक राग। [२५२] उजास = उजाला। पुलिन = तट।

(२५३) [झपताल

आजु प्यारे-पीय के मिलनि की राति है।
खुलि खिली सुभ सरद मैं संजोगिनी रंग भरि अंग न समाति है।
बहु विधि विलास रस-रास, मुख स्रमपगे जगमगे
जुगल-वर संगम हिताति है।
आनँदघन घमड़ि केलि-संपति रमड़ि प्रीति-रसमसनि सरसाति है॥

चेतावनी] (२५४)

ब्रह्म गुन गाय लै रे मन! गाय लै ऐसें रसना लड़ाय लै।
सकल स्रुतिसार अविकारकारी महा मंगल सुधाहि अचवाय लै।
जीवन-अधार धारन करि सुधारि, भलैं अंतर निरंतर बसाय लै।
चातक-चखनि चोप विबस ह्वै एकरस आनँदघनहिँ बरसाय लै॥

(२५५) [रूपताल

हरिनाम लै रे लै रे मन! हाहा, जीवन-जनम-सफलता को यह लाहा।
सेस महेस सुरेस आदि गुन गनत सुछंदन गाहा।
आनँदघन-रस प्रान-पपीहनि प्यावैगो कब आहा॥

प्रवास-विरह] (२५६) [ख्याल, तालजात्रा

मारौ गरजि गरजि घन! मारौ हो, डरावौ
प्रीतम प्यारे विना मैं कैसें भरौं हौं।
तैसियै निसि अँधियारी कारी तैसियै सियरी पवन
परसि परसि तन जरौं हौं॥

मानमोचन] (२५७) [मूलताल

आए री बदरवा नीके स्याम बरन मनहरन छबीले रस-बरसीले।
आनँदघन ब्रजमोहन पिय पै उठि चलि हठ तजि
कसि कसि मोहन बचन कहौं, ढीले ढीले॥

---

[२५३] स्रम = स्वेद। हिताति० = प्रेम करती है। रमड़ि = रमकर। रस-मसनि = लगन। [२५४] लड़ाना = दुलराना। अचवाय लै = पिला ले। [२५५]

(२५८) [तालजात्रा

कैसैं भरौं तुम बिना अब मोहिं कठिन कठिन बीतत पल - छिनवा।
तिहारे देखन की औसेर लगी रहै बलमा! निसि - दिनवा॥

पूर्वराग] (२५९) [मूलताल

मितवा रे तुम सन मोरी लागी लगन कैसैं हूँ न छूटै।
आनँदघन यह प्रान-पपीहा आस लागि जीवत है
यह तौ तोरेऊ न टूटै॥

याचना] (२६०) [आड़ो, चौताल

जौ तुम दियौ है ब्रजबास तौ पूरन करौ यह आस।
रसिक-संग अभंग निरखत रहौं रास-बिलास।
राग-रंग-तरंग भीजौं सरस प्रेम-समाज।
राधिका रमनी-मुकुटमनि कान्ह ब्रज-युवराज।
अतुल आनँद-उमँग की कछु कहि न आवति बात।
बिबस आनँदघन-घमड़ मैं सुधि न रजनी-प्रात॥

पूर्वराग] (२६१) [बिहागरो

पिय-मूरति देखन की सु माई, मेरी अँखियनि बानि परी।
लोक-लाज सौं काज कहा रह्यौ अब यह जानि परी।
गुरजन-सिख सुनि सुनि गुनिबे की उर आसानि परी।
आनँदघन-हित प्रान-पपीहा हिलगनि आनि परी॥

रूपदर्शन] (२६२) [इकताल

रीझि रीझि मुख देखि रहै।
लाल लाड़िली की छवि मोहै चकित भए कछुवै न कहै।

गाहा = गाथा, प्रशस्ति। [२५८] बलमा = (वल्लभ) प्रिय। [२५९] मितवा = मित्र। [२६०] अभंग = अखंड। [२६१] गुनिबे० = हृदय की आशाओं को विचारने की पड़ी रहती है। [२६२] मोय = भींगकर। गहर =

मोय मोय मन खोय जात है रूप-गहर की मिति न लहै।
आनँदघन पिय रसिक-मुकुटमनि भाग-निकाई दृगनि चहै॥

संघट्टन] (२६३) [मूलताल

तुम हित सेज रची चलियै जू।
सुनहु प्रवीन राधिका नागरि, है यह बात निपट भलियै जू।
रसिक-मुकुटमनि पंथ निहारत नाखत दृगनि कुंज-गलियै जू।
आरति समझि कहर कित कीजै यह रजनी फूली फलियै जू।
औसर भलो बन्यौ मिलिबे को आजु निहाल करौ अलियै जू।
आनँदघन पिय सौं हिलि मिलि कै करियै रंगभरी रलियै जू॥

जिज्ञासा] (२६४)

हौं तुम सौं एक बात बूझति हौं, साँची कहौ।
मिले माँझ अनमिले से मोहन कैसी भाँति रहौ।
उघरें हू अंतरपट राखत अपने गुननि गहौ।
चोपनि भूमि भूमि आनँदघन नित नए नेह नहौ॥

(२६५) [तालजात्रा

पुकारि पुकारि हारी हो गुपाल काहे न दरसन देत।
आनँदघन कितहूँ पिय छाए प्रान-पपीहा हौं बिलखाए
कंत ढरारे अंत कहा हौ लेत।
अब अति निठुर भए ब्रजमोहन करि करि ऐसो हेत।
औसेरनि हाहा जिन सुखवौ सींचौ आसा-खेत॥

युगल-छवि] (२६६)

मेरी आँखिन सुख दैबो करौ रंगभरी जोरी।
स्यामसुंदर रसिक छैल राधिका नव गोरी।

गहराई। मिति = थाह। नाखत = डालते हैं। आरति = उत्कंठा। कहर करना = जुल्म करना। अलियै = सखी ही। रलियै = क्रीड़ा ही। [२६४] अंतरपट = वस्त्र, परदा। नेह० = प्रेम बाँधते हो, करते हो। [२६५] ढरारे = ढलनेवाले

यहै सुरूप यहै गोवरधन यही रसीली बातैं।
यह बृंदाबन यह जमुना ये दिन येई रातैं।
इनके कौतिक देखि देखि अपनो जीउ जियाऊँ।
इनके गुन गाय गाय इनही कौं रिझाऊँ।
आनँदघन घमड़ि सदा रस-संपति सरसौ।
दंपति की मधुर केलि ऐसैंई दरसौ॥

प्रियागम.] (२६७)

अहोणी, दिलजानी ढोलन पाया।
रब कीता साडे रे दिल दा भाया।
व्रजमोहन घन प्यारिया पपीहाँ दे घर आया॥

पनघट-लीला] (२६८) [मूलताल

गगरिया भरन न देत स्यामसुंदर व्रजमोहन रस को प्यासो डोलै।
आनँदघन मोहियै भूम्यौ कहा कहौं चेटक चितवनि के सैनन ही बोलै॥

(२६९) [शंकराभरण, इकताल

देख्यौ देख्यौ राधा को बृंदावन देख्यौ।
जीवन जनम-करम अपनो सब भाँति सफल करि लेख्यौ।
जमुना के तट सजल स्याम घन सब दिन सहज सुहायौ।
दंपति सुख-संपति निज मंदिर हित मंडप नित छायौ।
सब तैं ऊँच्यो लसत पुहुमि पै दीसत दूरि दुरायौ।
अमित अखंडित अतुलित महिमा अद्भुत निगमनि गायौ।
मोहन महा मदनमोहन को बानिक बरनौं कैसैं।
दरस्यौ बरस्यौ करौ सदाई आनँदघन यह ऐसैं॥

अंत० = प्राण क्यौँ लेते हो, मारते क्यौं हो। सींचौ = सींचा हुआ। [२६६] कौतिक = कौतुक, खेल। दरसौ = दिखाई दे। [२६७] अहोणी = हे सखी। दिल० = प्रिय। ढोलन = दूल्हा, प्यारिया = प्यारा। पति, प्यारा। रब = ईश्वर। कीता = किया। साडे० = हमारा मनचाहा। [२६८] चेटक = जादू। [२६९] दुरायौ = छिपा हुआ, फैला हुआ। [२७०]

(२७०) [परज, तालजात्रा

साँवला सोहणा मिठबोलन।
महरम दिलजानी भँउरा गुज्भ गुलाँ दी घुंडियाँ खोलन।
जीव जिवाँदा गावँदा भावँदा आवँदा नी लटकेदड़ा ढोलन।
प्रान-पपीहाँ दा आनँदघन रत्त-दिहाड़े, छड़िया कोलन॥

वेणुवादन] (२७१) [मूलताल

मुरली हियरा सुर-साल करै, ऐसे हाल करै।
प्रान समोय लेति तानन सौं अटपटे ख्याल करै।
बसति ससति सी घरी घरनि मैं ये जंजाल करै।
आनँदघन रस बरसि बिसासिनि अंतर ज्वाल करै॥

पूर्वराग] (२७२) [इकताल

निगोड़ो नेहरा वढ़ै।
ज्यौं ज्यौं निरखत मोहन को मुख सौगुनो रंग चढ़ै।
चोप-चटक लागी हिय है रसना गुन-नाम रढ़ै।
हसि चितवनि कौंधनि आनँदघन मति-गति मोह मढ़ै॥

(२७३) [तालजात्रा

देख्यौ नाहीं नंदकिसोर।
हौ हूँ लई चिकनई राति-द्यौस मँडरात लगौ जब देख्यौ याही ओर।

सोहणा = (शोभन) सुंदर। महरम = मर्मी। भँउरा = भ्रमर। गुज्भ = गुह्य। गुलाँ० = फूलों की। नी = नु (निश्चयार्थक) लटकेदड़ा = लटक के साथ झूमता हुआ। ढोलन = प्रिय, पति। प्रान० = प्राणरूपी चातकों का। रत्त-दिहाड़े = रातदिन। छड़िया = अपनी प्रतिज्ञाओं को न पालनेवाला। [२७१] सुर-साल = स्वरों के काँटे। समोना० = डुबाना, भिंगाना। ख्याल = खेल। ससति० = साँस भरती हुई। [२७२] रढ़ै = रटती है। [२७३] लई० = हृदय चिकना गया; प्रेम का प्रादुर्भाव हो गया। बरबट = बरबस। अँकोर = भेंट।

कैसें अपवस राखौं अपनपौ है वरवट चित-चोर।
अब आनँदघन उघरि घुरौंगी लै कर प्रान अँकोर॥

राधा रानी] (२७४) [मूलताल

बृंदावन-रानी राधा है।
रास-रसिक ब्रजमोहन पिय की पुरवनि साधा है।
याकी छत्र-छाँह सुख वसियत सकल समाधा है।
आनँदघन चातक-व्रत सेवत प्रेम अगाधा है॥

वेणुवादन] (२७५) [इकताल

वाँसली हे वीर ! घणाँ दिन पाड़ै छै।
भला घराँ रा माणसा नूँ कानाँ लागि बिगाड़ै छै।
काँई कराँ, क्यौं बस नहिं चालै, घर वैठा नूँ ताड़ै छै।
कैंड़ै खड़ी रहै आनँदघन छानी वात उघाड़ै छै॥

विरह-निवेदन] (२७६) [मूलताल

विरहा ऐसी कै सताई जू तिहारे मिलन बिन
जान अकेली न छाड़ै छति कौं।
स्यामसुँदर ब्रजमोहन आनँदघन पिय तुमहिं
दया कबहुँ उपजै गति कौं॥

वेणुवादन] (२७७) [इकताल

मोहन प्यारे की मुरलिया बाजि रही।
सोवन देति न सोवत वैरिनि ऐसी टेक गही।

---

[२७४] साधा = इच्छा। समाधा = समाधान (सब बातों का निराकरण)। [२७५] बाँसली = बाँसुरी। बीर = सखी। घणाँ० = बहुत ही हैरान कर रही है। भला० = भले घरों के लोगों को। कानाँ = कानों में। काँई० = क्या करूँ। घर० = घर बैठे को भी पीड़ा पहुँचाती है। कैंडे = अति निकट। छानी = (छन्न) छिपी बात खोल देती है। [२७६] ऐसी कै = इतना अधिक। छति = छत (से मार्ग देखती है)। गति० = मेरी ओर आने के लिए। [२७७] गही =

तानिनि वाननि प्राननि वेधै निरदै निपट चही।
इतने पै धुनि सुनियै भावै गति नहिं जात कही।
मेरी सी गति मेरीयै किधौं औरनि हू की यही।
घर के घेर परी तरसति हौं आनि वनी सु सही।
आनँदघन पिय वस करि राखे पूरन प्रीति नही।
गरव-भरी गरजै सौ लेखैं रस की रासि लही॥

पूर्वराग] (२७८) [तालजात्रा

हो सुदिन सनेहरा लाग्यौ रसिक छैल छबीले रँगीले मोहन सौं हो।
उघरे भाग आनँदघन घमड़ौ हँसीली भौंहन रसीले जोहन सौं हो॥

विरही मोहन] (२७६) [गौर, रूपकताल

मोहन राधा के अनुराग छक्यौ मुरली मैं गुन गावै।
वासर विरह-सरक उर सालत वन वन डोलै ऐसैं जिय वहरावै।
पीत वसन दुति देखि पलकनि सौं परसि नैननि कौं मनै मनावै।
आनँदघन यौं प्रान-पपीहनि रस-प्यासनि परचावै॥

वेणुवादन] (२८०) [खंभायची, तालजात्रा

कान्हर थारी बाँसली हो मोहनी मन मोहि लियो छै।
तीखी तीखी तानाँ वानाँ प्राणाँ माहीं गैलो कीयो छै।
थे तो म्हारा रूड़ा राजिंदा म्हे तो थानै आपो दीयो छै।
अव म्हानै जग खारो लागै आनँदघन रस नीका पीयो छै॥

(२८१) [इकताल

असाडा दिल लीता नी, मुरलीवालै नैं।
रत्त-दिहाड़े किथाँई न लगदा, की जाणाँ क्या कीता नी।

देखी गई। घर० = घर के घेरे में। आनि० = (विपति) आ पड़ी। नही = नाथकर, बाँधकर। सौ० = सौ प्रकार से। [२८०] थारी = आपकी। गैलो = गली, रास्ता। थे = आप। म्हारा = मेरे। रूडा = सुंदर। राजिंदा = (राजेंद्र) अति प्रिय। म्हे = मैं। थानै = आपको। आपो = अपनत्व। खारो = कड़वा।

साँवली सुरति भँवी भँवी अंखी डाढा चेटक दीता नी।
आनँदघन बल होया पपीहाँ इस्क-पियाला पीता नी॥

याचना] (२८२) [सोरठ, चौताल

राधे दे बृंदाबन-बास।
तेरो ह्वै मन पनहिँ परि रहै तन हूँ ताही पास।
महामधुर रसकेलि-माधुरी फुरै हियेँ अनयास।
हरी खरी सुख-भरी निकुंजैं नवनव रंग-बिलास।
जमुना-तीर ललित बंसी-धुनि अद्भुत अमी-निवास।
कृपा रमड़ि घमड़नि आनँदघन बेगि पुरैयै आस॥

याचना] (२८३)

मेरी बानी मैं बनवारी बसौ, एकै मुख करि गुननि गसौ।
असद्-अलाप अलाप न होई सिथिलाई तजि नीकैं कसौ।
मुरली-सुर सौं समोय लीजियै, ज्यौ गावै राधिका-सरस-जसौ।
आनँदघन हित सरसौ बरसौ रोय कहत हौं कहा धौं हँसौ॥

पूर्वराग] (२८४) [मूलताल

लगन लगी है स्याम पियारे।
अब कैसैं यह दुरी रहति है व्रजमोहन उजियारे।
इत हौं बकति तिहारेई गुन तुम मँडरात चोप-मतवारे।
आमँदघन इत मुरलि तिहारी ये सब भेद उघारे॥

मीठा पेय। नीका = अच्छी तरह। [२८१] असाडा = हमारा। लीता = लेता है। नी = नु, निश्चय। रत्त-दिहाड़े = रातदिन। किथाँई० = कहीं नहीं लगता। की० = क्या जाने क्या कर दिया। भँवी० = घूम घूमकर। अंखी = आँख में। डाढा = गहरा। चेटक० = जादू कर दिया। बल० = ओर होकर। [२८२] फुरै = होए, जगे। खरी = अत्यंत। अमी = अमृत। रमड़ि = युक्त होकर। [२८३] एकै० = केवल मुख के द्वारा। असद्० = असत् बातें। ज्यौ = जी।

(२८५) [इकताल

राज म्हाने ओलू आवै ।
ऊभी ऊभी थारी बाट उडीकाँ थाँ बिन बिरहा अधिक सतावै ।
म्हाँ सी थाँकै घणी टहलणी भँवर कमल री वास लुभावै ।
प्राण-पपीहा रा आनँदघन थे निरमोही स्यौं न बसावै ॥

(२८६) [ईमन काफी

मन लाग्यौ री, वंसीवारे सौं, व्रजमोहन छबि-गतिवारे सौं ।
दृग चकोर भए प्रान पपीहा आनँदघन उजियारे सौं ॥

बलदेवजू की स्तुति

(२८७) [हिंडोल, झपताल

जयति रोहिनीनंदन उदार विक्रम-विपुल
अतुल-बलधाम अच्युत कृपानिधि ।
जयति गौर सुंदर बरन नील-अंबर-धरन
एक-कुंडल-करन आभा-विधि ।
जयति ब्रह्म-अग्रज ब्रज-विलास मंगलसदन
कामपालक सदा मत्त-रसरंग-रिधि ।
करुना-सुदृग्टि आनँदघन वृस्टि करि
तापमोचन, देत परम सुखसिधि ॥

---

[२८५] राज = प्रिय । ओलू = विरह की स्मृति । ऊभी० = खड़ी खड़ी । उडीकाँ= प्रतीक्षा करती हूँ । थाँ० = आपके बिना । म्हाँ सी० = मेरे ऐसी आपके बहुत सी दासियाँ हैं । री = की । रा = का । स्यौं = से । न० = वश नहीं चलता । [२८७] एक० = बलरामजी के एक ही कान में कुंडल रहता है । करन = कर्ण, कान । आभा० = प्रकाश का विधान । ब्रह्म = श्रीकृष्ण । रिधि = ऋद्धि,

(२८८) [सारंग, चौताल

जय जय जय बलभद्र वीर धीर गंभीर अविलंब प्रलंबहारी।
निज ब्रजकेलि-रस-माते मुसली कुसली
सब ठौर सब भाँति छिन छिन मंगलकारी।
याही तैं नीलांबर धारत परम प्रीति रीति रुचि बिस्तारी।
बन आनँदघन बरसत स्यामै सरसति हित-गति न्यारी॥

(२८९) [भैरव, तालजात्रा

बलदेव बलदेव बलदेव भाखौ, बलदेव को एक आसरो राखौ।
बलदेव बलदेव बलदेव जाचौ, बलदेव-कृपा तैं ब्रजरंग राचौ।
बलदेव-दया-बल रसमत्त डोलौ, बलदेव-अनुज के नाम-गुन बोलौ।
बलदेव सो एक बलदेव देख्यौ, बलदेव-कृपा को पुंज उर लेख्यौ।
बलदेव सब काज मेरे सुधारे, आनँदघन बरसि दुःख-ताप टारे॥

(२९०) [ललित, मूलताल

मद-विघूर्नित लोचन गोरोचन-बरन रोहिनीनंदन बल हलधर राजैं।
गोपाल-मोह-गह्वरित-हृदै ब्रजवन लीला साजैं निज सुख-काजैं।
मंगलनिधि अच्युत अनंत प्रभु सदा मगन अपनी रुचि छाजैं।
आनँदघन लीलांबर-धरन उदार दीनहित जस-निसान जग बाजैं,
सुमिरत ही सब दुख भाजैं॥

श्रीरामजन्म-बधाई

(२९१) [रामकला, चौताल

दसरथ-नंदन को जनम-उछाहु, जनम-उछाहु।
निरवधि करुना-अवधि अवधि-मंडन प्रगटे महाबाहु।

समृद्धि। [२८८] प्रलंब = एक दानव। मुसली = मुसल धारण करनेवाले। [२८९] राचौ = लीन होओ, डूबो। अनुज = श्रीकृष्ण। [२९०] विघूर्नित = चंचल। बरन = रंग। मोह = प्रेम। गह्वरित = भरित। लीलांबर = नील वस्त्र। निसान = बाजा। [२९१] निरवधि = सीमारहित। अवधि-मंडन =

कौसिल्या की कोखि सिरानी लह्यौ अपूरब पुन्यनि लाहु।
फूले संत सुर-हित अनुकूले असहिन के उर दाहु।
आनँदघन अवधेस-दान-झर बाढ्यौ जग मैं सुजस-प्रबाहु।
निज दासनि को सुख कहा कहियै दिन दिन अधिक उमाहु॥

(२९२) [टोड़ी, इकताल

जनमे राम जगत के जीवन, धनि कौसिल्या धनि दसस्यंदन।
अवधपुरी मधि महामोद छवि नरनारी फूले आनंदन।
आनँदघन बरसत सुख सरसत करुनाकर उदार रघुनंदन॥

(२९३) [केदारो, झपताल

राम जगधाम अभिराम प्रगटे अवधि मधुर मधुमास नौमी उज्यारी।
दसरथ-निकेत जस-मंगल-उपेत, वपु अतुल-बल बिक्रम बिनोदकारी।
सानुज सुछंद निज जनवृंद-सुखकंद रविकुल प्रकासक प्रतापधारी।
करुनानिधान कीरति बिमल गंभीर धीर बरबीर भूभार-हारी।
मंडित अखंड धुनि मंगल सकल पुरी औसर अभूत सुषमा निहारी।
जयति कौसल्याकुमार आनंदघन अवधि-मंडन सनातन बिहारी॥

(२९४) [इकताल

आजु मंदिलरा दसरथराय के बाजै रंग-बधाई है।
कौसिल्या की कोखि सिरानी जगबंदन रघुनंदन प्रगटे, सब मन भाई है।
अवधिपुरी आनँद-झर लाग्यौ उघरी भाग-निकाई है।
चहूँ ओर मंगल-धुनि सुनियत राम दुहाई है॥

(२९५) [कान्हरो, चौताल

रवि-कुलमंडन खलखंडन राम परम बलधाम प्रगट भए।
हित-चातकनि महा मन वांछित के फल बिबिधनि आजु दए।

अयोध्या की शोभा करनेवाले। कोखि = कोख ठंढी हुई (पुत्रोत्पत्ति से)। सुर-हित = देवों का हित (भलाई)। असही = न सहनेवाले, शत्रु। निज = खास। [२९२] दसस्यदन = दशरथ। [२९३] मधु = चैत्र। उपेत = युक्त। अवधि-मंडन = अयोध्या के आभूषण। सनातन = अनादिकाल से, नित्य, सदैव। [२९४]

जननी-जनक-सुकृत कहा बरनौं सुखनि धरे दुख दूरि गए।
अवधपुरी आनँदघन घमड़ौ रमड़ौ रस-भर मोद छए।
सुर-समूह दुंदुभी बजावत हरखत बरखत पुहुप नए॥

(२६६) [कान्हरो बागेश्वरी, इकताल

राम जगजीवन जनम लियौ, जुड़ायौ जननी जनक-हियौ।
निरवधि आनँद-उदधि अवधपुरी मधि घर घर
बाजति रंग-बधाई फूले फिरत नर तियौ।
सिव विधि सुक सनकादिक सुर-समूह आनदित
भूप-भवन भीर भई सबको जीउ जियौ।
आनँदघन भर लाग्यौ दुखदारिद दूर भाग्यौ, दसरथ
दातार जिन जो माँग्यौ सु तेहि दियौ॥

(२६७) [आसावरी, इकताल

कौसिल्या की कोखि ककुभ सुभ पूरन रामचंद्र उदयौ।
रविकुल सकल प्रकासित कीन्हौ अदभुत कला-बिलास ठयौ।
दुख-तम दूरि गयौ दवि कितहूँ बाढ्यौ मन मैं मोद नयौ।
सुजन-बंधु कुमुदावलि फूली अरि-समूह दुख-ताप तयौ।
निरवधि सुख को सिंधु अवधि मधि घर घर उमँग-तरग छयौ।
मंगल-धुनि की गरज सुधा करि सुहृद-चकोरनि चैन दयौ।
दसरथ-भाग कहा कहि बरनौं सकल देखियत सुकृतन यौ।
अमीदृस्टि रसबृस्टि चहूँ दिसि करुना आनँदघन उनयौ॥

(२६८) [टोडी, मूलताल

मंदिलरा री बाजै अति ही गहगहे, प्रगट भए
या अवध नगर मैं रामचंद्र वर आजै।

मंदिलरा = मंदीर, बधावा। [२६६] तियौ = स्त्रियाँ भी। दातार = दानी।
[२६७] ककुभ = दिशा। सुधा० = सुधा से। [२६८] मंदिलरा = (मंदीर) बाजा।

गावति मंगल मिलि वनिता-गन कहि न परत सुख
आनँद की निधि निरखि दुख भाजै।
करत बेद-धुनि विप्र बंदीजन घर घर तोरन-ध्वजा बिराजै।
मनबांछित फल भए परमानँद बोलि द्विजनि कौं
दान देत मन हरखित दसरथ राजै ॥

बावनजू को पद

(२९९) [गौड़ सारंग, मूलताल

जै जै जै श्री बावन विसाल।
कृपासील महा लील नरोतम नित ही नित दीननि दयाल।
सत्यं वद सत्यं सरूप सत्यं प्रतिज्ञ पूरन कृपाल।
सतचिदानंदघन अनघ त्रिविक्रमपद-नखजल जग सुजस-जाल ॥

मेघागम] (३००) [मलार, मूलताल

आए आए री बादर अति ही सुहाए घर बरन बरन।
स्यामसुंदर मुरली मैं मलार जमाय रहे सुर धुरवा से लगे हैं ढरन।
जमुना-तीर कदम तर ठाढ़े बनक ठनक उर अभिलाषन भरन।
आनँदघन रस-रंग झरत काम-ताप-हरन ॥

गोपी प्रेम] (३०१) [इकताल

चुनरिया भीजन लागी परे कौन रस-वाद।
रंग रहै सो करियै लालन भलो न अति अनवाद।
ब्रजमोहन जू गोहन छाँड़ौ गीधे बीधे सरस सवाद।
आनँदघन हठ घमड़नि घुरि ढुरि घेरी हौं बन वाद ॥

आजै = आज ही। तोरन = फाटक। राजै = स्वयं राजा ही। [२९९] लील = नील। अनघ = निष्पाप। त्रिविक्रम = वामन का विराट् रूप। नखजल = गंगा। [३०१] अनबाद = फ़ालतू बात। बाद = वायु। [३०२] दुहूनो = दोनों का।

(३०२)

आज तेरी चूनरी को रँग दूनो पहिरी चटक-चोप सौं।
पिय अपबस करि भले बसायौ कुंज-सदन हो सूनो।
तू नागरि गुन-रूप-आगरी वै नागर बर बनक दुहूनो।
आनंदघनहिं भिजै रस राख्यौ दै सौतिन मुख चूनो॥

प्रेमघन] (३०३) [रूपताल

तिहारो नेह चौबाई को सो मेह कान्ह भूमि भूमि ब्रज बरसै।
निकसत काहु न देत घरिक हू कौ लौं घिरे घरहि रहियै
अति नकवानी करि सरसै।
अरु अचिरज कछु कहत न आवै जाहि भिजावै सो सूखि सूखि तरसै।
आनँदघन पिय उघरि अँध्यारी दै नए नए रंगनि दरसै॥

पावस-वर्णन] (३०४) [इकताल

आई रितु सुखदाई पावस की सुहाई
बोलत मधुर पिक चातक अरु माते मुरवा।
स्याम घन मैं चपला की चमक चहुँ ओर सु बन्यौ है मनोरथ पुरवा।
आनँदघन पिय बैन बजावत अति आरति सौं तोहि बुलावत
लै रीझनि भीजे सुरवा॥

(३०५)

तार-सुरतान सौं बजाई है मोहन मुरली मैं मलार।
प्यारी के गावत जोति-रंग उपजत भेदनि तरंग बाढ़त
अंग अंग अनंग सुख-समुद्र अपार।

दै० = सौतों के मुख मैं चूना लगाकर, सौतौं को कष्ट पहुँचाकर। [३०३] चौबाई = चारौं दिशाओं से वायु का चलना। नकवानी = परेशानी। [३०४] मुरवा = मोर। पुरवा = पुरवैया, पूरबी वायु। बैन = वेणु। सुरवा = स्वर। [३०५] तार० = ऊँचे स्वर की तान। भास = भासित होता है। आसार =

ग-विलास मुख-विकास भौंहनि मधुर हास भास,
पाननि रंजित अधर-दसन बिथुरे बार सिंगार-सार।
आनँदघन रस-आसार भीजत रीझत उदार
आपस मैं होत मालती-माल मरकत-हार ॥

(३०६) [मूलताल

पहो कामरि की खोहा, रँग राख्यौ चूनरि को।
बन मैं बन्यौ दावँ काहू मिस को न भावती जोही।
जमुना-तीर बर-तरें ठाढ़े भीजत रीझत मति-गति मोही।
आनँदघन अद्भुत दामिनि मिलि अचिरज-रस-बरसा सोही॥

(३०७)

सघन बृंदावन सुहायौ राधामोहन-मन-भायौ
सहज ही ये पावस आय बिराज्यौ।
केकी कोकिलान की किलक जित तित चित चोरि लेति
तैसो मेघ मधुर धुनि गाज्यौ।
तरनि-तनया की तरंगनि बढ़नि देखि बाढ़त बिनोद मोद तन-ताप भाज्यौ।
यहि विधि बैठे कुंज-भवन दंपति आनँदघन
बरसत सुगति समागम साज्यौ॥

(३०८) [चौताल

कान्ह को मुरलिया रंगनि बरसै, रंगनि बरसै।
नाद-अमृत की नवल घटा घमड़ी अनुरागहि सरसै।
संकीरन-तान तेई चपला की चमकनि धुनि अलापनि धुरवा घूमि दरसै।
मोहन-मादक मधुर महा रसमय आनँदघन पिय के अधरनि परसै,
याहि सुनि सुनि क्यौं न जियरा तरसै॥

वृष्टि। मालती = अर्थात् राधा। मरकत = पन्ना अर्थात् श्रीकृष्ण। [३०६] खोही = घोघी, कंबल को दो परत मैं लपेटकर ऐसे कर लेना जिससे शरीर ढका जा सके। बर = बट। [३०८] संकीरन = संकीर्ण, दो रागों का मिश्रण।

पूर्वीराग] (३०६)

मोहन-मूरति मेरी आँखिन आगे ही रहै।
जौ खोलौं मूँदौं तौ त्यौंही, त्यौंही दृस्टि गहै, बातौ न कहै।
अरु अंकौ भरि भरि भैंटन की अभिलाषनि बावरो हियो उमहै।
आनँदघन के सँजोग-वियोगनि पापी हियरा ये दुखसूल सहै॥

घनश्याम] (३१०) [इकताल

आवत है हो हरि मातो मेह।
बन के नितहिँ जाउँ जौ घर लौं, तौ निवहै नित नित को नेह।
हठ की बात भला न भावतो तुमहिँ बढ्यौ मनमथ को तेह॥

वृंदावन-महत्ता] (३११) [चौताल

सब रितु वृंदावन सुखदाई।
दंपति की हित संपति नित इत जित तित ही अधिकाई।
धनि जमुना धनि पुलिन मनोहर धनि धनि लीला ललित निकाई।
आनँदघन की घमड़ निरंतर मुरली गरज सुहाई॥

गोपी-प्रेम] (३१२) [इकताल

कामरियावारे की घात न क्यौं हूँ जानि परै।
राति-बिराति अँध्यारे मैं मिलि औचक आनि परै।
ऐसो छली बली अति चौकस, नेकु न कानि परै।
आनँदघन रस-बस करि राखै जौ उहि पानि परै॥

(३१३) [मूलताल

कैसैं रहौं री अब मैं ऐसे स्याम उज्यारे बिना।
व्रजमोहन आनँदघन कितहूँ छाय रहे आली, कठिन
कठिन बीतत है मोकौं रैन-दिना॥

---

[३१०] नितहिँ = (निमित्त) लिए, वास्ते। तेह = तीखापन, वेग।
[३१२] न कानि परै = मर्यादा का विचार नहीं करता। पानि = हाथ।

मेघागम] (३१४)

आए री बदरवा आए आए, स्याम बरन
मनहरन छबीले रस-बरसीले।
उठि चलि व्रजमोहन आनँदघन पिय पै स्यामा
करि लै अपने मन के भाए॥

गोपी-प्रेम] (३१५)

हरवा मोरा टूटलौ अबही ननदिया गवाही दीनी उत्तर कहा देहौं।
आनँदघन सुजान सुनौ विनती जिन अनवाद
करौ तिहारी सौं जान देहु जू जोवन है तौ बहुरयौ पैहौं॥

हिंडोरा के पद

(३१६) [मलार, झपताल

देखि सखी झूलनि हिंडोरे दुहुन की, ए दुहुन की।
चोप सौं लचकि मचकत खरे रंग-भरे कचनि तें बरसनि प्रसून की।
मृदुल कलकंठ गावत महा मगन मन मधुर सुरतान लै दून की।
यह छवि निहारि न सँभारि आनंदघन सुधि बुधि टरी सुर-बधून की॥

(३१७) [इकताल

लहरिया झूलत लहरैं लेत, गौर स्याम धारन कौं।
पहिरयौ सरस चौप सौं स्यामा उघरि परयौ हिय-हेत।
उफनि उठ्यौ संगम-सुखसागर लोने अंग दिखाई देत।
पिय-मन मगन होत अभिलाषनि बँधत न धीरज-सेत।
मधुर मधुर गावनि मलार-धुनि सुनि रीझत भीजत चित-चेत।
छूटे चिहुर आनँदघन बरसे फरत मनोरथ खेत॥

अनवाद = फालतू बखेड़ा। [३१६] कच = केश। दून = साधारण से दूना तीव्र गाना। [३१७] लहरिया = एक प्रकार का कपड़ा, उस कपड़े की

(३१८) [सोरठ, चौताल

झूलिबो करति हरि-हिय के हिँडोरेँ हौंसनि राधे लाड़ गहेली।
तैं ही रस लै जान्यौ री या प्रीति-पावस को भोग-सुहाग नवेली।
हुलसि झुलावति बिजन डुलावति रीझनि भीजी चाह सहेली।
सावन मनभावन आनँदघन रस-बरसावन मिलि झूलिय अलबेली॥

(३१९) [धनाश्री, मूलताल

राधा के हिँडोरेँ हाहा तनक झुलाय कब की कहत यो ही अब न डुलाय।
अँग-सँग रँग की उमँग उर बढ़ी अब कहँ लौं धीरज धरौं मन अकुलाय।
रँगीले रिझवार, सजहु बधु-सिँगार सोभा सुख हेरेँ रहेँ सुरति भुलाय।
अतन-जतन लागि रहौ जू आनँदघन गाँव की
पाहुनी कब लगि लेहुगे बुलाय॥

(३२०) [केदारो, चौताल

बूँद थोरी थोरी थोरी बहुत नीकी लागैं।
नवजोबन मदमाते दंपति मधुर मधुर सुर रागैं।
गरबाहीँ दियैं झूलत फूलत मुकताभरननि लोनिया वागैं।
आनँदघन अभिलाषनि घमड़े अरसि-परसि पागैं।

(३२१) [टोड़ी, मूलताल

सुमन हिँडोरना हुलसि झुलावत रसिक छैल अपनी प्यारी को।
अतुल रूप की उझिल झेल मैं घनै मन फूलत झूलत
झूलनि लाड़नि-मतिवारी को।

साड़ी। सेत = सेतु, पुल। चेत = चेतना। चिहुर = चिकुर, केश। [३१८] लाड० = प्यारभरी। हुलसि = उल्लास के साथ। विजन = व्यजन, पंखा। [३१९] ही = हृदय। अतन-जतन = यत्न-उपाय। [३२०] मुकताभरननि = मोतियाँ के गहनों से। लोनिया = (लावण्य) सुंदर। बागैं = बागा (जामा) से। अरसि० = स्पर्श करके। पागैं = प्रेममग्न होते हैं। [३२१] उझिल =

ज़मुना-तीर सघन वृंदावन सेवत सुख-हित हरियारी को।
आनँदघन रीझनि भरि भिजवत वेली सुकुवारी को॥

(३२२)

लाड़-गहेली की तीज मनावन की राति मैया भागभरी सब भाँतिन।
उबटि न्हवाय सिँगारि कुँवरि कौं सुखनि सिहाय
बहुत कछु वारति फूली अंग समाति न।
रतन-हिंडोरैं हुलसि झुलावति सँग सोहति साथिनि
दाई की बनी ठनी अप-अपनी भाँतिन।
बरसाने बरसत आनँदघन भानु-भवन मैं मंगल-मनि की काँतिन॥

(३२३) [ईमन

रसिकविहारी अपनी प्यारी कौं झूलि झुलावै ए।
अंक-भरे पटुली पर बैठ मुख लखि जीय जिवावै ए।
छूटे वार मुकतन हार मिलि उरझि उरझि सुरझावै ए।
सरस परस पर बीरी खवाय आनँदघन रस बरसावै ए॥

(३२४) [रूपताल

अंग-संग सुख लेत, हिँडोरैं झूलनि को रस पायौ।
गौर स्याम जोबन-मदमाते सहि न सकत छिन छेत।
रूप-निकाई अनूप कहा कहौं फूलनि के भूषननि समेत।
रीझि रीझि बरसत आनँदघन सरसत है हिय-हेत॥

लालजू की बधाई

(३२५) [भैरव, इकताल

या अति लाड़ के चावन दै घर नित ही बधावनो।
स्यामसुँदर दिन दिन लोनो मंगल-मोद बढ़ावनो है नैन-सिरावनो।

उद्देल। झेल = हिलोरा। सुकुवारी = सुकुमारी। अप० = अपने ढंग से। भानु = वृषभानु। काँतिन = चमक। [३२४] छेत = वियोग, पार्थक्य। [३३०]

जसुमति वारो कुल-उजियारो सब बिधि हिय-जिय-भावनो।
व्रजजन-जीवनधन आनँदघन रस-बरसावनो ॥

(३२६) [तालजात्रा

आजु हमारेँ काजु है हो जन्यौ है जसोमति मोहन स्याम उजियारो।
आनँदघन व्रज साचन तारौ चिरजियौ नंदराय-
दुलारो प्रान को प्यारो व्रज-रखवारो।
मंगल गावौ मोद बढ़ावौ भागनि के फल नैन निहारो।
दिन दिन यह दिन रहौ या घर असीस उच्चारो ॥

(३२७) [मूलताल

चलौ री बधाए नंद के अति आनंद।
मंगल गावैँ नैन सिरावैँ भाग सकल करि लेखैँ देखैँ मोहन-पूरनचंद ॥

(३२८) [रामकली, रूपकताल

हो नंद को आनंद कह्यौ न परै।
कान्ह कुँवर कुल-मंडन प्रगटे को यह सुकृत करै।
हो गोकुल-गाँव तीर जमुना के सोभित सुभग थरै।
जसुमति जाकी घरनि सपूती दीपति भवन भरै।
भई बधाई भीर सुहाई हेरति हियो हरै ॥
बहुत भाँति चातक-जन गाव आनँद-मेघ झरै ॥

(३२९) [रूपकताल

नंद-भवन की सोभा आजु देखेई वनि आवै।
कमल-नैन सुखदैन प्रगट भए भाव-भेद को पावै।
जो कछु व्रज को भाग प्रगट भयौ सो कहि कौन बतावै।
आनँदघन अनेक रस बरसत सब जग मंगल गावै ॥

(३३०) [चौताल

व्रजपति मंदिर मैं रंग-बधाई, प्रगटे हैँ कुँवर कन्हाई।
भाग-बली जगमनि कुल-मंडन मन नैननि सुखदाई।

स्यामसुँदर दिन होनो लोनो जनमत मैया-कूख सिराई ।
आनँदघन अनेक रस बरसत जस सरिता सरसाई ॥

(३३१) [चर्चरीताल

बधाई नंद के भई हो मोद-विनोदमई ।
स्यामसुंदर-आगमहिं गोकुल-ओप नई ।
फैलि परी हित की फलि, अंतर-सूल गई ।
भागनि बल यह सुभ घरी विधि बनाय दई ।
आनँदघन मंगल-धुनि ठौर ठौर रई ।
थिर-चर रस रंग भीजे कीरति उनई ॥

(३३२) [मूलताल

आछी गति बाजै मंदिलरा, स्यामसुँदर के जनम-समैं व्रजपति-घर ।
आनँदघन की घमड़ घोर चहुँ दिसि लाग्यौ मंगल-भर ॥

(३३३) [तालजात्रा

लला को सोहिलो गाऊँ ।
नाँदौ बाढ़ौ चिर जीवौ दिन-दिन उदौ मनाऊँ ।
नित मोहन-मुखचंद, निहारौं नैननि हियौ सिराऊँ ।
आनँदघन जसुदा के आँगन दौरि-दौरि आछेई आऊँ रंगनि बरसाऊँ ॥

(३३४) [आसावरी, चौताल

स्यामसुंदर को जनम-द्यौस नंद-सदन आजु आनंद मैं निपट ।
गावत मंगल गीत गुनीजन प्रेममगन बर बाजे बजावत
नाचत मुदित मैन से बहु नट ।
कुँवर कन्हाई दृगनि सुखदाई नखसिख मनिगननि अलंकृत
राजत श्रीव्रजराज के निकट ।

कूख = कोख । [३३१] फलि = फली । रई = रमी । [३३२] मदिलरा = (मर्दल) मृदग । [३३३] सोहिलो = सोहर । नाँदौ = आनंदित होए । [३३४]

अनगन ससि मुख-छबि पै करौं बलि, रंगनि भरे अंगनि की
मयूखनि झलकनि छलकति अति झीने पट।
बनि ठनि बैठे गोप ओप सों रँगीली रीतिन सुभग सभा सजि
ठौर ठौर सोभा को संघट।
कोटि-कुबेर-संपदादायक इक इक बोल अमोल महा सोई
पल-पल सबकी रसना रट।
द्वार-द्वार नूतन किसलय झलरनजुत बंदन-माला अरुन
खचित दीपत मंगल-घट।
आनँदघन अद्भुत औसर लखि पुहुपनि बरखत रतननि
वारत उमहि उमहि अंबर तें अमर-ठट॥

(३३५) [बिलावल, मूलताल

नंद तिहारो कान्ह जियौ।
होवै बड़ी बैस बड़भागन बिधिना ऐसो पूत दियौ।
व्रजरानी की कूख सिरानी ब्रज सब सफल कियौ।
भयो हमारे मन को चीत्यौ हुलस्यौ सजन हियौ।
बहुत भाँति के सुख देख्यौ तुम सो कौन बियौ।
उनै उनै आनँदघन बरसौ खेलौ खाँड़ पियौ॥

(३३६) [धनाश्री

सखी री सुभ दिन आज को, जनमे मोहन स्याम।
घर-घर ब्रज मैं महामोद छबि पूजे मन के काम।
नंद जसोदा अति बड़भागी सब ही बिधि रस जस के धाम।
आनँदघन बरसौ सरसौ हित जग-जीवन अभिराम॥

(३३७) [आसावरी, चौताल

चोपनि घुरि बरसै महादानी नँदराय।
सरस बरस-गाँठि ब्रजमोहन की फूल्यौ अँग न समाय।

व्रजराज = नंद। झीने = पतले, महीन। अमर० = देवों का समूह। [३३५]

सबको सब कछु भरि देत × × × × × × अघाय।
मैया को उछाह कहा कहियै ललहि सिँगारत लेति बलाय।
हौंसनि हुलसि चौक-चंदन रचि लै बरखति बहु धन वारति
मंगल-घोष गवाय।
जीवौ कोटि बरीस असीसत द्विज बंदी बोलत विरुदाय।
गोकुल मैं कोलाहल की धुनि जित तित सुनियत
आनँदघन रह्यौ छाय॥

(३३८) [विभास, इकताल

आजु कान्ह की बरस-गाँठ है, आवौ री मिलि मंगल गावौ सब वर नारि।
व्रजमोहन-मुख सुख-सोभा-निधि भागनि को फल लेहु निहारि।
जसुमति-वारो अँखियन तारो जापै सरबस दीजै वारि।
आनँदघन चिर जियौ लड़ैतो विधि पै माँगत गोद पसारि॥

(३३९) [भैरव, आड़ो चौताल

झुलावति नंदरानी कनक-पलन मैं पौढ़े ललन तनक।
देखि देखि सुख-सदन वदन अति फूल भरी विधिना बनाई मन भाई बनक।
मोहन पूत लह्यौ बड़भागिन जस गावत सुक सेस सनक।
गोकुल-जीवनधन आनँदघन जसोदा जननी नंदराय जनक॥

(३४०) [सारंग, मूलताल

गोकुल बधाई भाई बगर-बगर, प्रेम-चुहल माची डगर-डगर।
व्रज को चद नंद-घर प्रगट्यौ चहुँ दिसि होति जगर-जगर।
सोभा-सदन वदन मोहन को देखि जी जियै ढगर-ढगर।
जसुमति-भाग धन्य आनँदघन जस-वितान छायौ नगर-नगर॥

बैस = वयस्, उम्र। बियौ = दूसरा। [३३७] धुरि = घोर (शब्द) करके। बरीस = वर्ष। [३३८] वारो = पुत्र। गोद० = आँचल फैलाकर। [३३९] तनक = छोटे। [३४०] बगर = घर। ढगर० = ध्यान देकर निहारना।

(३४१) [पूरवी, तालजात्रा

तैंडा रंग, लाड़ला कान्ह जसोधे ! होवे जीउणा जागणा ।
इसदी वलैया मैंनूँ लगौ अँखड़ियाँ दा लागणा ।
उमरदराज करौ रब सैयाँ तुझ जेही केही वड़भागणा ।
आनँदघन व्रजजीवन प्यारिया सभ सानूँ रस-पागणा ॥

(३४२) [कान्हरो, इकताल

कहा कहौं जसोदा-मन को मोद ।
मोहन-मुख निहारि जौ वाढ्यौ लै वैठी भरि गोद ।
अँगुरी अधर परसि हलरावति गावति वाल-विनोद ।
आनँदघन रस वरसि वहायौ जनम-जनम को तोद ॥

(३४३) [शंकराभरण, मूलताल

सब व्रज सुख समुद्र कै वाढ्यौ प्रगटे गोकुलचंद ।
सुछंद गरजि उठ्यौ सुनि अमोघ मंगल-धुनि दूरि गए दुख-बंद ।
हरखे द्रुम-वेली नर-नारी प्रेम-पियूख-मयूख अमंद ।
आनँदघन अनेक रस वरसत धन्य जसोदा नंद ॥

(३४४) [अड़ानो, तालजात्रा

सुहेलर्‍याँ आजु नंद के आनंद, नंद के आनंद ।
घर वाहिर गहमह महा कहा कहौं देखेई बनै
व्रज बाढ़ी ओप अमंद ।

---

[३४१] रंग = धन्य है । जसोधे = हे यशोदा । इसदी० = इसकी बला मुझे लगे । अँखड़ियाँ० = आँखों में बस जानेवाला । रब = ईश्वर । सैयाँ = स्वामी । जेही० = जिस किसके लिए । प्यारिया = प्यारा । सभ = सब । सानूँ = हमको । रस० = रस में डुबानेवाला । [३४२] तोद = दुःख । [३४३] कै = होकर ।

जसोदा की कूखि सिरानी, भई है सबकी मनमानी
प्रगटे सुखदानी कुलमंडन ब्रजचंद ।
आनँदघन-घमड़ जहाँ अद्भुत छबि फवी तहाँ दृग-चकोर
चित-चातक-हित नित रसकंद ॥

(३४५)

आजु मंदल की कहकै ए सजनी सुनि ।
बरस-गाँठि ब्रजमोहन की याते मन बोलै बोलै धुनि ।
ललहि सिगारि चौक बैठारति मैया को सुख कौन सकै गुनि ।
आनँदघन ब्रजपति बड़भागी बहु धन वारत पुनि पुनि ॥

(३४६)

मंदिलरा बाजे रंग स्यों ब्रजपति-मंदिर में आनद ।
जसुमति-रानी-कूखि सिरानी प्रगटे हैं ब्रजचंद ।
बंदीजन जस-बिरद बखानत विप्र वेद-विधि छंद ।
आनँदघन सबको मनवांछित हरषत बरषत नंद ॥

(३४७)

आवो री मिलि गावो सुहेलरा, आजु हमारे मंगल माई ।
उदौ भयौ ब्रजचंद छबीलो ब्रजरानी की कूखि सिरानी
सुख निरखत आनंद-बधाई ।
[illegible] करौ सब विधि सुख गोकुल प्रेमसिंधु अधिकाई ।
[illegible] आनँदघन [illegible] रसवृष्टि सुहाई ॥

घर = घन । [illegible] = चन्द्रमा । [३४४] मदनाग्दौ = मंगल-गीत, बधाई का गाना । [३४५] [illegible] = [illegible] । कारकै = [illegible] । [illegible] = [illegible] (गुण) की । [३४६] मदिलरा = मृदंग या ढोल । विप्र = ब्राह्मण वेद की विधि से मंत्र पढ़ रहे हैं । [३४७] सुहेलरा = मंगल-गीत । [illegible] = पंडना । [३४८]

ठकुरानी जू की बधाई

(३४८) [रामकली

सोहिलो बृषभान-भवन पै, प्रगटी है मंगल-मनि राधा।
कीरति-कुल-उजियारी प्यारी पूरन करी सकल विधि साधा।
ब्रजदेवी सुर-नर-मुनि-सेवी परम-प्रेम-गुन-रूप-अगाधा।
आनँदघन रस-बरस दरस लखि सुखनिधि बढ्यौ टरी सब बाधा॥

(३४९) [हमीर, चौताल

प्रगटी है मंगल-मनि बृषभान-कुँवरि राधा नामिनी।
ब्रजजीवन की प्रान-सजीवनि अद्भुत अभिरामिनी।
रास-बिहारिनि गुन-अधिकारिनि परम प्रेमनिधि की स्वामिनी।
आनँदघन-रस-रासि रसीली बृंदावन-धामिनी॥

(३५०) [टोड़ी, मूलताल

हौं बलिहारी राधा-नावँ की।
याहि लड़ाऊँ गाऊँ दिन-दिन देखि जिऊँ जल पिऊँ वारि
कीरति-कुल-उजियारी प्यारी बरसाने गावँ की।
बृषभान पिता की जीय-जियारी श्रीदामा की पीठि प्रगट भई
सोभा-निधि ब्रज-ठावँ की।
बंदौं याहि भीजि आनँदघन हौंसनि होउँ निहाल
छिनहि छिन रज लै पावँ की॥

(३५१) [चौताल

साध पूजी मेरे मन की जू, कीरति कन्या जाई।
जसुमति के ब्रजजीवन प्रगटे देखि भयौ सुख भानु-धियाई*।

कीरति = कीर्ति, राधा की माता। साधा = उत्कंठा। [३५०] लड़ाऊँ = प्यार करूँ। जियारी = जिलानेवाली। श्रीदामा = राधा के बड़े भाई। की पीठि० =

* बियाई

इन ही घर की एक लुगाइन जो चित-चीती सुविधि बनाई ।
आनँदघन छाऊँ गुन गाऊँ नित ही सोहिले मनाऊँ
न्यौछावरि भरि पाई ॥

(३५२) [ईमन, तालजात्रा

बधावो हौं ही गाऊँ री कीरति-कुँवरि कौं मल्हाऊँ ।
मंगल की मनि सोभा की निधि निरखत नैन सिराऊँ सुखनि सिहाऊँ ।
याही के सुहेले मनाऊँ हौंसनि दौरि दौरि आऊँ ।
आनँदघन रंगनि बरसाऊँ याकी बलैया लै लै ज्यो जियाऊँ
बहु विधि लाड़ लड़ाऊँ सबै कछु पाऊँ ॥

(३५३) [विभास, इकताल

कीरति भई जगत उजियारी भाग-भरी राधा के जाए ।
भाग-उदै बृषभान पिता को जग जान्यौ मंगल-मनि आए ।
औरै ओप बढ़ी ब्रजमंडल नर-नारी रगमगे वधाए ।
नंद जसोदा अति ही फूले सुत-सनेह अंतर सरसाए ।
गोकुल-रावल की हित-संपति कैसैं आवत बरनि बताए ।
नित नित सुख सुहेले दुहूँ घर आनँदघन भीजे गुन गाए ॥

(३५४) [हमीर, इकताल

गोकुलचंद-चंद्रिका प्रगटी सब ब्रज लगत रमानौ ।
कोटि कोटि पूरन सारद-ससि उदै भए हैं मानौ ।
महराने की महिमा बाढ़ी प्रफुलित भयौ ममानौ ।
उत ब्रजपति-आँगन गहमह इत गहमहात बरसानौ ।
महिमंडन बड़भाग-सिरोमनि नंदराय बृषभानौ ।

श्रीदामा के बाद जन्मी । [३५१] जाई = जनी, प्रसव की । भानु० = बृषभानु । धियाई = पुत्री (राधा) को । सोहिले = मंगल, बधावा । [३५२] मल्हाऊँ = दुलार से खेलाऊँ । [३५३] रगमगे = आनंद में लीन । रावल = राधा का जन्म-स्थान । [३५४] रमानौ = रमणीय । महराना = श्रीकृष्ण का ममाना । ममानो =

दुहुवनि की इकमती रीति को कौतिक कहा बखानौ।
राधा मोहन नाम रसीले जीवन को फल जानौ।
उनै उनै आनँदघन बरसत जस-सायर सरसानौ॥

(३५५) [भूपाली, रूपकताल

बलैया लेउँ आज के दिन की, राधा प्रगट भई है।
मंगल-मनि महिमा-मनि सोभा की मनि सुहाग-मनि बिधिना दई है।
नीके रहौ लहौ सुख-संपति सुकृत-बेलि की सरस जई है।
कीरति-कूखि धन्य आनँदघन जाकी कीरति बरनत निगम नई है॥

(३५६) [परज, इकताल

हो आजु रावल रंग रह्यौ।
कीरति कन्या जनी सुलच्छन सुनि गोकुल उमह्यौ।
मंगल की मनि प्रगट भई निज प्रकास चह्यौ।
सुर-समूह पुहुप बरखै परम सचु लह्यौ।
बेदनि या रस को जस भेद सौं कह्यौ।
आनँदघन सुभ संजोग अब सब निबह्यौ॥

(३५७) [धनाश्री, मूलताल

मिलि चलौ, बधाए जाहु कीरति कुँवरि जनी।
सुख की रासि बिधाता दीनी आजु भावती बात बनी।
देखौ री देखौ किन सजनी दिसि दिसि बाढ़ी ओप घनी।
गोकुलचंद-चंद्रिका प्रगटी अतुल-प्रेम-रस-रंग-सनी।
बाजति अति गहगही बधाई चैन चुहल चहुँ ओर ठनी।
गैल गवारनि गहमह माची रावल-छबि नहि परति गनी।
आनँदघन बरग्यौ इहि औसर धनि धनि यह दिन धनि रजनी।

मामा का घर। एकमती = एक मत-वाली। सायर = सागर। [३५५] जई = अंकुर। [३५६] रावल = राधा का ननिहाल। सचु = सुख। [३५८] कमला =

(३५८) [रामकली, रूपकताल

कीरति-कुल-उजियारी लड़ैती राधा प्रगट भई हो।
मंगल-बेलि सकल छाई सुकृत-समूह-जई हो।
परम प्रेम की रासि रसीली बाढ़ी है ब्रज ओप नई हो।
ब्रजजीवन की प्रान-सजीवनि मोद-विनोदमई हो।
जाकी चरन-रेनु कमला हू चोपनि सीस चढ़ाय लई हो।
आनँदघन घमड़नि को बरनै सब बिधि ताप गई हो॥

(३५९) [ईमन, मूलताल

लाड़ली राधा की सरस बधाई गाऊँ।
कीरति-कुल-उजियारी कौं अति मीठी भास मल्हाऊँ।
भाग-भरी के चाव, चाव सौं नित सोहिले मनाऊँ।
आनँदघन रस बरस दरस-हित याही आँगन छाऊँ,
यह न्यौछावरि हौं ही पाऊँ॥

(३६०) [जैतश्री, रूपकताल

मंगल की निधि है हो, बृषभान-भवन मैं।
कीरति-कूखि तूखि प्रगट भई सुख सोभा-सिधि है हो।
इनको भाग कहा कहि बरनौं कछुक कह्यौ विधि है हो।
आनँदघन-हित रावल घमड्यौ बरसत रसनिधि है हो॥

(३६१) [मूलताल

राधा की जनम बधाई हुलसि हुलसि हौंसनि गाऊँ।
देखि देखि मुखचंद सिहाऊँ मीठी भास मल्हाऊँ।
कीरति कुल-उजियारी को बहु भाँतिन लाड़ लड़ाऊँ।
जसोदा-जीवन ब्रजमोहन-हित जोरी-अभिलाष मनाऊँ॥

लक्ष्मी। [३६०] तूखि = तुष्ट करके। [३६१] भास = वाणी, वचन। [३६२]

(३६२) [विहागरो, इकताल

यह कौन बिधाता की रचना है कीरति-कूखि आनि प्रगटी।
याहि निरखि जो सुख बाढ़त सो जीयहि जानै चित चढ़ि
बहुरि नाहिन हटी।
जसुमति-ललन देखि मति आवति जोरी जुगति अनूप ठटी।
आनँदघन चिर जियौ हमारी जीवनि की निधि
जनम-जनम की तपति कटी॥

(३६३)

बजै वृषभानु कें बधाई कीरति कन्या जाई।
भाग-भरी राधिका सुलच्छन व्रज मंगल-मनि आई।
जसुमति रानी सुनि अति हरसी बिधना बनक बनाई।
सुत को हित बिचारि मन ही मन फूली अँग न समाई।
मंगल मोद बधाई की धुनि गोकुल रावल छाई।
प्रेम-बिवस डोलत नर-नागरि हित गति की अधिकाई।
यह जोरी चिर जियौ छबीली मन नैननि सुखदाई।
उनै उनै बरसौ आनँदघन सरसौ हरष-हरुआई॥

श्रीकृष्ण जन्म] (३६४) [टोड़ी, चौताल

आजु बधावनो नंद-भवन में भावनो, प्रगट्यौ है स्याम सुहावनो।
होत कुलाहल ठौर ठौर मन नैननि सुख-उपजावनो।
दुज मागध बंदीजन गन पै मनि मानिक धन घन बरसावनो।
व्रजपति की उदारता सो कैसें करि सकत सराहनो।
रस-जस मंगल-सिंधु सबै व्रज-रंग तरंग-उमंग बढ़ावनो।
आनँदघन व्रजचंद अखंड अमल अपूरब दरसावनो॥

(३६५) [बिहागरो, इकताल

व्रज मंगल आजु है हो।
व्रजरानी सुंदर सुत जायौ पूरब-भाग-उदै हो।

तपति = ताप। [३६३]रावल = राधा का ननिहाल जहाँ वे जन्मी थीं। नागरि =

मन भायौ सब ही के आयौ धन्य सुदेस समै हो।
आजु हमारो झगरो है जसुमति मैया सौं लै हो।
कहियै कहा महासुख सरस्यौ चिरजीज्यौ रसमै हो।
आनँदघन ब्रजजन-जीवनधन बरसौ उनै उनै हो॥

साँझी के पद

(३६६) [हमीर, इकताल

पुजावति साँझी कीरति माय, कुँवरि राधा को लाड़ लड़ाय।
अरचि चरचि चंदन बंदन सौं फूलमाल पहिराय,
विविध मधु मेवा भोग रचाय।
बोलीं बहिनोला घर-घर तैं भरि भरि ओली देत सिहाय।
कंचन थार उतारि आरत्यौ हौंसनि लागति पाय,
लली को भाग सुहाग मनाय।
यह सुख-सोभा दिन-दिन या घर सरस बधाए गीतनि गाय।
आनँदघन ब्रजजीवन जोरी रसिकन सदा सहाय॥

रास के पद

(३६७) [रामकली, मूलताल

रास करि करि सब घरि आई,
भाईं साँवरे प्रीतम बहु लाड़ लड़ाई, अनेक भाँतिन अभिलाष पुजाई।
मनहीं मन में करत बधाई, लीला ललित जहाँ की तहाँ पाई।
कौन सकै कहि भाग बड़ाई, सुक सनकादिक वेदनि गाई।
अतुल प्रेम को रास रचाई, त्रिभुवन मैं कीरति अधिकाई।
रसिक-मुकुटमनि सीस चढ़ाई, आनँदघन रस-रंगनि छाई॥

नारी। हस्याई = हरियाली। [३६६] साँझी = शरद् ऋतु मैं फूल-पत्तौं, अनेक रंगों आदि की सहायता से की गई चौकी या दीवाल पर की चित्रकारी। पुजावति = राधा से पुजवाती है। चरचि = युक्त करके। बंदन = सिंदूर। बोली = बुलवाई, निमंत्रित की। बहिनोंली = सजातीय स्त्रियाँ। ओली = काँछ। सिहाय = प्रशंसा

(३६८) [ईमन, इकताल

रास-मंडल बनि नाचत राधा-मोहन रस-मगन।
अंग अंग अति गति मटक देखियत झनकत नूपुर पगन।
छिति पर सखी नछतजुत विविध सगन गगन ससि भरत लखि डगन।
आनँदघन कल गान तान सुनि को न लग्यौ डगमगन॥

(३६९) [तालजात्रा

नाचै नाचै नवरंगी स्याम सरस साँच सौ गति लै।
मुँह की फबनि भौंह-दचनि सवनि के चित चूरैं
मुरली मैं रँगरली जति लै।
राधा रीझि रिझावनि भावनि तान-तरंगनि कीजति लै।
आनँदघन रस रास रचायौ पाग दई सबकी मति लै॥

(३७०) [केदारो, मूलताल

लालन लीजै जू फिरि लीजै वहै तान केदारो की मुरली मैं हा हा।
ललिता लेत वीन मैं चोपनि हौं हू कछू मुख दिखरावौ कौन
सरवरै आ हा।
या करि यौं गुन गाय लेत हौ छकनि छबीली धुनि को लाहा।
रीझि लाज आनँदघन घमड़नि कियौ रास तैं रस-चौमासो लियौ
हियौ भरि नाहा॥

(३७१)

रास मैं राधा सव रस राख्यौ।
बृंदाबन स्वामिनि अभिरामिनि भामिनि मन जस राख्यौ।
आनँदघनहिं भिजाय रिझायौ केलि-कला कस राख्यौ॥

(३७२)

फूली जोन्ह सुहाई मधुरितु की, बनमाली बिहरत रास।
मधुर मालती के सिँगार सजि पहिरे बिबिध वर बास।

करके। [३६९] जति = यति, ठहराव। पाग० = भली भाँति मिला दी। [३७०] ललिता = एक रागिनी। बीन = बाँसुरी। सरवरै = उपमा। [३७१] जस =

साँवल गौर अनूप रूप गुन मोहन हास मोहन विलास।
आनँदघन मुरली-धुनि-घमड़नि tannनि झर अनयास ॥

(३७३) [इकताल

रास रचायौ राधा नागरि मोहन स्याम नचायौ नीके।
सोही लै गति चोख चटक सौं अनुपम रूप दिखाय सिखावति
त्यौं ही त्यौं जिय भावै पी के।
इनकी सीखनि सिखवनि इन पै बनि आवै हो
ये पटतर हैं आप सही के।
आनँदघन वृंदावन जमुना-तीर घमड़ि रह्यौ भाग
सरद-राका-रजनी के ॥

(३७४)

सरद-रितु जामिनि फूली है।
जगमगी जोन्ह छबीली छाई सरस पुलिन रस-रास रुचि रची
जमुन-कूल अति ही अनुकूली है।
राधा मोहन नाचत गावत रूप-गुन-कला रसमूली है।
आनँदघन अदभुत विलास-झर वृंदावन मैं देखत भूली है ॥

(३७५) [शंकराभरण, तालजात्रा

रास मैं रसीलो मोहन सरस रंग राखै।
मुरली-धुनि मोहनी कर पदन वंग राखै।
मुकुट-लटक गति की मटक अंग सुढंग राखै।
पुलिन-मंडल जमुना-रुचिकर-तरंग राखै।
सरद-निसा पूरन-ससि-मुख अभंग राखै।
राधा के हित नटवा निपुन अति उमंग राखै।
आनँदघन चातक-व्रत एक संग राखै ॥

जैसा। कस = कैसा। [३७२] बास = वस्त्र। [३७३] सोही = शोभित। चोख = तीव्र। पटतर = समानता। सही = ठीक। राका = पूर्णिमा। [३७५]

(३७६)

अगनित बनिता बनि वनि नाचत वनमाली-सँग बन्यौ है रास
वर बानिक जमुना-पुलिन मैं।
साँवरो सोहन रसिक मोहन चपल चुहुल चतुर जोहनि
सबनि सौं हिलि मिलि बिलसत अति आनँद बन मैं।
सरद-राका-रजनी अमल रुचि राचिनी रजित
सकल जुवति मिलि घोष व्यापक कै पुख्यौ त्रिभुवन मैं।
आनँदघन रस-संपति अचरज मूरति दंपति
नित बिहार दीसत पागे हित-पन मैं॥

(३१७) [शुद्ध चौताल

चटक कतारन की अति नीकी कल सौं नाचै मटक-भख्यौ मोहन।
कर-चरन-न्यास अभिनय-प्रकास मुख
सुख बिलास मन उरझै घुघुरारी सोहन।
प्यारी उघटति कंठ-किलक आछी, दसन-चिलक
आछी, नयन चिलकै जोहन।
आनँदघन रस-रंग-घमड़ सौं ललिता मृदंग बजावति
परनि भरनि सी परति उठि गोहन॥

(३७८) [केदारो, चौताल

सकल कला-प्रबीन बृषभानुनंदिनी रास नचै।
उघटत मोहन नटनागर बर तरल ततकारान चोपनि चुहल मचै।
ललिता ललित मृदंग मैं रंग राखति विविध भेद सौं सुगंध सचै।
आनँदघन प्यारी के पाइन लागत नाच को साँच रचै॥

बंग = वक्र। [३७६] चुहुल = विनोदी। [३७७] चटक = छटा। न्यास = रखना। अभिनय = नाट्य। चिलक = चमक। परनि० = पानी का पड़ना और भरना। [३७८] तरल = चंचल। ततकारनि = नाच के बोल। नाच० = नृत्य

(३७९)

रास-मंडल मैं नाचत दोऊ तकटधि कटधि
धिक धिलाग थेई थेई ततथेई ।
होड़ाहोड़ी भेद भजावत कुक भुक कत कथु
गावै तक धुगा धिधिल कटथेई ।
हाव-भाव लावन्य कटाछनि प्यारी पिय-हिय रमि सुख देई ।
आनँदघन रसरंग पपीहा रीझि रीझि आँकौ भरि लेई ॥

(३८१)

साधि कै सुर मुरलिका मैं केदारो ठान्यौ है मोहन रसरंगी रसरंगी ।
जैसैं जैसैं जिय भावै तैसैं तैसैं राधे रिझावै तान त्यौनार तरंगी ।
कहा कहियै देखि देखि रहियै जिनि जिनि गासनि की व्यौरनि मैं रंगी ।
आनँदघन पिय अरु प्यारी के सुर मैं रहत अभंगी ॥

(३८१)

तेरे री मुख की जोति आखैं कोटिक सरद-चंद मंद लागै ।
ललित हसनि दसननि की मयूखनि दमकि किसोर
चकोर-नैना नव चैन-पियूषनि सौं पागै ।
अति रसभरे खरे कोमल कपोलन मैं मुसकि लाड़िवो
गालनि मैं गाड़ परत्र आछी छवि जागै ।
आनँदघन पिय जिय की जीवनि तोहि सौं अनुरागै
सु तेरेई गुन निसि दिन रागै ॥

वसंत-विलास] (३८२) [हिंडोल, इकताल

वारियै या छवि पै वहुतक बसंत तू मदनगुपाल लाल
के री आली उर माल भई है ।

की सत्यता सिद्ध हो जाती है । [३७९] तकटधि० = नाच के वोल । कुक० = वोल । आँकौ० = अङ्क, गोद । [३८०] त्यौनार = ढंग । गास = गाँठ । व्यौनरि = खोलना । [३८१] आखैं = देखने पर । गाड़ = गड्ढा । [३८२] फूल =

अंग अंग रति-रग प्रगट भए, भरी फूल हिय की नखसिख लौं
तेरी रति बिधिना तोहि दई है।
मो नैननि को सुख हौं ही समुझति नीकी बसंत-पंचमी नई है।
आनँदघन पिय रीझनि भीजी घमड़-रस राख्यौ अति रस-रासि लई है॥

(३८३)

आवौ री बन देखन जैयै, प्रगटी है बसंत-गुन-गोभा।
बरन-बरन फूलन के आभूषन रचि रचि लै राधा को सिँगार बनैयै।
गूँथि मालती-माल मनोहर व्रजमोहन कौं लै पहिरैयै।
आज मनोज-पंचमी सुभ दिन रंग बढ़ैयै हिलि आनँदघन बरसैयै।

(३८४) [चौताल

बसंत फूलौ री बृंदावन आय।
नित ही बसंत-मूरति व्रजमोहन के देखन के चाय।
ताहि सफल करि राधे माधव है मिलि खिलिबे को दाय।
आनँदघन पिय तो हित झूमि झूमि मुरली रहे हैं बजाय
अब तू दामिनि लौं धरि पाय॥

आदिनाथ-स्तवन] (३८५)

आदि हिंडोल गायौ आदिनाथ हौं हू गावत पाछै।
भक्तराज गुन-हित गुनी सुरगंगा-मौलि महास्तव-मूरति काछै।
गिरिजापती गिरीस-निवासी चंद्रचूड़ चिंतामनि नित निगमनि साछै।
आनँदघन को व्रजजीवन गुनगान-गरज दै राखौ निरंतर आछै॥

(३८६) [वसंत, तालजात्रा

री कुसुमित बनराज आजु देखेई बनि आवै री।
जमुना-तट सघन स्याम कैसी छबि पावै री।

प्रसन्नता। [३८३] गोभा = अंकुर। मनोज० = काम-पंचमी, वसंत-पंचमी के दिन कामदेव की भी पूजा होती है। [३८५] आदिनाथ = शिव। काछै = धारण किए हुए। साछै = साक्षी। [३८६] नूत० = नवीन कली। गहर =

पवन-वस पराग-पुंज कुंजन पर छावै री।
मधुप-पुंज मंजु घोष आनँद उपजावै री।
तरु वेली-वलित ललित उमंग उर बढ़ावै री।
नूत-मुकुल कलित मुदित कोकिल कल गावै री।
मुरली रव-पूरित धुनि सुनियै अति भावै री।
तेरे गुन गाय गाय तोहि यौं बुलावै री।
चलि वलि अब न करि गहर समझि चोप चावै री।
सरस दरस परस साधि औसर के दावै री।
आनँदघन तोसौं मिलि अति रस वरसावै री॥

(३८७) [हिंडोल

स्याम सौं रसीली राधा खेलै वसंत वरसि सरसि परसि राग-रंग।
गावति तान-तरंग उमंगनि आनँद सदन वदन-लसनि
भृकुटी-नचनि मान-संग॥

(३८८) [चौताल

आजु बन्यौ री सुखदैन स्याम लाल पहिरैं बागे वसंती।
चोवा चित्रन फबी है छैल-छवि उर हार राजत
वरन वरन फूलन की वैजंती।
रूप-निकाई अनूप कहा कहौं जोवन-उलहनि निपट लहलहंती।
तेरे हित आनँदघन. घुमड्यौ ढुरि घुरि रस
राखियै सुनि राधे सुहागवंती॥

(३८९) [वसंत, इकताल

विहरत वृंदावन रितु वसंत, राधा रमनीमनि कांत कंत।
प्रफुलित जमुना-तट विविध कुंज-धुंधुरि पराग अलि-पुंज गुंज।
गावत हिंडोल नव तान तार, गुन-रूप-रासि दंपति उदार।
यह सुख सोभा वरनी न जाय, तन मन आनँदघन रह्यौ छाय॥

---

१ देर। चावै = उमग को।

(३६०) [हिंडोल, कपोतताल

आवौ री मिलि गावौ गावौ बजावौ बसंत-पंचमी है आई।
राधा लै बृंदावन चलियै देखन सोभा सुनियत मोहन मुरली सुर गाई।
कोकिला-कुहकनि और खग-चुहकनि लागति स्रवननि अति सुखदाई।
आनँदघन की गरज सुनाई माची है मदन-बधाई॥

(३६१) [मूलताल

तुम न मानी हौ, उनके तौ मन मान्यौ है मान।
मो मन भायौ करत क्यौं न मिलि पिक पुकारि सुनि कान,
रितुपति आयौ देत निसान।
मदन-सहायक सज्यौ संग ह्वौ लै करि कर तीखे बान।
सैन रैन पराग धुंधुरि लखि चलियै बेग सुजान अकिले
आनँदघन प्रिय प्रान॥

(३६२) [इकताल

स्याम नवरंगी प्यारे खेलत अपनी गोरी सौं।
चोप चाव चरचाय नैन मन प्रेम-रंग-बोरी सौं।
हित-चाँचरि नित मची रहति है नइ नइ उमँग दुहूँ ओरी सौं।
आनँदघन रस रीझे भीजे हिलगनि झकझोरी सौं॥

(३६३)

जोबन मौर्‌यौ बसंत फूल्यौ सरस गुराई गोभा निकसी।
अंग अंग नवरंग जगमगे मुख सुखसदन चंद्रिका बिकसी।
रसिया मधुप लट्टू भयौ डोलै वन बोलै सो लै सुनि पिक सी।
बलि बलि चलि हिलि मिलि खिलि स्यामा ब्रजमोहन सौं
कहा कुलकानि दै रही बिक सी॥

---

[३६१] मदन० = वसंत।

(३६४) [वसंत

बनि बनि आई ब्रज-बनिता बर बसत बृंदावन
बनमाली के हित हिलि मिलि।
कोटि काम अभिराम स्याम-छबि-हेत हुलसि लसे हैं बदन सुख-
सदन सबनि के परम प्रेम-फुलवारी खिलि।
नागर नैन-मधुप मधु-लंपट बिहरत अंग अनंग-रंग भिलि।
बहु बिधि खेल मच्यौ आनँदघन चोवा चंदन बंदन भरत परसपर.
जोवन के जोरनि पिलि॥

(३६५) [हिंडोल, चौताल

मेरी राधा कों साँचो बसंत यह केलि-कलपलता
मोहन काम-कलपतर।
प्रफुलित फलित ललित हित-बलित सदाई बिराजत
लाग्यौ रहत आनंद-मकरंद-झर।
भौंरी अँखिया पीवति जीवति नित रस सींचे
जमुना-तट हो बृंदावन सुदेस थर।
बिलसत लसत घुमड़ि आनँदघन ऐसे बड़भागी जु
बन ही में करि पायौ घर॥

(३६६) [मूलताल

देखौ राधा को सुहाग, याके बस वा पर-अनुराग।
कान्ह कंत बसंत-मूरति नित याके बस बड़भाग
बिहारन कौं बृंदावन-बाग।
याकी रूप-निकाई बिधना याहि बनाइ बनाई याके गुन
मुरली मैं गावत पूरत बिबिध रागिनी राग।
याहि परसि सरसत आनँदघन पगे परम पन-पाग॥

---

[३६६] वा = वह। पर = परम।

(३९७) [वसंत, इकताला

बन बसंत फूल्यौ है, जब तैं हरि राधा फूले अति मन मैं
उघरि उघरि होरी खेलन कौं हित चित चौपनि।
छाके प्रेम नेम सब थाके वे दिन भरि अभिलाषनि चितवनि
ही मैं भई जु बहुत बिधि हिय जिय सौपनि।
चाव गहगहे उमगि डहडहे बैस लहलहे जोबन कौपनि।
दुर्लभ सुलभ अब भई भाग-बल आनँदघन रस पियत जियत
मिलि सियत फागुन-गुन अंतर-खौपनि॥

(३९८) [हिंडोल, चौताल

बसंत नटुवा बनि आयौ री नव नव बरन पुहुप-बसन
पहिरि रिझावन कौं ब्रजमोहन स्याम।
नटनागर गुन-आगर को मुख देखि बिबस भयौ
जाके रोम पर वारि डारियै कोटिक काम।
ब्रज-जुवराज उदार सिरोमनि रीझि दयौ बृंदावन मैं
नित को बिसराम।
आनँदघन पिय तेरे रसरंगनि भीजि रीझि बैन बजावत
लै लै नाम चलि बलि विहरन कौं सब धाम॥

(३९९) [वसंत, इकताला

होरी खेलैं रस-भीजे रीझे नंदलाल बृषभानु-कुँवरि
भरि रंग-भाय अनुराग-चाय।
आछी मीठी भासनि सौं हित टारौं गारी गाय गाय
मुख-सुषमा कछु बरनि न जाय।

---

[३९७] कौपनि = कोंपल । खौपनि = खोंच, वस्त्र का फटा अंश।
[३९९] भासनि = भाषण, बातचीत। समूहति = सामने आती है।

दुहुँ दिसि सहचरि भरित रंग सौं उमहति समूहति धाय धाय।
मच्यौ खेल बृंदावन जमुना-तट आनंद-अंबुद रह्यौ छाय
यह छबि हेरत मति-गति हिराय॥

(४००)

नवल बृंदावन नव मनि-मंदिर नव कंचन बरनत सिंहासन।
नवल कुँवरि गोपीनाथ विराजत सोभा-निधि भरे नवल हुलासन।
नव भूषन नव बसन नवल तन महकत भीने नवल सुबासन।
नवल रूप नव नेह-भरे दृग नवल भृकुटि वारौं समर-सरासन।
नव गुन-रूप-अगाधा श्रीराधा जगमगात ढिग नवल प्रकासन।
नव सहचरी सजै नवसत निरखत छवि हरखत चहुँ पासन।
नवल गान नव ताल तान नव नवल जंत्र नव नृत्य-विलासन।
नवल रीझि नवरँग रस-भीजनि आनँदघन बरसत मृदुहासन॥

होरी जात्रा के पद

(४०१) [देवगंधार

होरी खेलै अलबेलो नंद महर को।
चंदमुखी लखि बढ्यौ रूपनिधि रंग अनंग-लहर को।
चोरत लै मन नैन सवनि के पूरन प्रेम-गहर को।
गुपत प्रगट भिजवै आनँदघन रसिया आठ पहर को॥

(४०२) [आसावरी, इकताल

हो हो हो होरी खेल मचायौ गोकुल गैल-गरवारैं।
व्रज-गोरिन भोरिन की घातनि डोलत साँझ सवारैं।
चौकस चपल चिकनियाँ मोहन गोहन पर्यौ है हमारैं।
आवौ घेरि कनौड़ो करियै कौ लौं धूम सहारैं।
आनँदघनहिं भिजै रिझवैं सब दिन की कसरि निकारैं॥

---

[४००] भीने = मद मद। सुबास = सुगंध। समर = स्मर, कामदेव।
नवसत = सोलहो शृंगार। पास = पार्श्व, ओर। [४०२] चौकस = सावधान।

(४०३) [धनाश्री, मूलताल

री ननदिया होरी खेलन दै।
कान्ह गरुआरे उधम पाखौ सह्यौ न परत मो पै।
जो कछु कहैगी सोई करौंगी फागुन मैं जस लै।
आनँदघनहिं भिजाय रिझाऊँ आजु यहै पन है॥

(४०४) [इकताल

कहु किनि होरी खेलौं रंग रहै मो संग।
तिहारे गुलाल खरकत मो आँखिन ब्रजमोहन नवरंग।
जोवन-फागु-सवादै तुम आए, मैं पाए अभिलाष अभंग।
सुघरि उघरि आनँदघन बरसे ढकत नहीं ये ढंग॥

(४०५) [तालजात्रा

हेली होरी खेलेई बनै, स्याम सुजान पिया सौं।
औसर है मन-भावतो कुल-कानि को गनै।
जीवन-फल लीजियै यह कीजियै पनै।
जीजियै रस पीजियै बरसाय आनँदघनै॥

(४०६) [इकताल

रसिक छैल नँदलाल खिलारी और के हम जाने।
अब करि भए निपट ही ढोठक आनत नाहिँ आँखि-तर
काहू फागुन-मद-उमदाने।
भँवर-भाव रस लेत फिरत हौ वीथिन वगर रहत मँडराने।
मसि मँजीठ-रँग-रँगे अधर दृग आनँदघन बरसाने
तिहारे गुन नहीँ परत बखाने॥

(४०७)

क्यौं नकवानी करत हौ अनमिले होरी खेलौ।
बेसँभार इत करत मोहि कित उत भावति भरि भुजनि सकेलौ।

उधम०=ऊधम कब तक सहूँ। [४०४] किनि = किसके साथ। खरकत = खटकता है। सुघरि = अच्छी घड़ी। [४०६] ढीठक = धृष्ट। उमदाने = उन्मत्त।

रजनी रँग-भीजे तुम आए हरद-रंग मो अंग मो रंगनि रेलौ।
सौंहैं न होत गुलाल-भरे दृग खरकत मो पुतरिन गहि मेलौ।
नखछत खुलि न पीर मनियतु है, अचरज-झकझोरनि रस झेलौ।
आनँदघन पिय नए खिलारी झूमि झूमि छल-बलनि झमेलौ॥

(४०८)

ऐसो छैल नद को घाती, मेरी छुवत छबीली छाती।
पट की ओट पवन नहिं लागत नवजोबन की थाती।
कछुक अनूठो मिस बनाय ढिग आय करत बतबाती।
मुख सौं मुख लगाय सुख पाय हँसत करि आप-सुहाती।
आटपाय के दाय भर्यौ डोलत है साँझ प्रभाती।
छल-बल करि छाँड़त नहिं काहू पकरत दौरि दगाती।
न्यौज लगौ री होरी, बरजोरी की जहाँ बसाती।
नातर इन अनवादन आनँदघन तब ही विष खाती॥

(४०९)

उमग्यौ है मो चित चाव।
होरी खेलिहौं लाज सौति कहा करिहै अब खुलि खेलन को दाव।
अपने मन की कसरि काढ़िहौं कौ लौं करौं दुराव।
इन फागुन हौं आनि जिवाई, मारत हुते चवाव।
तरसत हुती दरस कौं परस कौं बिधिना रच्यौ बनाव।
आनँदघन गुलाल-घमड़नि मैं करिहौं कौंध-मिलाव॥

बगर = घर। मसि = स्याही, काला रंग। मजीठ० = लाल रंग। [४०७] भावति = प्रेयसी। [४०८] बतबाती = बेबात की बात, छेड़छाड़। आटपाय = नटखटपन। दगाती = दगाबाज। न्यौज० = देवता को अर्पित हो जाय (गाली) अर्थात् किसी काम की नहीं। बरजोरी० = जहाँ जबर्दस्ती का ही वश चलता हो। नातर = नहीं तो। अनवादन = फालतू बातों से। [४०९]

(४१०)

अचगरे तुमहीँ देखे सब डर डारेई डोलौ।
खेल किधौँ सतभाव लाड़िले कंचुकि के रस खोलौ।
जो कोऊ लखि पावै तौ उतर देहुँ कहा कहि बोलौ।
आनँदघन रसबादनि झूमे तुम सौँ भलो अबोलौ॥

(४११) [इकताल

होरी खेलियै, आँखिन सौँ आँखि मिलाय।
मन की मरक काढ़ि सब दिन की निधरक कै रस झेलियै।
अंजन आँजि मीड़ि रोरी मुख हँसि गरबाँही झेलियै।
गहिर कान्ह को दावँ न राधे जू धुर की अलबेलियै।
मोहनलाल तमाल, बालबर तू सुहाग नवेलियै।
रिझै भिजै आनँदघन पिय कौं रस लै आजु अकेलियै॥

(४१२)

राधे अब की चाँचरि बहुत्यौ दै तैं री हो चाँचरि-रंग।
फागुन मास फब्यौ भलैं मिलि खेलै ब्रजमोहन-संग।
हौँ रीझी तैं रीझत ये तेरो लहलहो सुहाग।
रोम रोम आनँद भरि पिय राच्यौ तेरे अनुराग।
तेरी चाँचरि-राचनी तेरो होरी-त्योहार।
तोतैं रंग रहे सबै रस भीज्यौ रसिया रिझवार।
तेरी भाँवरि-भरनि मैं थकि घूमै ब्रजनायक छैल।
बदन-चंद लटकि लटकि सो रोकै मन-लोचन-गैल।
ब्रज-गोरी गावैं सबै तेरी चाँचरि के गीत।
भिजयौ रीझनि चोप सौँ अपनो आनँदघन मीत॥

कौंध = बिजली की चमक। [४१०] अचगरे = नटखट, शरारती। [४११] मरक = हौसला। झेलियै = क्रीड़ा कीजिए। मेलियै = डालिए। धुर की =

(४१३)

ब्रज माची सरस धमारि होरी-रंग रह्यौ । टेक ।
घोष-नागरी फगुवा माँगन आई जसुमति-धाम ।
प्रेमपगे रगमगे जगमगे निरखे मोहन स्याम ।
गावत गारी दै दै तारी, गति सौं डफहि बजाय ।
आँगन मैं औसर की चाचरि चोखन रही मचाय ।
फैल फबी छवि छकी खिलारैं चंदमुखी चहुँ ओर ।
घेरि लिये गहि किये आपबस कान्हकिसोर चकोर ।
काजर दै मुख मीड़ि गुलालहि डगरति फगुवा-हेत ।
सैननि ही मैं सुघर साँवरे हा हा करि हँसि देत ।
पून्यो सुदिन समदि सब सुखनिधि बढ्यौ महा समुदाय ।
गोद भरति रोहनी जसोदा-मोद कह्यौ क्यौं जाय ।
या घर या सुख सदा बिराजौ देति असीस बखानि ।
आनँदघन रस हौं लहौं जस नित ब्यौहारहि मानि ॥

(४१४) [ललित, तालजात्रा

उन्हें तुम्हें आछी फाग मची है ।
निकट नवेली चटक चोप सौं प्रीति की रीति रची है ।
नैन गुलाल भरे अरसौं हैं बातें दीठि लची है ।
सब ही अँग रँग बोरि पठावै काहू बिधि न बची है ।
झकझोरनि बूँद छूटे टूटे उर नग-रंग खची है ।
कौन खेल अब खेलियै तुम सौं बुद्धि बिचारि पची है ।
मन भायौ फगुवा दै आयौ सो गति उघरि नची है ।
आनँदघन इनहू हित छाप पन परतीति जची है ॥

गंस, बचन । [४१३] चोखन = उमंग की तेजी । खिलारैं = खिलाड़ी स्त्रियाँ । डगरति = आगे बढ़ती हैं । हेत = लिए । समदि = भेंट करके ।

(४१५)

भले वनि आए हौ मोहन लाल रँगीले नैन भराए गुलाल।
फागु मैं भावते भाग जगे लगे नीके करी हौं निहाल।
अंग अनूठी सुगँध के डोरे गुही अलिमाल रसाल।
रीझनि प्रान अरगजा ढोरि करैगी आनँदघन ख्याल॥

(४१६) [इकताल

आजु निपट ढिठौंहैं दै रहे साँवरे काढ़ि कै मन की।
भौंह नचाय कहा ऐंड़त हौ निडर अमेड़ भए ब्रजमोहन
घात वनि गई बन की।
ब्रज-राजा की कानि न मानत गोधन-ओट टोह पर-धन की।
फागु देखि अति ही इतराने आनँदघन करि नाक नचैहौं
तौ हौं राधा तन की, सौंह करति हौं अपने पन की॥

(४१७) [टोड़ी, चौताल

उमड़ि उमड़ि घुमड़ि घुमड़ि घुरि घुरि ढुरि ढुरि
खेलत राधा-मोहन रस-फागु-रवानी।
बिकसि बिकसि निकसि निकसि अपने अपने झुंडन तैं झूमत
झुकत झपटि लपटि बातनि घातनि कहत गहत बनक बनी मनमानी।
मचत रचत पचत बचत रचत लचत घिरत भरत
मोरत झकझोरत करि ऐंचातानी।
आनँदघन भिजवत रिझवत भीजत रीझत
रस लेत देत मन नैननि सुखदानी॥

---

[४१४] लची = नीची हुई। पची = परेशान हुई। [४१५] डोरे = सहारे। ढोरि = लेकर। ख्याल = खेल। [४१६] अमेड़ = मनमानी करनेवाला। गोधन० = गाय चराने के बहाने। धन = द्रव्य ; धन्या (स्त्री)। तन =

(४१८) [तालजात्रा

होरी खेल रंगनि रँगीलो छैल छबीलो नागर गोरी-संग।
उरजनि तकि तकि छाँड़त छवि सौं कंचन की पिचकारी
भरि भरि नवल केसर-रंग।
प्यारी घात बनावत आवत मूठि-गुलाल चलावत सुंदर साँवरे अंग।
आनँदघन-रस दोउ बरसीले झूमि झूमि झपटि लपटि
जात भीने अनँग-उमंग॥

(४१६)

पकरि बस कीने री नँदलाल, झुरमुट करि चहुँधा तें बहुत ब्रजबाल।
काजर दियौ खिलार राधिका मुख सौं मसरि गुलाल।
देखत बनै स्याम की सोभा, सहनसील कै भए निहाल।
धन्य फाग धनि भाग की जागनि जामैं ऐसे हाल।
चपरि चलन कौं बहुत अरबरत छूटत क्यौंऽब परि प्रेम के जाल।
सूधे किए बंक ब्रजमोहन आनँदघन रस-ख्याल॥

(४२०)

होरी के खिलवार।
देखे मोहीं सौं रसबाद चलायौ नए छैल रिझवार।
गावत फिरत उघारी गारी अगवारैं पिछवार।
आनँदघन उनएई दीसत गिनत न साँझ सवार॥

(४२१)

डोल की झूलनि मैं बिराजै झूलनि हार बारनि की मोतिन सिंगार
अपार ओप लसै साँवरे गोरे अंग।
अतुल रूप जोबन की तुलनि मैं दरसत नए नए रंग।

ओर, पच्छ। [४१७] रवानी = प्रवाह। [४१६] झुरमुट = झुंड। मसरि =

सरस फागु खेलि झेलि सकल सुख भीजे रीझे रुचि-तरंग।
जमुना-तीर कुसुमित वृंदावन नित नित ही आनँदघन वरसत
सखि-समाज लिये संग ॥

(४२२)

आजु मेरे आए मया करि होरी खेलन स्याम रसीले।
सब रँग भीजि रहे पहिले ही ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे
कौन रंग भिजऊँ तुम्हैं रस-बरसीले ॥

(४२३) [केदारो

सलोनो स्याम उज्यारौ, ब्रजलोचन को तारौ।
ताक लगाय फिरत फागुन में जोबन को मतवारौ।
आँखिन पैठै हियरा बैठै, खोरि खगै पथ ढारौ।
रँगनि भिजै रिझवै ब्रजमोहन गनत न साँझ सवारौ।
मसरि गुलाल कसरि सब काढ़ै चेटक रूप ढरारौ।
नकवानी करि लेत इते पै लागत है अति प्यारौ।
जित जैयै तित सनमुख पैयै क्यौंहूँ टरत न टारौ।
आनँदघन रसवादनि छायौ कान्हर गोकुलवारौ ॥

(४२४) [मूलताल

होरी खेलि मदनमोहन प्रीतम-संग।
सुंदर वदन गुलाल लगैयै चोवा चंदन बंदन स्याम सलोने अंग।
गैयै बजैयै चाँचरि मचैयै तचैयै री वाहि गति अति ही सुढंग।
आनँदघन वरसैयै बढ़ैयै सरसैयै सुख उपजैयै अद्भुत रंग ॥

(४२५) [अड़ानो, इकताल

कन्हैया रंगनि भीजै मोहूँ रंगनि भिजावै।
दीठि-पिचक भरि भेदभाव सौं मो तन ताकि चलावै।

मलकर। [४२०] उघारी = खुली, बेपरद। [४२३] खोरि० = गली में डटता है।

नैननि सैननि होरी खेलै करत सबै कछु जो जिय भावै।
रीझनि रमड़ि घमड़ि आनँदघन उघरि उघरि झर लावै॥

(४२६) [रूपकताल

निपट लाड़िली परी तेरी मुसक्यान प्रानपिय-जिय सौं खेलि खगी है।
अधर पाय धरि धाय रंग बरसाय जाय ढुरि भिजवति
सुखवति हाय, कौन होरी दाय के चाय पगी है।
फूलि फूलि फैलति रस-भीनी उमँग-भरी खरी ढोरी लगी है।
आनँदघन रिझवार छैल तिहि आवन,
गैल अरैल भयौ टारत नहिं नेकु टगी है॥

(४२७) [ईमन, तालजात्रा

सुघर खिलार याकी वहियाँ क्यौं मरोरी रे।
नीठि निहोरैं खेलन निकसी आनँदघन उनए बरजोरी रे।
ए रहौ दैया कौन भाँति सौं खेलत होरी रे॥

(४२८) [इकताल

गुजरिया तू रँग-राची मोहन के अनुराग।
होरी मैं उनहूँ की तोसौं नीकी लागी लाग।
छुटे वार मुख ओप डहडही जगमग रह्यौ सुहाग।
आनँदघन हित चतुर चातकी पगी प्रीति-पन-पाग॥

(४२९) [तालजात्रा

होरी के खिलार भए नए छैल अजू तुम वरबट वहियाँ मरोरौ।
आवत मूड़ चढ़े अति ज्यौंज्यौं करी कछु कानिकनौड़ जनावत जोवनजोरौ।
घातनि घातनि की चतुराई चलैगी न ह्याँ ऐसैं औरन भोरौ।
वहवहे कहँ रहे, धोखे काहू के आनँदघन
भूले से फूले फिरौ तकि ताही त्यौं टकटोरौ॥

पय = दूध। [४२६] टगी = टकटकी। [४२७] निहोरे = मनाने पर, विनती करने पर। [४२९] वरबट = वरबस, जबर्दस्ती। कानि० = मर्यादा का ध्यान,

(४३०) [इकताल

मन न रहै मेरो व्रजमोहन पिय सौं निधरक होरी खेले बिन।
दुरि दुरि झुरि झुरि कौ लौं रहौं री विधना दियौ है ऐसो दिन।
अपने रँगनि भलैं भिजवौंगी जैसें हौं घर मैं भिजई इन।
आनँदघन सनेह की घुमड़नि जानी है सब ये रसबादिन॥

(४३१) [मूलताल

ऐसैंऐसैं होरी खेलौ उघरिउघरि व्रजमोहनसौं व्रजमोहनसौं मनमानी।
परु की कसरि काढ़ि सब नीकैं लैहौं भावतो
दाव भयौ सो अब मैं यह जिय ठानी।
कानि-कनौड़ कौन की सजनी भई बहुत दिन यौं नकबानी।
आनँदघनहिं भिजाऊँ तौ बृषभानुजा साँची
रस दामिनी उनहूँ परिहै जानी॥

(४३२) [इकताल

नंदलला बृषभानुकिसोरी होरी खेलत चायन सौं।
सुंदर बदन धमारिन गावत उपजावत रस-भीनी
तान धावत गुलाल लै ल दायन सौं।
दुहुँ दिसि अली भली सब बातनि घातनि रचि
आवत खेलन कौं जोबन-भरी तमक तायन सौं।
आनँदघन पिय प्रिया नागरी दुरि मुरि दृस्टि बचाइ
जाइ ढिग रंगनि भरी बिबिध भायन सौं॥

(४३३)

लाल हिये लखि भरत लालसा बाल-बदन मंडिन-गुलाल।
मोहि लेत लगि चोवा बैंदी भाग-राग-जगमगे भाल।

लिहाज। बहबहे = बढ़ेंदू। टकटोरौ = टकटकी लगाकर देखते हो। [४३१] परु = गत वर्ष। [४३३] बैंदी = बिंदी। हाल = तुरंत। बीर = हे सखी। [४३४]

बीर तीर छुटि अलक छबीली छलनि सहित चित छलति हाल।
नीलमनी मिलि बनी द्वैलरी गर मोतिन खिलि जोति-जाल।
अंग अंग अनुराग-रँग-भरी खरी ओट दीने तमाल।
चोटनि लोटपोट करि डारत आनँदघन चितवत रसाल॥

(४३४)

लै गुलाल मुख डार्‍यौ पी कौ, देखौ होसाहोसी या ती कौ।
इतने पै गुलचा दै आई, चकित रहि गए कुँवर कन्हाई।
याको धीर कहत नहिं आवै, याकी गति दामिनि कह पावै।
लियौ दावँ हरि चकाचौंध भरि, आई अलग छराए लौं छुरि।
मीड़ति करनिमौन हरि ठाढ़े, रूप-विमोहित जनु लिखि काढ़े।
होरी खेलि रंग इन राख्यौ, वहुत दिनन तें जो अभिलाख्यौ।
आनँदघन रस भिजै रिझायौ, परसि आँच हिय सूखि सिझायौ॥

(४३५) [विभास, मूलताल

निपट निडर खिलार हौ देखे, होरी को खेल यह कौन।
आनँदघन पिय झूमेई आवत बहियाँ पकरि
हठि गरे लगावत कहाँ लौं गहै कोऊ मौन।
कितहुँ भोर ही आई जमुना-जल तुम घर तें लै निकसे सौन।
चतुर छैल कै देत गवार्‍यौ देह-दसा लखि लैगी
ननदिया भूलि आई हौं हौन॥

(४३६) [तालजात्रा

तुम उन ही सों हो खेलौ जिन सौं खेलि रहे हौ लाल लगौं हैं।
नैन गुलाल-भराए आए रस की रैन जगौं हैं।

होसाहोसी = लाग-डाँट। गुलचा = गाल पर हाथ की मुट्ठी से हलकी चोट करना। छराए० = मायादृश्य या जादू की भाँति। सिझायौ = रससिक्त हुआ। [४३५] सौन = गुलाल, लाल रंग। हौन = अपनापन। [४३६] धुर के =

इतने पै मो त्यौं मुसकत हौ धुर के निपट लजौं हैं।
घर आए को बरजै बैठियै कै धरौ पायँ अगौं हैं।
आनँदघन देखेऊ देखे अपनी गौं भरमौं हैं॥

(४३७) [इकताल

गोकुल मैं होरी यह कैसी, अहो दैया देखी सुनी न आजु लौं।
निधरक पकरि पराई नारि कौं झकोरत झटपत करत है निपट अनैसी।
दिन चारिक हौं अपनेई पीहर औरौ रहती जौ पै जानती होति ह्याँ ऐसी।
आनँदघन ब्रजमोहन अति उफनाय चल्यौ अब जानि परैगी जैसी॥

(४३८)

परख्यौ करत गहर लौं हमैं यह धोटो खरो महर को कन्हैया।
बाहू मैं फिरि होरी माची अब कैसे बचियैगो दैया।
चौचँद की चाँचरी मचावत आठ पहर को छैल खिलैया।
आनँदघन हित कहुँ जौ भिजवै बजै फाग मैं बीध बधैया॥

(४३९) [कालिंगरो

स्याम प्यारे हमसौं होरी खेलन आए मेरे कित के।
ब्रजमोहन सोहन सुखदायक सब विधि लायक नायक नित के।
निपट रगमगे सौंधे सगवगे जावक खौरि कनौड़े हित के।
आनँदघन हित चोपनि उनए उघरे भाग भुरहरे इत के॥

(४४०) [पूरबी, तालजात्रा

गोरी गोरी दिनन की थोरी, वोरी रँग स्याम सलोने सौं खेलै होरी।
गावै गारी रस-ढारी प्यारी तारी दै दै करै चित चोरी।
हँसि जोहै सोहै उमेठियै पैठियै जाति हिये वरजोरी।
आनँदघन मुरकि डारै भोरी सो झोरी मैं रोरी और जानै को री।

सिरे के, बहुत अधिक। अगौं हैं = पहले, आगे। भरमौं हैं = घूमनेवाले।
[४३७] पीहर = मायका, नैहर। [४३८] गहर० = देर तक। धोटो = पुत्र।
बीध० = (मुहावरा) अच्छी बधाई बजेगी, (खूब बदनामी होगी)। [४३९]

(४४१) [बिहागरो, इकताल

छैल साँवरिया खेलै रस-होरी।
अपनी गोरी राधा के साथ सहचरी-भीर
तीर जमुना के पहिरे नव-नव रँग-चीर।
केसू-केसरि-रंग कमोरी झोरी गुलाब-अबीर।
दाव चाव बहु भेद-भाव सौं चाँचरि-वहल मचाय।
चलित कटाछ-सहित पिचकारी तन मन लागत जाय।
चित-चकोर चोपनि चितवत मुखचंदहि पलक बिसारि।
भीजि रह्यौ अनुराग-रंग मैं रीझनि सरबस वारि।
कुंज केलि-कौतिक नित नित ही रची रहति यह फाग।
गावत सरस कंठ रस-गारी झर लाग्यौ अनुराग।
फगुवा लैन दैन को जो सुख सो कहि सकत न बैन।
आनँदघन रस घुमड़ि घुमड़ि सुख लेत पपीहा-नैन॥

(४४२) [मूलताल

तुम ऐसैं कैसैं खेलौ होरी।
मानि सहैं किये नाहि तुम भाए, जाहु क्यौं न अब भई न थोरी।
औरौ बसति लुगाई व्रज मैं मोहिँ लगी कछु चोरी।
नए छैल निबटे आनँदघन करत फिरत अति ही बरजोरी॥

(४४३) [इकताल

कैसैं डफ ढार ही ढार बजावै, नवेली नागरि गारी गावै।
मुख-बिलास मोहन-बिलास जोबन-उजास
ताननि मिठास मोहन के मनहिँ घुमावै।
फाग भाग-अनुराग-भरी सुहाग की ओप वढ़ावै।
रसमूरति आनँदघन पिय कौं नव नव रँगनि भिजावै॥

भुरहरे = तड़के, सबेरे। [४४२] निबटे = निपट, अत्यंत। [४४३] ढार = [illegible]

(४४४)

रसिक छैल नंद को नैनन मैं होरी खेलै।
भरि अनुराग दीठि-पिचकारी अचानक मेलै पलकनि ओकै झेलै।
और कहा गति कहौं सखी री सब बिधि करत भावती केलै।
झूमि झूमि रसिया आनँदघन रिझै भिजै रस रेलै॥

(४४५) [मूलताल

होरी खेलि खेलि ब्रजनागरि छैल सौं
छबीली कुँवरि राधे राखी न कसरि।
लियौ दाव अति चोप-चाव सौं रँगीले ललन-मुख
आई है गुलालहि अलग मसरि।
हाथ लगाय हाथ किये मोहन कौंध-चौंध मैं रह्यौ थसरि।
आनँदघनहि भिजै रस राख्यौ दामिनि कहा बिचारी,
कछु उपमा कहिबे कौं न सरि॥

(४४६) [सारंग, इकताल

केसरि की खौरि किये जोबन-मद पिये निडर
छैल डोलत है नंद को मोहन स्याम।
हाथ मैं गुलाल लिये और कछू छल छिये
काहू पै दिये से हिये याही बिच मड़रात कौन धौं काम।
जमुना जान कौं कब की अरबरति कौ लौं घुसेई रहियै धाम।
आनँदघन झूमेई देखियै यह धूम गोकुल ही हा आठौ जाम॥

(४४७)

नई पाहुनी आई है तू, अरु आई फागौ उफनाय।
काल्हि कान्ह की दीठि परी कहु आजु भोर तें इतै मड़राय।

ढंग से, ठीक ताल पर ताल देकर। [४४४] ओक = अंजली। केलै = केलि।
[४४५] थसरि = शिथिल होकर। [४४७] जाय = आग। न्याय = ठीक ही।

बरजि कही जिन जैयो पनघट मेरो कह्यौ न मान्यौ हाय।
वा रसलोभी को हियरा हठि ल आई लायहि लगाय।
अजहूँ बैठि रहौ किन घर मैं कित डोलत बिछियानि बजाय।
मेरो ज्यौ सुनि चलत ठौर तैं रसिक छैल घूमै छकि न्याय।
आनि बन्यौ भागनि इन औसर जो कछु तेरे उचित चाय।
दै चुकि होरी के सिर यह सब नीकैं आनँदघनहि भिजाय॥

(४४८) [मूलताल

अटपटे होरी के खिलार, देखे।
बिना जान-पहचान रावरे होत फिरत गरहार।
नए छैल गहि बाँहिं रहत नित करत न नेकु बिचार।
आनँदघन कैसैं कै परसैं फल अति ऊँची डार॥

(४४९)

गोकुल गलीनि मच्यौ है खेल, बाढ़ी अति रस-झुरमुट-झेल।
खेलत छैल खिलारी मोहन जोवन छकि अलबेल।
चौकस चपल चतुर ब्रजगोरी आई सजि अप-अपनी मेल।
गारी चाय ठठोली बोली रस की ठेलाठेल।
चौकनि चलनि भरनि अरु भाजनि उठनि उमगि अँगपेल।
आनँदघन रस बरसत रुचि सरसत फैलि परी रसरेल॥

(४५०) [सावंत सारंग, इकताल

होरी को खेल तोही पै बनि आवै यहि छरघर को घरई।
दामिनि तैं सौगुनी चपल चोपनि मनभावन भरई नेकु न डरई।
पहिलैं कौंधन भरत चखन मैं बहुन्यौ मन भायौ सो करई।
आनँदघनहिं पपीहा करि राख्यौ राधे ऐसैं सौतिनि दरई॥

---

[४४९] रेल = रेला, प्रवाह। [४५२] धौताल = शरारती। मानसैं = मन

(४५१) [विभास, चौताल

निपट अरसानी सरसानी मैं जानी मानी है
सुखदानी साँवरे सौं सब निसि रंगरली ।
मची है चोप-चाँचरि भाँति भाँतिन मिलि
दावनि चावनि भावनि भाँति भली ।
भई है दलनि दलमलनि छल-बलनि
सुबस कियौ गिरिधरन बली ।
आनँदघन रस-फाग फबी तोहि
राधे रँगीली मेरी तू प्रान अली ॥

(४५२) [काफी, इकताल

होरी के दिन चारिक तैं तुम भए हौ निपट धौताल हौ ।
दबे पावँ पाछे तैं आवत पकरि करत बनमाल हौ ।
काढ़त मनौं बैर कितहू को उर दलमलत गुलाल हौ ।
नन्दबानी करि लेत मानसै निपटै रसिक रसाल हौ ।
दैया दौरि दौरि खौरत मोही सौं यौं गिधए किहि बाल हौ ।
आनँदघन देखे जू देखे नए छैल नँदलाल हौ ॥

(४५३) [मूलताल

रस राख्यौ राधा होरी खेलि ।
रंगनि भर्‌यौ खिलार साँवरो हँसि चितवनि-पिचकारी मेलि ।
ब्रजमोहन की महामोहनी रची विधाता सब गुननि सकेलि ।
आनँदघन पिय भिजै रिझायौ उमगि उमगि अनुरागनि ठेलि ॥

(४५४) [मारू

लाल खिलार हौ भए, होरी के तौ खेलि खेलियै ।
निपट लगि परे, जाने छैल छबीले रावरे ढंग नए ।

को । गिधये = परचे । [४५४] बगर = घर । अए = अये, आश्चर्यबोधक अव्यय ।

नकबानी हौ करत अचगरैं याही बगर मैं रहत छुए।
व्रजमोहन आनँदघन प्यारे भिजवत सिझवत रिझवत कैसें हौ अए॥

(४५५) [परज, तालजात्रा

ऐसैं खेलियै जिन, जिन सौं खेलि रहे।
चतुर कहावत आवत घातन मैं तुम बातन ही मैं लहे।
इन भाँतिनि किये बहबहे कै घर ढंग सीखि गाढ़े गहे।
होरी की हौंस पुजायोई चाहत आनँदघन नए छैल चहे॥

(४५६) [मूलताल

हो छबीले मोहन सौं खेलै हित होरी
राधिका नवेली रस-रंगनि झकोरी हो।
गावत रसीली गारी हिलि मिलि व्रजनारी
रूप-गुन-फूलवारी फूली चहुँ ओरी हो।
दरस-परस-खेल रंग की उझिल-झेल
जोबन की रेल-ठेल चोपनि सौं बोरी हो।
मोद-घन झर लायौ केलि-सिंधु सरसायौ
प्रेम की उरैड़ कुलकानि-मैड़ तोरी हो॥

(४५७) [इकताल

निसि नींद न आवै होरी के खेलन की चोप।
स्याम सलोनो रूप रिझोनो उलही है जोवन-कोप।
मुरली टेर सुनाय जगावै याही वगर मड़राय।
हौंहुँ ठानि रही अपने जिय खेलौंगी उघरि बनाय।
कहा करैंगी सास ननदिया यह सबको त्यौहार।
आनँदघन गुलाल घमड़नि मैं करि लैहौं हियहार॥

---

[४५५] बहबहे = नटखटपने, शरारतें। हौंस = लालसा। पुजायोई = पूर्ण कर लेना चाहते हो। चहे = देखे। [४५६] मोद-घन = आनद का बादल ; आनंद-

(४५८) [सोरठ, मूलताल

मनमोहन छैल खिलार।
होरी-रँग भस्यौ चितै चितै रँगि लेत रँगीलो रस भिजवै इकसार।
अंग अंग छबि-संग उमगि दग मग रोकत सिंगार।
प्राननि गरैं हरैं गहि डारत हँसनि ठगौरी-हार।
मैननि सैन जगावत गावत आवत छावत प्यार।
आनँदघन फागुन वा गुन गसि लाज भई उपहार॥

(४५९) [गौरी, इकताल

नंद महर के अचगरे कान्ह होरी करि पाई।
ऐसो लंगर ढीठ वधुनि सौं करत फिरत है बरिआई।
आवौ सखी घेरि गहि लीजै कीजै अपनी मनभाई।
गुलचि बनाय नचाय चुहुटियत छाँड़ि देहिँ करि अधिकाई।
आँखिन आँजि भाल टिकुली दै निरखैं छबि दग-सुखदाई।
आनँदघन यह मतौ ठानि दृढ़ करौ न तनक सिथिलताई॥

(४६०) [भूपाली

खेलत होरी स्याम लाल सौं गोरी गोरी गोपवधूटी।
रसिक छैल रिझवारहिँ रिझवति रस मैं रूप-गुन-भरी बे-संधि छूटी।
कहा कहौं जोवन की जागनि तनदुति कोटि दामिनी लूटी।
आनँदघन पिय रचि गुलाल मैं करि राखी सब बीरवधूटी॥

(४६१) [गूजरी, आड़ो चौताल

सुनि तू मेरी हितू हित की बात।
तेरे हित होरी रची ब्रजमोहन हो पठई लैन सैननि ही हाहा खात।

वन। उरैड़ = प्रवाह। [४५८] हरैं = धीरे से। [४५९] गुलचि = गुलचे लगाकर। बनाय = स्वाँग बनाकर। चुहुटियत = परेशान करके, खूब गत बनाकर।

उठि चलि बलि राधे रँग राखि लै बरख्यौ सुफागुन कुसरात।
आनँदघन पिय जिय की जीवनि रस पीजै,जीजै,कीजै सफल गुन गात॥

(४६२) [रामकली, तालजाग्रा

इन बिरहा फाग मचाय दई, आप नए निरदई सुध्यौ न लई।
रंग लियौ सब अंगनि तें हौं भिजै भिजै यौं सुखई।
याकी हाय चलियै कहा कहियै पल-पल हियरा होत हई।
आनँदघन ब्रजमोहन सोहन ऐसें औसर कैसें करत गई॥

(४६३) [मूलताल

होरी को खेल हम ही त्यौं गन्यौ जान्यौ, लाल तिहारो ढंग जान्यौ।
औरौ बसति बहुत ब्रजसुंदरि याही बगर कहा मन मान्यौ।
निपट निलज के गौहन लागे नयो नेह कितहू तें आन्यौ।
खेल किधौं सतिभाव लाड़िले काहे कौं भ्रान करत हौ छान्यौ।
आनँदघन अठपहरा घुमड़े इन बातन हियरा अरसान्यौ।
रंग राखि रस राखि खेलियै जोबन सिखई सौं चित सान्यौ॥

(४६४) [भैरव, इकताल

होरी के मदमाते आए, लागे हौ मोहन मोहिं सुहाए।
चतुर खिलारनि बस करि पाए, अंग अंग बहु रंग रचाए।
दृग अनुराग-गुलाल भराए, खेलि खेलि सब रैनि जगाए।
ज्यौं नाचै त्यौं पकरि नचाए, सरबस फगुवा लै मुरकाए।
आनँदघन रस बरस सिराए, भली करी हमहूँ पर छाए॥

(४६५) [तालजाग्रा

जहाँ तुम होरी खेलन गए तहाँ नए नए रस-रंग।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारे कहा दुरावत डोरत हौ मोसौं
भीजे अनँग-उमंग उघरि आए ढंग।

---

[४६०] बै-सधि = वय.संधि। बै सधि० = पूर्ण युवती। [४६२] करत० = आनाकानी करते हो। [४६४] मुरकाए = लौटे। [४६६] खौंखोरि = परेशान

सरबस फगुवा दै करि छूटे सरल किए गहि स्याम त्रिभंग।
कौन-खेल अलबेलियै तुम सौं छैल छबीले गुननि भरे सब अंग ॥

(४६६) [नायकी, इकताल

हौं मोहन अब तो रँगनि भरौंगी।
मो खौंखोरि दौरि कित जैहो मन भायौ सो करौंगी।
आजु रँगीलो दावँ बन्यौ है काहू सौं न डरौंगी।
आनँदघन रस भिजै रिझैहौ या रारि तें न टरौंगी ॥

(४६७) [तालजात्रा

होरी खेलियै सँभारि, सुनियै हो खिलारि।
कौन खेल यह भिजै भजि जैबो आँखिन मैं गुलालहि डारि।
अति ही ढीठ भयौ कहा डोलै नेकु धौं काहू की ओर निहारि।
आनँदघन अब कौन बचैगो बबा की सौंह दै हौं गारि।

(४६८) [सूहो, इकताल

आवौ आवौ रंग बढ़ावौ मोहन स्याम उजारे सौं खेल रचावौ।
निपट नवेली जोवन-गहेली चाँचरि मचावौ
गहि गुलचायन चाय चलावौ।
भागनि बन्यौ फागु कौ औसर गोकुल के खेलवार कहावौ।
आजु तिहारी पैज यही जू आनँदघन पिय को
भली भाँतिनि सौं भिजै रिझावौ ॥

(४६९)

हो हो करि चाँचरि माची खेलत गोपी कान्ह धमारि।
हिय की हिलग चिलग विन उघरी फागुन औसर रहे विचारि।

करके। [४६८] गुलचायन० = गाल पर मुट्ठी बाँधकर हलका आघात करना। पैज = प्रतिज्ञा। [४६९] हिलग = प्यार। चिलिग = चिलक, पीड़ा।

खेलत खेल महा मन भाए गावत निपट रसीली गारि।
चहुधाँ व्रज आनँदघन घमड्यौ रस भीजे गोकुल-नरनारि ॥

(४७०) [सोहनी

चलि री बलि राधे गोरी साँवरे सौं खेलै होरी।
तोहि बुलावन काज भावते सैननि हौं बहु भाँति निहोरी।
आईं निकसि सकल व्रजबनिता खेलन कौं चित चाहत थोरी।
रचत न रँग पिय के हिय तो बिन दुरति कहाँ लौं हित की चोरी।
तोसौं हार जीत जिय मानत औरनि सौं जीतेऊ सो री।
ये आनँदघन तू छबि-दामिनि, है अति रस-बरसीली जोरी ॥

(४७१) [सुघराई, मूलताल

नंदलला रे होरी बीति गए बसिबो है एक ही बास।
अधिकौ ओटपाव करि बैर कत भूलत
कौन भरोसैं फूलत है तजि त्रास।
ओछी बातनि कहा बड़ाई गहत क्यौं न बोलन मिठास।
टोडिस नयौ भयौ डोलत आनँदघन
तिनही सौं पगि खगि जिनसौं पूजी जिय-आस ॥

(४७२) [जयतिश्री, इकताल

ए अति रस बाढ़ौ री रस बाढ़े पिय-प्यारी के होरी ठानत।
भरत, भजत, झपटत, लपटत सनेह सौं तन-मन सानत।
राधा मोहन की रंग-राचनि कैसैं बरनि बखानत।
आनँदघन बिनोद-घमड़नि-सुख सखी-नैनई जानत ॥

(४७३) [सोहनी, मूलताल

आव रे आव रे मिलि खेलैं होरी।
बहुत दिननि की लाजन भीजी भागनि फागुन है आयौ।

[४७१] टोडिस = शरारती।

ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे कानिकनौड़ कौन की करिहौ
करिहौं रे अब तौ मन भायौ विधना बनिक बनायौ ॥

(४७४) [बिलावल

मची चुहल चाँचरि की नंद महर के द्वारै।
आई उमहि ब्रज-बधू चोपनि चतुर खिलारै।
सुमिलि सुगीतनि गावै निपट रसीली भासनि।
मोहन-मनहि घुमावै प्रेम-लपेटी गासनि।
अद्भुत उकति अनूठी प्यारी परम सुगारी।
जसुमति-लालहिं तन मुख लाजन ढकी उघारी।
रूप-गहगही गोरी बैस डहडहे गातनि।
गोकुल की दौरि आई बनी-ठनी सब बातनि।
मिँहदी रचे करनि डफ विविध बिचित्र बिराजै।
महा मनंहरन हाथनि परसति सरसति बाजै।
झूमरि झूमि कबरि सौं भाँवरि भरन लगी है।
डुलनि झुलनि अलकनि की मिलि मुख-जोति जगी है।
कान्हहि करखि हरख सौं चाहति नाच नचावन।
चौकस चपल चिकनिया चपस्यौ चहति चवावन।
गुलचनि रुचिर कपोलनि उलचति धीरज हिय को।
प्रगट परस होरी मैं ज्यौं ज्यौं चाहति है पिय को।
बंक बिहारी मोहन सरल किये ब्रज-बालनि।
गौंसनि हौंसनि सौंसनि समझि सहन सब हालनि।
बिच बिच रचत चपलई मोहन चतुर खिलारी।
मरम-परस की घातनि तकि बृषभान-दुलारी।
नई लगनि के लाले फागुन भरि पुरए हैं।
छाँह छिवन ही दूभर, उररि उरसि सु रए है।

[४७४] भासनि = बोली से। कबरि = चोटी, जूड़ा। चपस्यौ० = धोखा देना चाहती है। उलचति = निकालती है। गौंसनि = घात से। लाले = उत्कंठा।

लागत निपटहि नीके मोहन रूप-उजागर।
दरस, परस, सरस परबस नायक नगधर नागर।
बदन गुलाल-रगमगे दिखत अबीर अँध्यारै।
मदन-कुलाहल कौतिक गनत न बनत बिचारै।
ग्वार गवारनि ढूके सैननि स्यामहि बोलैं।
बुधि-बल बरनि न पावत घिरि नवबधू कलोलैं।
छ्चनि खिचनि कर पट की लपट-झपट रँग-रपटनि।
भरनि भिजनि फिरि उलटनि दलनि दबोचनि दपटनि।
छलन छुटे मोहन की गोहन लागति बाला।
नैन भौंह कर नचनि लचनि लड़ि डोलनि माला।
दाबि लेन के चावनि चौगुन चोप चढ़े हैं।
ग्वार ग्वारनी मिले टोल अप-अपनी पैज बढ़े हैं।
फागुन फबी सु बिलसनि झुलसनि हौंस नई है।
यह सुख, सोभा, संपति दंपति भाग भई है।
घोष घुमड़ि आनँदघन अति रस-रमड़ मची है।
भीज रीझि सनसनी समय-छबि दृगनि खची है।
सगुन साथ त्यौहार सदा निहरैं हरि भामिनि।
महामोद बढ़वार कौन कौं रे दिन-जामिनि।
नित बसंत रसवंत कंत-कामिनि सुख-भोए।
बसौ लसौ मन नैन चैन के ऐन अहो ए।
भाग-भरी ब्रजबधू स्नेह को स्याम सभागो।
हौं इनही के अनुराग-पाग रसना गुन रागो।
ऐसैं देखत रहौं रहस आनंदकंद के।
महारसवती राधा कौतुक ब्रह्म चंद के॥

दूभर = कठिन । उररि० = विशेष उमंग से । रए = अनुरक्त हुए।
नगधर = गोवर्धनधारी । अबीर = बुक्का । अँध्यारैं = धुंध । [२७५]

(४७५) [बरवा

या गोकुल को लोग बुरौ री बीर क्यौं भरियै।
एक चवाव भरे पहिले ही बहुर्यौ फागुन मास।
आई उघरि सबनि के मन की निपट अटपटी गास।
सपने स्याम न देख्यौ कबहूँ कैसौ रूप सुभाय।
तासौं मोहिं लगाय लज्यावत निलजी गारी गाय।
छाँह बचाय चलौं मारग मैं धरौं न ऊबट पाय।
तऊ न रहै अपलोक दिये बिन कहि सजनी कित जाय।
साँची कहौं तऊ झूठहि मानै सौंह पत्याय न कोय।
अब तिनही जस देहौं आनँदघन होनी होय सु होय॥

(४७६) [ललित

मेरी ननँदी री कहि कहा करौं।
तेरे बीरन परदेस बिरमि रहे फागुन के दिन कैसैं भरौं।
इत ब्रजमोहन होरी गावै मुरली-धुनि सुनि सिथिल परौं।
आनँदघन मोहीं पै घमड्यौ रीझि लाज सौं कौ लौं अरौं॥

(४७७) [इकताल

छतियाँ दलमलै गुलाल, अनोखो खेल सीख्यौ नँदलाल।
निकसि न सकियै गैल-गम्हारैं अचकाँ उचकि करै बनमाल।
घात लगाए फिरै रैनि-दिन फागुन लग्यौ किधौं जंजाल।
मोही सौं कहि कहा बैर है औरौ बसत बहुत ब्रजबाल।
मेरेइ बगर मचावै चौचँद गावै निपट उघारे ख्याल।
आनँदघन लाजनि घुरि भिजवै कासौं कहौं भटू ये हाल॥

(४७८) [धनाश्री

हाँ हाँ रे मोरे मीत पियरवा तुम सन खेलौं होरी रे।
तिहारे काज सुजान सुंदर वर लाज करन सब तोरी रे।

ऊबट = अमार्ग। [४७६] बीरन = भाई। [४७९] ये = आप। कैयाँ =

घरि पल इत उत जान न दैहौं गहि बाँधौं हित-डोरी रे।
आनँदघन बरसैहौ निसिदिन एहो जोबन जोरी रे॥

(४७९) [मूलताल

भोला कान्हजी थे कैयाँ होली खेलो।
औराँ का धोखा स्यौं म्हारी आख्याँ चुका मेलो।
पराई रहो जी इस्यो कौण छै थाँसूँ होसी भेलो।
आठ पहर अमलारा माता देता डोलो हेलो।
आनँदघन भूम्याई आवौ, कोई गाली देलो॥

कैसे। औराँ = औरों की। आख्याँ = आँखों में। पराई = परे ही, दूर। इस्यो = ऐसा कौन है। थाँसूँ = आपसे। होसी० = साथ होगा। भेलो = साथ। अमलारा = नशे में मत्त। देता० = पुकार लगाते फिरते हैं। कोई० = इन लक्षणों से कोई तुम्हें गाली देगा।

प्रीति-पावस

चौपाई

बन विहरत मोहन घनस्याम। गिरि-गोधन-समीप सुखधाम।
रितु बरषा हरषी ब्रज बसिकै। जित नित बसत स्यामघन लसिकै॥१॥
उमह असाढ़ बाढ़िये रहै। चोप-चटक आगम ही चहै।
भयौ करति कौंधनि सी हियैं। देखें जियैं चटपटी लियैं॥२॥
सावन-रूप महारस-प्यावन। ब्रजलोचन हरियारो सावन।
मनभावन हित भूमि* रिझावन। ब्रजमोहन है ब्रजसुख-सावन॥३॥
नित ही हित-झलानि झुकि बरसै। नित ब्रजमोहन-सावन सरसै।
सो विलसत बरषा-सुख बन मैं। उनए नए नेह के पन मैं॥४॥
घिरि घटानि जब झुकति अँध्यारी। बन भीजत डोलत बनवारी।
सुमिल सखा-समाज-सँग सोहै। मन लोचन अभिलाषनि दोहै॥५॥
बरन बरन सिर ललित लपेटा। कोटि कोटि मन-मनमथ मेटा।
रचे रुचिर पातनि के छतना। मुख-छवि सम सारद-ससि सत ना॥६॥
मधुर उर-अली गुंजा धरै। काहु मुरलिया सुर-सँग रै।
मित्र अनेक एक मन मतै। सदा स्याम सुंदर रुचि रतै॥७॥
बहुत भाँति बन लीला करैं। प्रेम-चरित्र कहे क्यौं परैं।
गिरि कंदरनि कहा छवि कहियै। सब रितु सुख समूह सुख लहियै॥८॥
तहाँ बैठि बन ब्रज छवि हेरत। फैलि फैलि सुखरासि सकेलत।
विहरत कहूँ कलिंदी-तीर। कही परति क्यौं सोभा-भीर॥९॥
मेघ-माधुरी जमुना-नीर। तैसो सुंदर स्याम सरीर।
वृंदावन घनस्याम-सुरूप। ताल तमाल कदंब अनूप॥१०॥

---

[४] झला = वृष्टि। [६] छतना = छाता। [७] मतै = मत करते हैं।

* बरसि।

कुंज-पुंज बानक बहु भाँतिनि । लसत लतागन अपनी पाँतिनि ।
मोहन-ठावँ मोहने मोहै । को है बरनि सकत छबि जो है॥११॥
ताल बिसालनि झूला मेलत । फूलनि झूलि झूलि रस केलत ।
सुख-सहेट ब्रज गोरिनि घात । दिनहीं कियें रहत अधरात ॥१२॥
पावस दिन मावस-निसि मनौं । निसि-बिलास कैसे धौं गनौं ।
भीजे रहत प्रेम-पावस मैं । संगम प्रबल होत मावस मैं ॥१३॥
जमुना पूर परम सुखदायक । दरसि परसि सरसत ब्रजनायक ।
घमड्यौ रहत सदा आनँदघन । यह जमुना यह बरषा यह बन ॥१४॥
हित-पावस नित ही हित रहै । चातक-चोप सदा निरबहै ।
फिरि पावस रितु जब इत आवै । रीझि भीजि रस या रस पावै ॥१५॥
रितु अनरितु इत की रति औरै । सेवति रसिक स्याम सिरमौरै ।
मुरली मैं मलार धुनि पूरत । या बिधि जड़-जंगम चित चूरत॥१६॥
बन-ब्रज नेह-मेह बरसावै । यह पावस-सुख कहत न आवै ।
सजल नैन देखै अनदेखै । उघरति नहीं लगति न निमेखै ॥१७॥
चटक-चोप चपला हिय लवै । सबही दिसि रस प्यासनि तवै ।
बरन बरन अभिलाषनि धुरवा । मुदित मनोज मनोरथ मुरवा ॥१८॥
भीजत भिजवत बाहिर घर मैं । कछु सुधि नाहिं परति हित-झर मैं।
सब ब्रज रस धाराधर धूम । सदा एकरस आरति-झूम ॥१९॥
बढ़त प्यास ज्यौं ज्यौं झर सरसै । आनँदघन ब्रज अचरज बरसै ।
दामिनि-प्यास भर्‌यौ घन डोलै । सदा मिलन मैं मानत ओलै ॥२०॥
नित ही इतहि कोकिला कूजैं । केलि-कलाधर आसनि पूजैं ।
रस की फैल सदा ब्रज दरसै । जहाँ अपूरब अंबुद बरसै ॥२१॥
सब बिधि भरत मनोरथ-ब्यार । ब्रज पावस नित दरसत प्यार ।
यह पावस या ब्रज नित बसै । सदा स्यामघन इत रसमसै ॥२२॥

---

[१२] सहेट = सकेतस्थल । [१३] मावस = अमावास्या । [१४] पूर = प्रवाह ।
[१८] लवै = चमकती है । धुरवा = बादल के स्तंभ । मुरवा = मोर । [१६]
धाराधर = बादल । [२०] ओलै = विरह ही । [२२] ब्यार = बयार, वायु ।

अद्भुत घनदामिनि सुख सरसै। रस पीवतहू प्यासनि बरसै।
चढ़े रहत नित हियनि-हिँडोरनि। बिहवल प्रेम-भूल झकझोरनि ॥२३॥
मधुर प्रेम-पावस के गीत। रसनिधि-धारा मोहन-मीत।
सूहे बरन बसन अनुराग। धारे रहत सदा बड़भाग ॥२४॥
भीजे सहज भिजावत सदा। नव घन दामिनि रस-संपदा।
ब्रजबन भीजि रह्यौ हित-रस मैं। ये गुन प्रगट प्रीति-पावस मैं ॥२५॥
यह पावस नित ही इत रहै। बरसनि सुख-सरसनि को कहै।
अचरज-झर लाग्योई दरसै। घन तरसै चातक रुचि परसै ॥२६॥
दामिनि घनहिँ भिजै रस पीवै। घन दामिनिहिँ देखि ही जीवै।
अद्भुत घन दामिनि को धर्म। लह्यौ न परत अनोखो मर्म ॥२७॥
प्यासनि बरसत अति रस भरै। अचरज घन दामिनि संचरै।
बरन-बरन लीला-रस-रंगनि। नित नवीन पूरन सब अंगनि ॥२८॥
ब्रजबन रस सींचत घुरि दुरिकै। उघरि घमड़ि अरु घमड़नि दुरिकै।
बिसद केलि रस-रेलि बढ़ी है। प्रबल प्रेम-भर नदी चढ़ी है ॥२९॥
उमग असाढ़ चटक झर-सावन। भरि भैंटनि भादौं मनभावन।
बारहमास छ रितु यह पावस। पून्यौ को सुख देत अमावस ॥३०॥
या ब्रज सब रितु अचरज रूप। अचरज गोपी कान्ह अनूप।
सुरस प्रीति-पावस ज्यौं बरसै। त्यौं ही सब रितु को सुख सरसै ॥३१॥
कहत-कहत कछु बन कहि आवै। लहत लहत मति सुरति भुलावै।
या ब्रज सहज प्रीति-पावस है। सब रितु आइ करत ब्रज रस है ॥३२॥
जिनके दृग चातक या मोर। तेई तकत सु पावस-ओर।
रसकदंब-कादंबिनि दरसै। भीजि भीजि आनँदघन बरसै ॥३३॥
सब रितु मच्यो रहत चौमासौ। बरसि बढ़ायौ सब ही साँसौ।
तोष पोष जैसो जब चहियै। हित-पावस मैं नित ही लहियै ॥३४॥

• रसमसै = रस बरसाता है। [२४] सूहे = लाल। [२९] बिसद = स्वच्छ। रेलि = प्रवाह। [३३] कदंब = समूह। कादंबिनि = मेघमाला। [३४]

इहाँ आय पावस हू भीजै। नित त्यौहार मनावत जीजै।
सो पावस व्रज बसि यौं सोहै। सोहै मोहै पटतर को है ॥३५॥
फूले सरस कदंबनि पुंज। महा मनोहर मधुकर-गुंज।
अमित लतागन फूलनि छाए। सोभित वन के सदन सुहाए ॥३६॥
बनवारी को सुख बरसावत। पैठत बैठत बूँद बरावत।
गायनि को सुख देखत ठाढ़े। लिये लकुट आनंदनि बाढ़े ॥३७॥
सावन-बरन सहज ब्रजमोहन। मन दृगनि के मनोरथ-दोहन।
सुहृद-संग विहरत वन फिरै। अँखियाँ निरखि न क्यौं हूँ फिरै॥३८॥
मुरली माँझ मलार जमावत। पावस को सौभाग्य बढ़ावत।
सुरहि परसि पखान जल होय। व्रज पावस-गुन धर्यौ समोय ॥३९॥
सोई प्रगट ठौर ही ठौर। पावस विहरत व्रज-सिरमौर।
गावति गोपी रितु के गीत। भीजत रीझत मोहन-मीत ॥४०॥
झुरमट झूला बगर बगर है। पावस को सुख डगर डगर है।
सरिवर तीर समाजहि सजै। झूलै, गावै, निरखै, लजै ॥४१॥
मिलि भीजन के सुख बहु भाँति। पीवत नैन न मानत साँति।
पावस को सुख बहुत प्रकार। व्रज-वन बिहरत रसिक उदार॥४२॥
गोप-कुँवर सबके मन मोहत। सब ही हित सब ही विधि सोहत।
सोभित खोही लकुट सुदेस। पावस ग्वार मनोहर बेस ॥४३॥
व्रज-बन गैल-गस्यारनि गाहत। लहत फिरत ज्यौं ज्यौं सुख चाहत।
बहु बिधि पावस के सुख बिलसै। नित गोपी गुपाल मिलि हुलसै॥४४॥
चोप-हर्यारी हिलमिल बाढ़ी। पावस निज सपति है काढ़ी।
राधा - मोहन - चरन - विहार। उर धरि पावस कियौ विचार ॥४५॥

साँसौं = संशय। [३५] पटतर = समानता। [३७] बरावत = बचाते हुए। [३९] सुर = स्वर, मुरली की ध्वनि। पखान = पाषाण। समोय = भिगाकर। [४१] झुरमट = समूह, भीड़। बगर = घर। डगर = गली। [४२] साँति = शांति। [४३] खोही = पत्तों का छोटा छाता। सुदेस = सुंदर। [४४] गस्यारा =

श्री ब्रजभूमि वास करि छावस । कृस्न-ब्रजबधू रस को पावस ।
पाय तुस्ट है, अति छवि छावै । हित हरियारी रची विछावै ॥४६॥
तापरि ते पद धरि धरि सरसैँ । अति कोमल तृन-अंकुर परसैँ ।
बन बेलिन बहु भाँति फूल फल । सरनि समाज भरे निरमल जल ॥४७॥
बिलसत सब सुख मोहन स्याम । उर पर पीन जुही की दाम ।
कौतुक-रूप सदा वनवारी । आनँद-मूरति रसिकबिहारी ॥४८॥
सहज सिँगार कहर कछु कहौँ । रूप-गहर की थाह न लहौँ ।
वरन मनोहर जगत उज्यारो । कारो ब्रजलोचन को तारो ॥४९॥
पावस बन बन घूमत डोलै । जोवन-छक्यौ छैल-गति बोलै ।
ब्रजरस भिजै रिझै इन राख्यौ । ब्रजरस सार सोधि इन चाख्यौ ॥५०॥
चातक अतुल प्रीति-पावस को । जस-रसियै चसको ब्रजरस को ।
भीजे रहत प्रीति-पावस-रस । पावस-सुख बिलसत भीजनि वस ॥५१॥
यौँ ही भीजत भिजवत रहौ । ब्रजरस सुख-सवाद नित लहौ ।
गोप-दुलारे जसुदा-जीवन । अति-रस-प्यावन अति-रस-पीवन ॥५२॥
पावस-प्रीति पपीहा दरसै । तोषै पोषै पीवन तरसै ।
घन चातक को मरम न परसै । ब्रज प्यासनि 'आनँदघन' बरसै ॥५३॥

छोटी गली । गाहत = घूमते हैँ । [४५] हस्यारी = हरियाली । [४६] छावस = छाना । [४८] दाम = माला । [४९] कहर = अपार । गहर = गहराई ।

स्फुट

खंडिता]　　　　　　(१)

लाल तुम कहाँ तें आए जगे ।
अंजन अधरन भाल महाउर चरन धरत डगमगे ।
अलसी अँखियाँ नैन घुमावत बोलत बोल न लगे ।
आनँदघन पिय उहईं जाउ तुम जहाँ तुम्हारे सगे ॥

पूर्वराग]　　　　　　(२)

स्याम सुजान के बिन देखैं अटपटाय कहुँ ना लागै मन ।
नेकहुँ कै न्यारे भएँ नीर भरि आवैं मेरे नैननि लीने हैं री पन ।
कहा करौं मन परवस परि गयो इनहिं न दुख छिन छिन छीजत तन ।
आनँदघन पिय सौं कहा कहियै उनकी हाँसी और को मरन ॥

होली]　　　　　　(३)　　　　　　[कान्हरो

मोसौं होरी खेलन आयौ ।
लटपटी पाग अटपटे पेचन नैनन बीच सुहायौ ।
डगर डगर मैं, बगर बगर मैं सबहिन के मन भायौ ।
आनँदघन प्रभु कर दृग मीड़त हँसि हँसि कंठ लगायौ ॥

(४)　　　　　　[सारंग

सो बाँके डफ बाजे हैं री, नँदनंदन रसिया के ।
अब की होरी धूम मचैगी, गलिन गलिन अरु नाके नाके ।
कोउ काहू की कानि न मानत, ग्वाल फिरैं मद छाके छाके ।
आनँदघन सौं उघरि मिलौंगी, अब न बनै मुँह ढाँके ढाँके ॥

---

[१] बोलत० = बोलतें समय ठीक ठीक बोल नहीं निकलतें । [४] नाका=

(५) [काफी

प्यारे जिन मेरी बहियाँ गहौ ।
मारग मैं सब लोग लखत हैं दूरहि क्यौं न रहौ ।
मन मैं तुम्हरे कौन बात है सोई क्यौं न कहौ ।
कहिहौं जाय आजु जसुमति सौं नाहक मग न गहौ ।
आनँदघन तापै नहिँ मानत लरिका ह्वै निबहौ ॥

(६)

भाजि न जाय आजु यह मोहन सब मिलि घेरौ री ।
अंजन आँजि माँडि मुख मरवट, फिरि मुख हेरौ री ।
गारी गाय गवाय लाल कौं करि ल्यौ चेरौ री ।
आनँदघन बदला जिन चूकौ, भँडुवा टेरौ री ॥

['रसखान और घनानंद' से]

खंडिता] (७) [भैरव, इकताला

आए जू आए भोर, भलई ।
सब निसि जागे, दृग अनुरागे, पागे रंग-तबोर ।
आवौ बैठो बिजन डुराऊँ चकित भए नव कुसुम-किसोर ।
आनँदघन रस-बस की छबि है वाहि ओर तैं आए जोर ॥

पूर्वराग] (८) [तिताला

सोवत नगर मैं, बोल्यौ को है बगर मैं ।
इक डर है मोहिँ सासु ननद को अलियाँ गलियाँ डगर मैं ।
प्रात-समै उठे नंदनँदनजू बिरहा भीजत भर मैं ।
आनँदघन ब्रज उठहिँ सबेरे सासु ननद के डर मैं ॥

(९) [टोड़ी, इकताला

न जानूँ कौन भाँति मिलौगे तिहारी भँवर की सी रीत ।
जित सुगंध पावत तित धावत हौ तुम गरज परे के मीत ।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारे ठौर ठौर के रस चाखत हौ कैसैं करैं प्रतीत॥

मुहाना, जहाँ से गली मुड़ती है । [६] मरवट = मुँह पर रेखाएँ बनाना ।

शिव-विनय] (१०)

करो सिव ! महर की नजर निसिदिन घरी घरी पल-छिनन।
कासीनाथ बिसेस्वरदाता, तुम सब जग के बिधाता,
तुम ही देवौ दूध पूत लच्छमी आनँदघन ॥

पूर्वराग] (११) [बिहाग, चौताल

ए नैना तोहि बरजौं तू नहिँ मानत मेरी सीख।
बरजि रही, बरजी नहिँ मानत घर घर माँगत रूप-भीख।
चित चाहत है प्यारे के सरूप को अब कैसैं मिलनो होय देख।
आनँदघन प्रभु मोहन प्यारे टारे न टरत कहीँ करम-रेख ॥

(१२) [तिताला

प्रीति करी सो मैं जानी रे मोहन।
दै बिस्वास गयौ तजि मथुरा रति कुबजा सौं मानी रे।
कपट-भरौ कारो तन तेरो कपट-भरी सब बानी रे।
आनँदघन हित चित री बाताँ जानत राधा रानी रे ॥

(१३) [झिंझोटी

स्याम नैनाँ दी चोट वो, लागी मैंड़े वो।
जब तैं कृपा करी नँदनदन मिट गई कर्म की खोट वो।
लख चौरासी भटकत भटकत स्यामसरन आई ओट वो।
आनँदघन घनस्याम मोहैं मिल गए मन मैं रही कहुँ टोट वो ॥

(१४) [जंगला, तिताला

तेरे नैनाँ ने जुलम किया बे, स्याम तेरे।
भौंहैं कमान बान कटाछन वेधा गरीवाँ दा हिया बे।

---

[७] तबोर = तमोल, तांबूल। बिजन = व्यजन, पंखा। [१०] महर = कृपा।
[१३] मैंड़े = मेरे, मुझे। खोट = खोटापन। ओट = शरण। टोट = कमी। [१४]

रहदे मस्त महा मतवारे खंजन मध जो पिया वे।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी मन मोह असाडा लिया वे॥

चेतावनी] (१५) [कलिंगरो

बिलम न करियै हरि के भजन को।
करत पलक मैं और और तैं नाहिँ भरोसो तन को।
आय बन्यौ है औसर नीको करि लै, मनोरथ मन को।
बार बार सुमिरै गुन-पूरन सुनि जस आनँदघन को॥

['राग-कल्पद्रुम' से]

वृंदावन-महिमा] (१६)

वृंदावन आनंदघन, कछु छबि बरनि न जाय।
कृस्न-ललित-लीला-करन, धारि रह्यौ जड़ताय॥

['राग-रत्नाकर' से]

(१७) [पूरबी ख्याल, इकताला

नैनन देखिबे की बानि।
बरजि रही बरज्यौ नहिँ मानैँ छूटि गई कुल-कानि।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी अंतर की पहचानि॥

(१८)

ननदिया होरी खेलन दै।
कान्ह गग्वारैँ ऊधम पारै अब मो पै रह्यौ न परै।
जो कछु कहै सो करिहौँ ननदिया फागुन मैँ जस लै।
आनँदघन रस भीजि भिजैहौँ आजु यहै पन है॥

(१९) [कामोद

मेरो अब कैसे निकसन हो दैया, होरी खेलै कान्हैया।
या मारग ह्वैकै हौँ निकसी, मेरो छीनि लियौ दहिया दैया।

खंजन० = खंजनों ने शराब पी है। असाडा = हमारा। [१६] जड़ताय = जड़त्व।

सासरै जाऊँ तो सास रिसैहै, पीहर जाऊँ खिजै भैया।
इत डर उत डर भूलि गिरी, सँग मोहन नाचौंगी ताथैया।
ब्रजमोहन पिय सौंह तिहारी, भीजि गई मेरी पाँवरिया।
आनँदघन कैसैं कै भीजैं, ओढ़ि रहे कारी कामरिया॥
['ब्रजनिधि-ग्रंथावली' से]

(२०) [खंभाती

होरी खेलौंगी स्याम सँग जाय हो सजनी भागनि तैं फागुन आयौ।
वो भिजवै मेरी सुरँग चुनरिया मैं भीजवौं वाकी पाग।
चोवा चंदन और अरगजा रंग की परत फुवाग।
लाज निगोड़ी रहै चाहे जावै मेरो हियरा भरो अनुराग।
आनँदघन खेलौं सुघर बालम सौं मेरो रहियौ हे भाग सुहाग॥

(२१) [रामकली

होरी के दिनन मैं तू जो नवेली मति निकसै बाहर घर ते री।
तू जो नई दुलही नव जोवन, रहि घर बैठि मानि सिख मेरी।
डगर-बगर औ घाट-बाट मैं कान्ह करत नित चरचा तेरी।
जा दिन तोहि लखै घनआनँद ता दिन होय कौन गति ए री॥

(२२) [सोरठ

लागी रट राधा,राधा नाम।
नवल निकुंज-पुंज बन हेरत नंद-ढुटौना स्याम।
कबहूँ मोहन खोरि साँकरी टेरत बोलत वाम।
आनँदघन बरसौ मन-भावन घन बरसानो गाय॥

(२३) [धनाश्री

ए रे निरमोहिया जानी तोरी प्रीत।
जब लागी तब किनहुँ न जानी अब कछु औरै रीत।

---

[१८] पारै = करता है। [१९] पीहर = मायका। पाँवरिया = जूतियाँ।
[२०] वो० = वह भिजाएगा। पाग = पगड़ी। सुघर = चतुर। बालम = पति।

चरचत हैं सब लोग बटाऊ और कुटुम सब कुल की रीत।
निसि-दिन ध्यावत वा मूरत कौं आनँदघन सो मीत॥

(२४) [मलार

गरजि गगन छाई री, माई गरजि गगन छाई।
घटा उमड़ि घुमड़ि झूमि झूमि भूमि पर आई।
दादुर मोर करत सोर, गनत नाहीँ साँझ भोर, झींगुर-झिंगार सुहाई।
तैसिय अँधियारी लगत डरारी भारी, पिय बिन जिय अति अकुलाई।
आनँदघन लखि घनस्याम रूप नैनन रह्यौ है समाई॥

(२५) [भैरव

सब मिलि आवौ गावौ, बजावौ मृदंग,
आजु हमारे लाल जू की बरस गाँठ।
कनक थार भरि भरि मुक्ताफल लै न्यौछावर करवावौ।
नव नव बालक बंदन-माला द्वार द्वार बँधवावौ।
आनँदघन प्रभु को जनम सुनत ही लाग्यौ सुजस सुहावौ॥

(२६) [मालव

ए री हौं तो चहूँगी री।
अपने प्रीतम को अति सुख दूँगी कर जोरे पाय गहूँगी।
सासु ननद की कानि न मानूँ देवर गारि सहूँगी।
आनँदघन ब्रजजीवन प्यारे चरनन लिपटि रहूँगी॥

['घन-आनंद' से]

---

[२२] ढुटौना = पुत्र। खोरि = गली। [२३] चरचत० = बदनामी करते हैं। बटाऊ = पथिक। [२६] चहूँगी = देखूँगी।

आनंदघन

(जैन कवि)

प्रशस्ति

(१) [कानड़ो

मारग चलत चलत जात, आनँदघन प्यारे, रहत आनँद भरपूर।
ताको सरूप भूप, तिहुँ लोक थें न्यारो, बरषत मुख पर नूर।
सुमति-सखी के संग, नित नित दौरत कबहुँ न होत है दूर।
जस-विजय कहै सुनो हो आनँदघन ! हम तुम मिले हजूर॥

(२)

आनँदघन को आनँद सुजस ही गावत, रहत आनँद सुमति-संग।
सुमति-सखी और नवल आनँदघन, मिल रहे गंग-तरंग।
मन मंजन करिके निर्मल कियो है चित, ता पर लगायो है अविहड़ रंग।
जस-विजय कहै सुनत हो देखो, सुख पायो बोत अभंग॥

(३) [नायकी, चंपकताल

आनँद कोउ नहिं पावै, जोइ पावै सोइ आनँदघन ध्यावै।
आनँद कौंन रूप ? कौंन आनँदघन ? आनँद गुण कौंन लखावै ?
सहज सँतोष आनंद गुण प्रगटत, सब दुविधा मिट जावै।
जस कहै सो ही आनँदघन पावत, अंतर-ज्योति जगावै।

(४)

आनँद ठोर ठोर नहिँ पाया, आनँद मैं आनंद समाया।
रती अरति दोउ सँग लिये वरजित अरथ ने हाथ तपाया।
कोउ आनँदघन छिद्रहि पेखत, जसराय संग चढ़ि आया।
आनँदघन आनँद-रस झीलत, देखत ही जस गुण गाया॥

(५)

आनँद कोऊ हम दिखलावो।
कहँ ढूँढ़त तूँ मूरख पंथी, आनँद हाट न बिकावो।
ऐसि दसा आनँद सम प्रगटत, ता सुख अलख लखावो।
जोइ पावै सोइ कछु न कहावत, गावत ताको सुजस बधावो॥

(६) [कानड़ो, रूपकताल

आनँद की गत आनँद जाने।
वाई सुख सहज अचल अलख पद, वा सुख सुजस बखाने।
सुजस विलास जब प्रगटे आनँद-रस, आनँद अछ्रम खजाने।
ऐसि दसा जब प्रगटे चित-अंतर, सोहि आनँदघन पिछाने॥

(७)

परी आज आनँद भयो, मेरे तेरो मुख निरख निरख
रोम-रोम सीवल भयो अँग-अंग।
सुध समजण समता-रस झीलत, आनँदघन भयो अनँत रंग।
ऐसि आनँद-दसा प्रगटी चित-अंतर,ताको प्रभाव चलत निरमल गंग।
वारि-गंग-समता दोउ मिल रहे, जस-विजय झीलत ताके संग॥

(८)

आनँदघन के सँग सुजस ही मिले जब, तब आनंद-सम भयो सुजस।
पारस-सँग लोहा जो फरसत, कंचन होत है ताके कस।
खीर-नीर जो मिल रहे आनँद, जस सुमति सखि के संग तस।
भयो है एक रस, भव खपाइ सुजस विलास
भए सिध-सरूप लिये धसमस॥

[यशोविजय-कृत 'आनंदघन-अष्टपदी' से उद्धृत]

आनंदघन-चौबीसी

श्रीऋषभदेव-जिन-स्तवन] (१) [मारू

रुषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरो रे ओर न चाहूँ रे कंत।
रीझ्यो साहिब संग न परिहरे रे भाँगे सादि अनंत।
प्रीत-सगाइ रे जग माँ सहु करे रे प्रीत-सगाइ न कोय।
प्रीत सगाइ रे निरुपाधिक कही रे सोपाधिक धन खोय।
कोइ कंत-कारण काष्ट-भक्षण करे रे मिलसूँ कंत ने ध्याय।
ए मेलो नवि कहियें संभवे रे मेलो-ठाम न ठाय।
कोइ पति-रंजन अति घणो तप करे रे पति-रंजन तन-ताप।
ए पति-रंजन में नवि चित धर्युं रे रंजन धातु-मेलाप।
कोइ कहे लीला रे अलख अलख तणी रे लख पूरे मन-आस।
दोष रहित ने लीला नवि घटे रे लीला दोष विलास।
चित्त प्रसन्ने रे पूजनफल कह्यूँ रे पूज अखंडित एह।
कपटरहित थइ आतम अरपण रे आनँदघन पद-रेह॥

---

[१] माहरो = मेरा। ओर = और, अन्य। भाँगे० = ऐसा संग जिसका आदि तो है पर अंत नहीं। सहु = सब। प्रीत० = लौकिक और वैवाहिक प्रेम सब करते हैं, पर वास्तविक प्रेम संबंध कोई नहीं। निरुपाधिक = अलौकिक। काष्ठ० = चिता की अग्नि में प्रवेश। मिलसूँ = मिलूँगी। ने = को, से। मेलो = मिलाप। नवि = नहीं। कहियें = कभी। ठाम० = मिलने का स्थान नहीं है। में = मैं। धातु = तत्त्व। अलख तणी = अलख (ब्रह्म) की। नवि० = निर्दोष ब्रह्म में ये लीलाएँ घटित नहीं होतीं, असंगत ठहरती हैं। थइ = होकर। आनंद० = मोक्ष का पद। रेह = रेखा, चिह्न, लक्षण।

श्रीअजितनाथ-जिन-स्तवन] (२) [आसावरी

पंथड़ो निहालूँ रे बीजा जिन तणो रे अजित अजित-गुणधाम ।
जे तैं जीत्या रे तिणैं हूँ जीतियो रे पुरुप किसूँ मुज नाम ।
चरमनयण करि मारग जोवताँ रे भुलो सयल संसार ।
जेणे नयण करि मारग जोइये रे नयण ते दिव्य विचार ।
पुरुष-परंपर अनुभव जोवताँ रे अंधोअंध पुलाय ।
वस्तुविचारे रे जो आगमे करी रे चरण-धरण नहीँ ठाय ।
तर्कविचारे रे वादपरंपरा रे पार न पौँहचे कोय ।
अभिमत वस्तु रे वस्तुगतैँ कहेँ रे ते बिरला जग जोय ।
वस्तुविचारे रे दिव्य नयण तणो रे विरह पड्यो निरधार ।
तरतम जोगे रे तरतम वासना रे वासित बोध-आधार ।
काल-लबधि लही पंथ निहालसूँ रे ए आसा-अवलंब ।
ए जन जीवे रे जिन जी जाणज्यो रे आनँदघन मत अंब ॥

श्रीसंभवनाथ-जिन-स्तवन] (३) [रामगिरी

संभवदेव हे धुर सेवो सवे रे लहि प्रभु-सेवन-भेद ।
सेवन-कारण पहिली भूमिका रे अभय अद्वेष अखेद ।

---

[२] पंथडो० = मार्ग देखता हूँ । बीजा = द्वितीय । तैं = तू । हूँ = मैं । जे० = जिन (षड्रिपुओं) को तूने जीता उन्होंने मुझे जीत रखा है । पुरुप० = फिर मेरा नाम 'पुरुष' (पौरुषयुक्त) कैसे उचित है । चरम = चर्म । सयल = सकल । पुरुष-परंपर० = सांसारिक पुरुषों की परंपरा के ज्ञान पर दृष्टि रखना तो अंधों के पीछे अंधे का दौड़ना है । आगमे = शास्त्र मैं । धरण = रखने का । तर्क० = तर्क का विचार तो वादों की परंपरा मात्र है जिसका अंत नहीं । अभिमत० = वस्तु मैं इच्छित तत्व का बतानेवाला । विरह० = अर्थात् ऐसे विचारक मिलते नहीं । तरतम० = 'तर' और 'तम' की वासना से वासित ज्ञान का आधार भी 'तर' और 'तम' युक्त होता है; । औपाधिक होता है, पारमार्थिक नहीं । लबधि=लब्धि,प्राप्ति;सीमा । अंब=(आम्र) रसाल के समान । [३] सवे = सब

भय चंचलता हो जे परिणामनी रे द्वेष अरोचक भाव।
खेद-प्रवृत्ति हो करताँ थाकिये रे दोष अबोध लखाव।
चरमावर्तन हो चरमकरण तथा रे भवपरिणति-परिपाक।
दोप टले वली दृष्टि खुले भली रे प्राप्ती प्रवचन-वाक।
परिचय पातक-घातक साधु सूँ रे अकुसल-अपचय-चेत।
ग्रंथ अध्यातम श्रवण मनन करी रे परिशीलन नय-हेत।
कारण जोगे हो कारज निपजे रे एह माँ कोइ न वाद।
पिण कारण विण कारज साधिये रे ते निज मत-उनमाद।
मुग्ध सुगम करि सेवन आदरे रे सेवन अगम अनूप।
देयो कदाचित सेवक याचना रे आनँदघन रस-रूप॥

श्रीअभिनंदन जिन-स्तवन] (४) [धनाश्री

अभिनंदन जिन दरसण तरसिये दरसण दुरलभ देव।
मतमत भेदे रे जो जइ पुछिये सहु थापे अहमेव।
सामान्ये करि दरिसण दोहिलूँ निरणय सकल विशेष।
मद में घेरयो रे अंधा किम करे रविससि-रूप-विलेख।
हेतु-विवादे हो चित धरि जोइये अति दुर्गम नयवाद।
आगमवादे हो गुरुगम को नहिं ए सबलो विषवाद।
घाती डुंगर आडा अति घणा तुज दरसण जगनाथ।
धीठाइ करि मारग संचरूँ सँगू कोइ न साथ।
दरसण दरसण रटतो जो फिरूँ तो रणरोझ समान।
जेह ने पिपासा हो अमृत पाननी किम भाँजे विषपान॥

लोग। परिणामनी = परिणाम के संबध की। चरमावर्तन = अंतिम फेरा। चरमकरण = उत्तम कृत्य। भव० = संसार का आवागमन समाप्त हो जाता है। वली = फिर। प्रवचन० = सिद्धांत का रहस्य। अकुसल० = चित्त के अकल्याण का नाश हो जाता है। नय० = नीति के लिए। निपजे = उत्पन्न होता है। वाद = विवाद, झगड़ा। पिण = पर। मुग्ध = भोले-भाले।

[४] सहु = सब। दोहिलूँ = कठिन। विलेख = निश्चय। गुरुगम = गुरु द्वारा बताया रहस्य। को० = कोई नहीं है। सबलो० = भारी विषैली वस्तु है। डुंगर = (कर्म के) पर्वत। आडा = बीच में बाधक। धीठाइ =

तरस न आवे हो मरण-जीवण तणों सीझे जो दरिसण-काज।
दरिसण दुरलभ सुलभ कृपा थकी आनँदघन महाराज॥

श्रीसुमतिनाथ-जिन स्तवन] (५) [वसंत केदारो

सुमति-चरणकँज आतम-अरपण दरपण जिम अविकार। सुज्ञानी!
मति-तरपण बहुसंमत जाणिये परिसरपण सुविचार।
त्रिविध सकल तनुधरगत आतमा, बहिरातम धुरि भेद।
बीजो अंतर-आतम तिसरो परमातम अविछेद।
आतम बुद्धे कायादिक ग्रह्यो, बहिरातम अघरूप।
कायादिक नो साखीधर रह्यो, अंतर-आतम-रूप।
ज्ञानानंद हो पूरण पावनो वरजित सकल उपाध।
अतिंद्रिय गुणगणमणि आगरु इम परमातम साध।
बहिरातम तजि अंतर-आतमा-रूप थई थिर भाव।
परमातम नूँ हो आतम भाववूँ आतम-अरपण दाव।
आतम अरपण वस्तु विचारताँ भरम टले मति-दोष।
परम पदारथ संपति संपजे आनँदघन रस-पोष॥

श्रीपद्मप्रभ-जिन-स्तवन] (६) [मारू; सिंधु

पदमप्रभ जिन तुझ मुझ आँतरु रे किम भाजे भगवंत।
करम-विपाकेँ कारण जोयने रे कोय कहे मतिमंत।
पयइ ठिई अणुभाग प्रदेसथी रे मूल उत्तर बिंदु-भेद।
घाति अघाती बंधोदय उदीरणा रे सत्ता करम-विछेद।

धृष्टता। सँगू = साथी। रणरोझ = अरण्यरोदन। तरस = (त्रास) दुःख। सीझे = सिद्ध हो जाए। थकी = से। [५] कँज = कंज, कमल। तरपण = तृप्ति। परिसरपण = अनुगमन। धुरि = प्रथम। थई = होकर। भाववूँ = विचारना। संपजे = प्रकटे। [६] आँतरु = अंतर, भेद। विपाक = फल। पयइ = प्रकृति। ठई = स्थिति। अणुभाग = रस; कर्म का बल। प्रदेश = विभाग। मूल = मुख्य। उत्तर = गौण। अघाती = अनाशक। बंध = कर्म, बंधन। बंधोदय =

कनकोपलवत् पयडि पुरुष तणी रे जोड़ी अनादि स्वभाव।
अन्य संजोगी जिहाँ लगे आतमा रे संसारी कहिवाय।
कारण जोगे हो बाँधे बंधने रे कारण भुगति मुकाय।
आश्रव संवर नाम अनुक्रमे रे हेयोपादेय सुणाय।
युंजन करणे हो अंतर तुझ पड्यो रे गुण करणे करि भंग।
ग्रंथ-उक्ति करि पंडितजन कह्यो रे अंतर-भंग सुअंग।
तुझ मुझ अंतर अंतर भाजसे रे बाजसे मंगल-तूर।
जीव-सरोवर अतिसय वाधस्ये रे आनँदघन रसपूर॥

श्री सुपार्श्व-जिन-स्तवन] (७) [सारग, मलार

श्रीसुपास जिन वंदिये सुख-संपति ने हेतु, ललना।
शांत सुधारस-जलनिधी भवसागर माँ सेतु, ललना।
सात महाभय टालतो सप्तम जिन वर देव, ललना।
सावधान मनसा करी धारो जिन-पद सेव, ललना।
शिवशंकर जगदीश्वरू चिदानंद भगवान, ललना।
जिन अरिहा तीर्थंकरू ज्योति सरूप असमान, ललना।
अलख निरंजन बच्छलु सकल-जंतु-बिसराम, ललना।
अभयदानदाता सदा, पूरण आतमराम, ललना।

कर्मफल-प्राप्ति का प्रवृत्तिकाल। उदीरणा = प्रेरणा। सत्ता = स्थिति (बंध, उदय, उदीरणा, सत्ता ये जैनागम के पारिभाषिक शब्द हैं)। विछेद = नाश। पयडि = प्रकृति। पुरुष० = आत्मा की। जोडी = जीव और कर्म की। अन्य = पुद्गल, कर्म-समूह। कारण = जिसके कारण कोई वस्तु मिले या उत्पन्न हो। मुकाय = छूट जाता है। आश्रव = बंधन का कारण। संवर = मुक्ति का हेतु। हेयोपादेय = क्रमश. त्याज्य और ग्राह्य। युंजन = कर्मों से जुड़ना। अंतर = ब्रह्म से भेद। सुअग = उत्तम उपाय। अंतर = भेद। अंतर = अंतःकरण से। भाजसे = भाग जाएगा। तूर = तुरही, बाजा। बाधस्ये = प्रसन्न होगा, भरेगा। रसपूर = रस-प्रवाह से। [७] सात० = काम, क्रोध, मद, हर्ष, राग, द्वेष, मिथ्यात्व। अरिहा = कर्म-शत्रु के नाशक, अर्हत्। असमान = अनुपम।

वीतराग, मद कलपना रति आरति भय सोग, ललना।
निंद्रा तंद्रा-दुरदसा-रहित अबाधित योग, ललना।
परम पुरुष परमातमा परमेश्वर परधान ललना।
परम पदारथ परमिष्ठी परमदेव परमान ललना।
विधि विरंचि विश्वंभरू, रुषीकेश जगनाथ, ललना।
अघहर अघमोचन धणी, मुक्ति परमपद साथ, ललना।
एम अनेक अभिधा धरे, अनुभवगम्य विचार, ललना।
जे जाणे तेह ने करे, आनँदघन अवतार, ललना।

श्रीचंद्रप्रभ-जिन-स्तवन] (८) [केदारो; गौड़ी

चंद्रप्रभ-मुखचंद्र सखी मुने देखण दे मुखचंद।
उपसम-रसनो कंद, सखी गत-कलिमल-दुखदंद।
सुहम-निगोदे न देखियो बादर अतिहि बिसेस।
पुढवी आउ न लेखियो, तेउ बाउ न लेस।
बनसपति अति घण दिहा, दीठो नहीँ दिदार।
बि ति चउरिंदी जल*लीहा, गतसन्नी पण धार।
सुर तिरि निरय निवास माँ, मनुज अनारज साथ।
अपज्जता प्रतिभास माँ, चतुर न चढ़ियो हाथ।

निरंजन = निर्लेप। बच्छलु = वत्सल। दुरदसा = दुर्दशा। परमान = मानो। रूषीकेश = हृषीकेश, इंद्रियों के स्वामी। धणी = स्वामी। अभिधा = नाम। [८] मुने = मुझे। उप० = शांत रस के फूल। सुहम = सूक्ष्म। निगोदे = बीच। बादर = बादल में, आकाश में। पुढवी = पृथ्वी। आउ = आप, जल। तेउ = तेज, अग्नि। बाउ = वायु। दिहा = दिवस। दिदार = दर्शन। बि० = दो, तीन। चउरिंदी = चार इंद्रियों वाला। जललीहा = जल पर का लेख। गत० = संज्ञाहीन। पण = पाँच इंद्रिय। तिरि = तिर्यक्, पशु पक्षी आदि। निरय = नरक। अपज्जत = अपर्याप्त। चतुर = ब्रह्मतत्त्व। अवसर = अवसर पर। मोह-

इम अनेक थल जाणिये, दरिसण विण जिण देव।
आगम थी मत जाणिये, कीजे निरमल सेव।
निरमल साधु भगति लही, योग अवंचक होय।
क्रिया अवंचक तिम सही, फल अवंचक सोय।
प्रेरक अवसर जिनवरू, मोहनीय-क्षय थाय।
कामित-पूरण सुरतरू, आनँदघन प्रभु-पाय॥

श्रीसुविधिनाथ-जिन-स्तवन] (६) [केदारो

सुविधि जिणेसर-पाय नमीने, शुभ करणी इम कीजे रे।
अति घणो उलट अंग धरीने, प्रह उठी पूजीजे रे।
द्रव्यभाव शुचि भाव धरीने हरखे देहरे जइये रे।
दह तिग पण अहिगम साचवताँ, एकमना धुरि थइये रे।
कुसुम अक्षत वरवास सुगंधो, धूप दीप मन साखी रे।
अँगपूजा पण भेद सुणी इम, गुरुमुख आगम भाखी रे।
एह नूँ फल दोय भेद सुणीजे, अनंतर ने परंपर रे।
आणा-पालण चित्त-प्रसन्नी, मुगति सुगति सुरमंदिर रे।
फूल अक्षत वर धूप पइवो, गंध नैवेद्य फल जल भरी रे।
अंग-अग्रपूजा मिलि अडविध, भावे भविक सुभगति वरी रे।
सत्तर भेद इकवीस प्रकारे, अट्ठोत्तर सत भेदे रे।
भावपूजा बहुविध निरधारी, दोहग दुरगति छेदे रे।

नीय = आकर्षक कर्मों का। कामित = कामना। [६] उलट = उल्लास। प्रह = प्रात। देहरे = मंदिर में। दह = दस। तिग = त्रिक। पण = पाँच। अहिगम = अभिगम। साचवताँ = पूर्ण करके। धुरि = प्रथम। आणा० = आज्ञापालन से। अंग० = अंगपूजा और अग्रपूजा (प्रतिमा के सामने की जाने वाली)। मिलि = मिलकर। अडविध = आठ प्रकार की। भविक = भावुक भक्त। दोहग = दुर्भाग्य। तुरिय = चतुर्थ। पडिवत्ती = प्रतिपत्ति। खीण = क्षीणमोह। सयोगी = चैतन्य सयोगी। चउहा = चतुर्विध। उत्तर० = उत्तराध्ययन सूत्र

तुरिय भेद पडिवत्ती पूजा, उपसम खीण सयोगी रे।
चउहा पूजा इम उत्तर-झयणे, भाखी केवल भोगी रे।
इम पूजा बहु भेद सुणीने, सुखदाइक सुभकरणी रे।
भविक जीव करस्ये ते लहिस्ये, आनँदघन-पद-धरणी रे।

श्रीशीतलनाथ-जिन-स्तवन] (१०) [धनाश्री; गौड़ी

शीतल जिनपति ललित त्रिभंगी, विविध भंगी मन मोहे रे।
करुणा-कोमलता तीक्षणता, उदासीनता सोहे रे।
सर्वजंतु-हितकरणी करुणा, कर्मविदारण तीक्षण रे।
हानादानरहित परिणामी, उदासीनता-वीक्षण रे।
परदुख-छेदन इच्छा करुणा, तीक्षण परदुख रीझे रे।
उदासीनता उभय विलक्षण, एक ठामैं किम सीझे रे।
अभयदान ते * करुणा मलक्षय, तीक्षणता गुण भावे रे।
प्रेरण विण कृति-उदासीनता, इम विरोध मति नावे रे।
शक्ति-व्यक्ति त्रिभुवन-प्रभुता, निर्ग्रंथता-संयोगी रे।
योगी भोगी वक्ता मौनी, अनुपयोगि उपयोगी रे।
इत्यादिक बहुभंग त्रिभंगी, चमतकार चित देती रे।
अचरिजकारी चित्र विचित्रा, आनँदघन-पद लेती रे।

श्रीश्रेयांस-जिन-स्तवन] (११) [गौड़ी

श्रीश्रेयांस जिन अंतरजामी, आतमरामी नामी रे।
अध्यातम-मत पूरण पामी, सहज मुगति-गति-गामी रे।

में। केवल० = कैवल्य बोध करनेवाले। [१०] भंगी = प्रकार। हानादान० = त्याग और ग्रहण से परिणामवाला। उभय = करुणा और तीक्ष्णता दोनों से। सीझे = सिद्ध हो। गुण० = ज्ञान के विचार से। कृति० = कर्म से तटस्थ वृत्ति। नावे = न आए। निर्ग्रंथता = बंधनरहितत्व। [११] पामी =

सयल सँसारी इंद्रियरामी, मुनि गुण आतमरामी रे।
मुख्यपणे जे आतमरामी, ते केवल निःकामी रे।
निज स्वरूप जे किरिया साधैं, ते अध्यातम लहिये रे।
जे किरिया करि चउगति साधैं, ते न अध्यातम कहिये रे।
नाम अध्यातम ठवण अध्यातम, द्रव्य अध्यातम छंडो रे।
भाव अध्यातम निज गुण साधैं, तो तेह थी रढ़ि मंडो रे।
शब्द अध्यातम अरथ सुणीनैं, निरविकलप आदरज्यो रे।
शब्द अध्यातम भजणा जाणी, हान* ग्रहण मति धरज्यो रे।
अध्यातम जे वस्तु विचारी, बीजा जाण लबासी रे।
वस्तुगतैं जे वस्तु प्रकासै, आनँदघन-मत-वासी रे।

श्रीवासुपूज्य-जिन-स्तवन] (१२) [गौडी

वासुपूज्य जिण त्रिभुवन-स्वामी, घन नामी परणामी रे।
निराकार साकार सचेतन, करम-करम फल-कामी रे।
निराकार अभेद संग्राहक, भेद-ग्राहक साकारो रे।
दर्शन ज्ञान दुभेद चेतना, वस्तु-ग्रहण-व्यापारो रे।
कर्ता परिणामी परिणामो, कर्म जे जीवे करियैं रे।
एक अनेक रूप नयवादे, नियतैं नय† अनुसरियैं रे।
दुख सुख रूप करम फल जाणो, निश्चय एक आनंदो रे।
चेतनता परिणाम न चूके, चेतन कहे जिन चंदो रे।
परिणामी चेतन परिणामो, ज्ञान करम फल भावी रे।
ज्ञान करम फल चेतन कहिये, लेजो तेह मनावी रे।

प्राप्त करके। सयल = सकल। इंद्रियरामी = इंद्रिय-सुख में रहनेवाला। चउगति = चार गति (देव, मनुष्य, तिर्यक् और नारकी)। ठवण = स्थापना मात्र का। रढ़ि = रटकर। हान = त्याग। बीजा = दूसरा। लबासी = लबार। [१२] परणामी = परात्पर। दुभेद = दो प्रकार की। परिणामी = परि-

* दान। † नर।

आतमज्ञानी श्रमण कहावै, बीजा तो द्रव्यलिंगी रे।
वस्तुगतैं जे वस्तु प्रकासै, आनँदघन-मत-संगी रे।

श्रीविमलनाथ-जिन-स्तवन] (१३) [मारू

दुख दोहग दूरे टल्या रे, सुख-संपद स्यूँ भेट।
धींगधणी माथे कियो रे, कुण गंजे नरखेट।
विमलजिन दिठा लोयणे आज, मारा सीध्या वंछित काज।
चरण-कमल कमला वसे रे, निरमल थिर पद देख।
समल अथिर पद परिहरी रे, पंकज पामर पेख।
मुज मन तुज पद-पंकजे रे, लीणो गुण-मकरंद।
रंक गिणेँ मंदिर धरा रे, इंद चंद नागिंद।
साहिब समरथ तूँ धणी रे, पाम्यो परम उदार।
मन विसरामी बालहो रे, आतम चो आधार।
दरिसण दीठे जिन तणो रे, संसय न रहे वेध।
दिनकर-करभर पसरतां रे, अंधकार-प्रतिषेध।
अमिय-भरी मूरति रची रे, ओपम न घटै कोय।
शांत सुधारस झीलती रे, निरखत तृपति न होय।
एक अरज सेवक तणी रे, अवधारो जिन देव।
कृपा करी मुज दीजिये रे, आनँदघन-पद-सेव॥

श्रीअनंतनाथ-जिन-स्तवन] (१४) [रामगिरी कड़खो

धार तरवार नी सोहिली, दोहिली चौदमा जिन तणी चरण-सेवा।
धार पर नाचता देख बाजीगरा, सेवना धार पर रहे न देवा।

णामदर्शी। नयवादे० = नयवाद के विचार से आत्मा एक भी है और अनेक भी। श्रमण = साधु। द्रव्य० = केवल साधुवेशधारी। [१३] दोहग = दुर्भाग्य। धींग = मजबूत, प्रबल। धणी = स्वामी। गंजे = जीते। नरखेट = नराधम। सीध्या = सिद्ध हुआ। समल = मलयुक्त। पंकज० = इसी से तो नीच कमल को कमला (लक्ष्मी) ने त्याग दिया। मंदर = मंदराचल की भूमि। बालहो =

एक कहे सेविये विविध किरिया करी,फल अनेकांत लोचन न देखे।
फल अनेकांत किरिया करी बापड़ा, रडवडे च्यार गति माँहि लेखे।
गच्छ ना भेद बहु नयण नीहालताँ, तत्व नी बात करताँ न लाजे।
उदर-भरणादि निजकाज करताँ थका, मोह नडिया कलिकाल राजे।
वचन-निरपेक्ष व्यवहार जूठो कह्यो, वचन-सापेक्ष व्यवहार साचो।
वचन-निरपेक्ष व्यवहार संसार-फल साँभली आदरी काँइ राचो।
देव गुरु धर्म नी शुद्धि कहो किम रहे, किम रहै शुद्ध श्रद्धान आणो।
शुद्ध श्रद्धान विण सर्वकिरिया कही, छार परि लीपणो सरस जाणो।
पाप नही कोइ उत्सूत्र भाषण जिसो धर्म नही कोइ जग सूत्र सरिखो।
सूत्र अनुसार जे भविक किरिया करै तेह नो शुद्ध चारित्र परिखो।
एह उपदेस नूँ सार संक्षेप थी जे नरा चित्त मैं नित्त ध्यावैं।
ते नरा दिव्य बहु काल सुख-अनुभवी नियत आनँदघन राज पावैं॥

श्रीधर्मनाथ जिन-स्तवन] (१५) [गौड़ी

धर्म-जिनेसर गाऊँ रंग सूँ भंगम पड़ज्यो हो प्रीत जिणेसर।
बीजो मनमंदिर आणू नही ए अम कुलवट रीत जिणेसर।
धरम धरम करतो जग सहु फिरे धर्म न जाणे हो मर्म जिणेसर।
धर्म-जिणेसर-चरण ग्रह्या पछी कोइ न बाँधे हो कर्म जिणेसर।
प्रवचन अंजन जो सदगुरु करे, देखे परम निधान जिणेसर।
हृदय-नयण निहाले जगधणी महिमा मेरु-समान जिणेसर।

वल्लभ, प्रिय। चो = का। बेध = चुभन। करभर = किरणों का समूह। झीलती = झील। [१४] सोहिली = सरल। दोहिली = कठिन। देवा = देव-रूप भी। बापड़ा = बापुरा, बेचारा। रडवडे = भटकता है। च्यार० = मनुष्य, तिर्यक, देवता, नारकी। गच्छ ना = समुदाय का। नीहालताँ = देखते हुए। नडिया = सुभट। जूठो = झूठा, असत्। साँभली = सुनकर। काँइ० = कौन प्रसन्न हुआ। श्रद्धान० = विश्वास की आन, विश्वास का निश्चय। छार० = धूल पर का लीपना है। उत्सूत्र = सूत्र के विपरीत। जिसो = समान। परिखो = समझो। [१५] रंग = सानद। भंग० = बाधा न पड़े। बीजो० = मन मैं

दोड़त दोड़त दोड़त दोड़ियो जेती मन ही रे दोड़।
प्रेम प्रतीत, विचारो, ढूकड़ी; गुरुगम लेज्यो रे जोड़।
एक पखी किम प्रीत वरे पड़े* उभय मिल्या होवे संध।
हूँ रागी हूँ मोहे फंदियो, तूँ निरागी निरबंध।
परम निधि प्रगट मुख आगलैं जगत ओलंघी हो जाय।
ज्योति विना जुओ जग दीसनी अंधो अंध पुलाय।
निरमल गुण मणि रोहण भूधरा, मुनिजन-मानस-हंस।
धन्य ते नगरी धन बेला घड़ी, माता पिता कुल वंस।
मन-मधुकर वर कर जोड़ी कहे, पदकज-निकट निवास।
घननामी आनँदघन साँभलो, ए सेवक अरदास॥

श्रीशांतिनाथ-जिन-स्तवन] (१६) [मलार

शांति जिन एक मुझ वीनती सुणो त्रिभुवनराय रे।
शांति सरूप किम जाणिये, कहो मन किम परखाय रे।
धन्य तूँ आतम जेह ने एह वो प्रश्न अवकास रे।
धीरज मन धरी साँभलो कहूँ शांति-प्रतिभास रे।
भाव अविशुद्ध सविशुद्ध जे कह्या जिन वर देव रे।
ते तिम अवितथ† सद्दहे प्रथम ए शांति-पद-सेव रे।
आगमधर गुरु समकिती किरिया संवर सार रे।
संप्रदाई अवंचक सदा सुची अनुभवाधार रे।
शुद्ध आलंबन आदरे तजी अवर जंजाल रे।

किसी दूसरे को नहीं लाता। कुलवट = कुल की परंपरा में। सहु = सब। निधान = गुप्त धन। ढूकड़ी = छिपी। गुरुगम = गुरुप्रदर्शित मार्ग। एक० = एक पक्ष की, एकांगी। वरे० = ठीक उतरे। आगलैं = सामने। पुलाय = पीछे पीछे दौड़े। रोहण० = उत्पत्तिस्थान, खान। कज = कंज। अरदास = प्रार्थना। [१६] परखाय = परीक्षा करूँ। अवकास = अवसर मिला। प्रतिभास = स्वरूप।

* परवड़े। † अहातत्थ्य।

तामसी वृत्ति सवि परिहरी भजे सात्विकी साल रे।
फल विसंवाद जेह माँनहीँ शब्द ते अर्थ-संबंधि रे।
सकल नयवाद व्यापी रह्यो ते सिव साधन संधि रे।
विधि प्रतिपेध करि आतमा पदारथ अविरोध रे।
ग्रहण विधि महाजने परिग्रह्यो, इसो आगमे बोध रे।
दुष्टजन-संगति परिहरी भजे सुगुरु-संतान रे।
जोग सामर्थ्य चित भाव जे धरे मुगति निदान रे।
मान अपमान चित सम गणे सम गणे कनक पाषाण रे।
वंदक निंदक सम गणे, इसो होय तूँ जाण रे।
सर्व जग-जंतु ने सम गणे गणे तृण मणि भाव रे।
मुगति संसार बिहु सम गणे, मुणे भव-जलनिधि-नाव रे।
आपणो आतमा भाव जे एक चेतनाधार रे।
अवर सवी साथ संयोग थी एक निज परिकर सार रे।
प्रभु-मुख थी इम साँभली कहे आतमराम रे।
ताहरे दरिसणे निस्तर्यो, मुझ सीध्या सवि काम रे।
अहो अहो हूँ मुझने कहूँ 'नमो मुज्झ नमो मुज्झ' रे।
अमित फल दान दातार नी जेह ने भेट थई तुज्झ रे।
शांति सरूप संक्षेप थी कह्यो निज पर रूप रे।
आगम माँहि विस्तर घणो कह्यो शांति जिन-भूप रे।
शांति-सरूप इम भावस्ये धरी शुद्ध प्रणिधान रे।
आनँदघन-पद पामस्ये ते लहिस्ये बहु मान रे॥

अवितथ = सत्य। सद्दहे = (श्रद्धे) मान। आगम० = शास्त्र का धारणकर्ता। समकिती = सम्यक् कृती। संवर = कर्मबंधन से रहितता। अवर = और, अन्य। साल = शालि, धान्य। विसंवाद = अमेल, धोखा। परिग्रह्यो = स्वीकार कर ली है। निदान = अंत में। भाव = एक भाव, समान। बिहु = इन दोनों को भी। मुणे = समझे। साथ० = प्रसंगतः होनेवाला संयोग। परिकर = कुटुंबी। सार = मुख्य, तात्त्विक। ताहरे = तेरे। प्रणिधान = समाधि, एकाग्र चित्त से

श्रीकुंथुनाथ-जिन-स्तवन] (१७) [रामकली

कुंथु जिन मनडूँ किमही न बाजे।
जिम जिम जतन करीने राखूँ तिम तिम अलगू भाजे हो।
रजनी वासर बसती उजड़ गयण पायाले जाये।
साप खायने मोहडूँ थोथु एह उखांणो न्याये हो।
मुगति तणा अभिलाषी तपिया ज्ञान ने ध्यान-अभ्यासेँ।
वयरीडूँ काँई एहवूँ चिंते नाँखे अलवे पासेँ हो।
आगम आगमधर ने हाथे नावे किण बिधि आँकु।
किहाँ किण जो हठ करीने हटकूँ तो व्याल तणी परे बाँकु हो।
जो ठग कहूँ तो ठगतुँ न देखूँ साहुकार पिण नाँही।
सर्व माँहे ने सर्व थी अलगूँ ए अचरिज मन माँही हो।
जे जे कहूँ ते कान न धारे आप मने रहे कालो।
सुर नर पंडित जन समझावे समझे न माहरो सालो हो।
म्हे जाँणूँ ए लिंग नपुंसक सकल मरद ने ठेले।
बीजी बाते समरथ छे नर एहने कोइ न झेले हो।
मन साध्यूँ तिणे सघलूँ साध्यूँ एह बात नहि खोटी।
इम कहे साध्यूँ ते नवि मानूँ एकहि बात छे मोटी हो।

ध्यान। [१७] मनडूँ = ('डूँ' तुच्छताबोधक प्रत्यय) मन (रूपी तंत्री)। उजड = उजाड़ में। गयण = गगन। पायाले = पाताल में। साप० = सर्प किसी को खा (काट) ले तो ऐसा करने से उसकी भूख थोड़े ही मिट जाती है। ओखाणो = (उपाख्यान) कहावत। तपिया = तपस्वी। वयरीडूँ० = यह वैरी मन वैसे ही किसी की भी चिंतना करता है। अलवे = विकट। पासे = पाश में। नावे = नहीं आता। आँकु = वश में करूँ। किहाँ० = किसी स्थल पर। हटकूँ = मना करूँ, रोकूँ। व्याल० = सर्प की भाँति टेढ़ा हो जाता है। पिण = फिर भी। ने = और। आप० = स्वतः मलिन बना रहता है। माहरो० = मेरा। सालो = दुर्बुद्धिरूपी पत्नी का भाई। लिंग० = 'मन' संस्कृत में नपुंसक लिंग है। न झेले = नहीं हटाता। सघलूँ = सकल, सब।

मनडूँ दुराराध्य तैं वसि आएयू ते आगम थी मति आएू।
आनँदघन प्रभु माहरूँ आणो तो साचु करि जाएूँ हो ॥

श्रीअरनाथ-जिन-स्तवन] (१८) [मा॰

धरम परम अरनाथ नो किय जाएूँ भगवंत रे।
स्व-पर-समय समझाविये महिमावंत महंत रे।
शुद्धातम अनुभव सदा स्व समय एह विलास रे।
परवड़ी छाँहड़ी जिहाँपड़े ते पर समय निवास रे।
तारा नक्षत्र ग्रह चंदनी ज्योति दिनेस मझार रे।
दर्शन ज्ञान चरण थकी शक्ति निजातम धार रे।
भारी पीलो चीकणो कनक अनेक तरंग रे।
पर्याय दृष्टि न दीजिये एकज कनक अभंग रे।
दर्शन ज्ञान चरण थकी अलख सरूप अनेक रे।
निरविकलप रस पीजिये शुद्ध निरंजन एक रे।
परमारथ पंथ जे कहे ते रंजे एक तंत रे।
व्यवहारे लख जे रहे तेहना भेद अनंत रे।
व्यवहारे लखें दोहिला काँई न आवे हाथ रे।
शुद्ध नय थापना सेवताँ नवि रहे दुविधा साथ रे।
एक पखो लख प्रीत नी तुम साथे जगनाथ रे।
कृपा करी ने राखज्यो चरण तलें ग्रही हाथ रे।
चक्रीधरम तीरथ तणो तीरथ फल ततसार रे।
तीरथ सेवे ते लहें आनँदघन निरधार रे ॥

एम॰ = इस मन को साधने की बात कहे तो नहीं मान सकता। मोटी = बड़ी अर्थात् दुःसाध्य। माहरूँ॰ = यदि मेरे मन को भी वश में कर दो। [१८] समय = सिद्धांत। परवड़ी॰ = पर्व के समय की छाया अर्थात् विशेष अवसर पर प्राप्त होनेवाली, सदैव नहीं। चंदनी = चाँदनी। चरण॰ = आचरण की। भारी = वजन में गुरु। तरंग = प्रकार। पर्याय॰ = भेददृष्टि। एकज = एक रूप। एक तंत = एक तत्त्व, अद्वितीय अगम तत्त्व। दोहिलो = दुर्लभ। चरण॰ = हाथाँ

श्रीमल्लिनाथ-जिन-स्तवन] (१९) [काफी

सेवक किम अव गणिये हो मल्लि जिन ! ए अब सोभा सारी।
अवर जेह ने आदर अति दियेँ तेह ने मूल निवारी हो।
ज्ञान सुरूप अनादि तुम्हारूँ ते लीधूँ तुमे ताणी।
जुओ अज्ञान दशा रीसावी जाताँ काँण न आणी हो।
निंद्रा सुपन जागर उजागरता तुरिय अवस्था आवी।
निंद्रा सुपन दशा रीसाणी जाँणी न नाथ मनावी हो।
समकित साथे सगाई कीधी सपरिवार सूँ गाढ़ी।
मिथ्या मति अपराधण जाणी घर थी बाहिर काढ़ी हो।
हास्य अरति रति सोग दुगंछा भय पामर करसाली।
नो कषाय श्रेणी गज चढ़ताँ श्वान तणी गति झाली हो।
राग द्वेष अविरति नी परिणति ए चरण मोह ना योधा।
वीतराग परिणति परणमताँ ऊठी नाठा बोधा हो।
वेदोदय कामा परिणामाँ करमाकरम* सहु त्यागी।
निःकामी करुणारससागर अनंत चतुष्कपद पागी हो।
दान-विघन वारी सहु जन ने अभय-दान पद-दाता।
लाभ-विघन जग विघननिवारक परम लाभ रसमाता हो।
वीर्य-विघन पंडित वीर्यहणी पूरण पदवी जोगी।
भोगोपभोग दोय विघन निवारी पूरण भोग सुभोगी हो।

से आप के चरण पकड़ता हूँ। चक्री = चक्रवर्ती। [१९] अवर = और, अन्य। ताणी लीधूँ = खींच लूँ। रीसावी = कुपित हो गई। काँण = कानि, मर्यादा। उजागरता = विशेष जागर्ति। तुरिय अवस्था = समाधि की चरम अवस्था। रीसाणी = कुपित हो गई। समकित = सम्यक्त्व। अपराधण = अपराधिनी। दुगंछा = ग्लानि। करसाली = (कर्षण) खेती की। नो कषाय = हास्य, अरति, रति, शोक, ग्लानि, भय, पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, ये नव। गज० = आप हाथी पर चढ़े हैं, ये कुत्ताँ की तरह भूँक रहे हैं। अविरति = अवैराग्य, लगाव। चरण = आचरण। ऊठी० = उठकर नष्ट हो

* कामकरम।

इम अढार दूषण वरजित तणु मुनिजन वृंदे गाया।
अविगत रूपक दोष निरूपण निरदूषण मन भाया हो।
इण विधि परखी मन-विसरामी जिनवर-गुण जे गावे।
दीनबंधु नी महिर-निजर थी आनंदघन-पद पावे हो॥

श्रीमुनिसुव्रतस्वामी-जिन-स्तवन] (२०) [काफी

मुनि सुव्रत जिनराय एक मुझ वीनती निसुणो।
आतमतत्व क्यूँ जाणूँ जगतगुरु एक विचार मुझ कहियो।
आतमतत्व जाण्या विण निरमल चित समाधि नवि लहियो।
कोई प्रबंध आतम तत माने किरिया करतो दीसे।
क्रिया तणु फल कहो कुण भोगवे इम पूछयूँ चित रीसे।
जड़ चेतन ए आतम एकज थावर जंगम सरिखो।
सुख दुख संकर दूषण आवे चित विचार जो परिखो।
एक कहे नित्यज आतम-तत आतम-दरसण लीणो।
कृत-विनाश अकृतागम दूषण नवि देखे मतिहीणो।
सौगत मत रागी कहे वादी क्षिणक ए आतम जाणो।
बंध मोष सुख दुःख नवि घटे एह विचार मन आणो।

जाती है। बोधा = यही बोध है, या समझो। अनंत० = अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन अनत चारित्र, अनंत वीर्य ये चार। वारी = निवारण करके। पंडित० = पांडित्य के बल से नष्ट करके। अढार० = अठारह प्रकार के दूषण, आशा, अज्ञान, निद्रादशा, स्वप्नदशा, मिथ्यात्व, हास्य, रति, अरति, शोक, दुगंछा (ग्लानि), राग, द्वेष, अविरति, काम्यक रस, दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतरात, उपभोगांतराय। महिर = कृपा। [२०] निसुणो = ध्यान से सुनिए। रीसे = रुष्ट। सुख० = सुख-दुःख में सांकर्य दोष है। क्योंकि दोनों की सत्ता पारस्परिक अभाव से है। कृत-विनाश = किए कर्म का फल न मिलना। अकृतागम = जो कर्म नहीं किए गए हैं उनका फल भोगना। सौगत० = सुगत अर्थात् बुद्ध का मत। मोष = मोक्ष। भूत० = पृथ्वी, अप्, तेज, अग्नि और वायु। स्यूँ० =

भूत चतुष्क वरजित आतम-तत सत्ता अलगी न घटे।
अंध सकट जो नजर न देखे तो स्यूँ कीजे सकटे।
इम अनेकवादी मति विभ्रम संकट पड़ियो न लहे।
चित समाधि ते माटे पूछूँ तुम विण तत कोइ न कहे।
वलतूँ जगगुरु इण परे भाखैं पक्षपात सवि छंडी।
राग द्वेष मोह पख वरजित आतम सूँ रढि मंडी।
आतम ध्यान करे जो कोऊ सो फिरि इण माँ नावे।
वागजाल बीजूँ सहु जाणै, एह तत्व चित चावे।
जिणे विवेक धरिये पख ग्रहिए ते तत्वज्ञानी कहिये।
श्रीमुनि सुव्रत कृपा करो तो आनँदघन-पद लहिये॥

श्रीनामनाथ-जिन-स्तवन] (२१) [आसावरी

षट दरसण जिन अंग भणीजे न्यास खड़ंग जो साधे रे।
नमि जिनवर ना चरण उपासक षट दरसण आराधे रे।
जिन सुरपादप पाय बखाणूँ सांख्य योग दोय भेदे रे।
आतम-सत्ता-विवरण करता लहो दुग अंग अखेदे रे।
भेद अभेद सुगत मीमांसक जिनवर दोय कर भारी रे।
लोकालोक अवलंबन भजिये गुरुगम थी अवधारी रे।
लोकायतिक कूख जिनवर नी अंश विचार जो कीजे रे।
तत्व-विचार सुधारसधारा गुरुगम विण किम पीजे रे।
जैन जिनेश्वर वर उत्तम अंग अंतरंग बहिरंगे रे।
अक्षर-न्यास धरा आराधक आराधैं धरि संगे रे।

क्या किया जाय, उसका दोष क्या। ते माटे = इस कारण। वलतूं = ज्वलत्, जाज्वल्यमान। इण० = इस विधि से। पख = पक्ष। रढि = प्रेम। इण = इस प्रपंच में नहीं आता। बीजूँ० = और सब। चावे = चाहे। [२१] षट० = सांख्य, योग, मीमांसा, बौद्ध, जैन, चार्वाक। न्यास० = 'जंघे बाहू शिरो मध्य षडंगमित्युच्यते'। सुर० = कल्पवृक्ष। सांख्य० = सांख्य और योग उनके दो पैर हैं। दुग = द्विक, दो। लोकालोक = लोक और लोकोत्तर, अनंत प्रदेश।

जिनवर माँ सघला दरिसण छे दर्शन जिनवर भजना रे।
सागर माँ सघली तटनी सही तटिनी सागर छजना रे।
जिन-सरूप थइ जिन आराधे तेस ही जिनवर होवे रे।
भृंगी इलीका ने चटकावे ते भृंगी जग जोवे रे।
चूरणि भाष्य सूत्र निर्युक्ति वृत्ति परंपर अनुभव रे।
समय पुरुष ना अंग कह्या ए जे छेदे ते दुरभव रे।
मुद्रा वीज धारणा अक्षरन्यास अरथ विनियोगे रे।
जे ध्यावे ते नवि वंचीजें क्रिया अवंचक भोगे रे।
श्रुत अनुसार विचारी बोलूँ सुगुरु तथा विधि न मिले रे।
क्रिया करी नवि साधी सकिय ए विषवाद चित सघले रे।
ते माटे उभा कर जोड़ी जिनवर आगल कहिये रे।
समय चरणसेवा सुचि देज्यो जिम आनँदघन लहिये रे॥

श्रीनेमीनाथ-जिन स्तवन] (२२) [मारू

अष्ट भवंतर वालही रे तूँ मुझ आतमराम रे मनरावाला।
मुगति नारी सूँ आपणे रे, सगपण कोइ न काम रे।
घरि आवो हो बालम घरि आवो मारी आसा ना बिसराम रे।
रथ फेरो हो साजन रथ फेरो, साजन मारा मनरा मनोरथ साथ।
नारी पखोस्यो नेहलो रे, सच्च कहे जगनाथ।
ईश्वर अरधंगे धरी रे, तूँ मुझ झाले न हाथ।

लोकायतिक० = चार्वाक दर्शन, उनकी कोख (मध्य) है। उत्तम० = शिर। अक्षर० = जिनेश्वर कथित बातों का आराधन अक्षर-न्यास की भाँति करे, एक अक्षर भी इधर उधर न करे। सघला = सब। तटिनी = नदी। इलीका = कीट। चटकावे = डक मारता है, भनभनाता है। चूरणि= पद्य की गद्य में व्याख्या। निर्युक्ति = महात्माओं के नियुक्तिक वचन जो सूत्र के लिए कहे गए हों। समय = सिद्धांत। दुरभव = भ्रम में भटकती। मुद्रा = योग की। बीज = बीज रूप अक्षर जैसे मंत्र में 'ह्रीं' आदि होते हैं। श्रुत = श्रुतज्ञान। [२२] नेमीश्वर प्रभु के संबंध में कहा जाता है कि वे उग्रसेन की कन्या राजमती से परिणय के

पशुजन ने करुणा करी रे आणी रिदय विचार।
माणस नी करुणा नहीँ रे ए कुण घर आचार।
प्रेम-कलपतरु छेदियो रे धरियो योग-धतूर।
चतुराई रो कुण कहो रे, गुरु मिलियो जग-सूर।
माहरूँ तो एमाँ काँ नहि रे आप विचारो राज!
राजसभा माँ वेसताँ रे, कीसड़ी वधसी लाज।
प्रेम करे जगजन सहु रे, निरवाहे ते ओर।
प्रीत करीने छोड़ी दे रे ते सूँ न चले जोर।
जो मन माँ एहवूँ हतूँ रे, निसपति करत न जाण।
निसपति कारने छाँड़ताँ रे, माणस हुवे नुकसाण।
देताँ दान संवत्सरी रे, सहु लहे वंछित पोष।
सेवक वंछित नवि लहे रे, ते सेवक नो दोष।
सखी कहे ए साँमलो रे हूँ कहूँ लत्तण स्वेत।
इण लत्तण साची सखी रे, आप विचारे हेत।
रागी सूँ रागी सहु रे, वैरागी स्यो राग।
राग विना किम दाखवो रे मुगति-सुंदरी-माग।
एक गुह्य घटतूँ नही रे सवलोइ जाणे लोग।
अनेकांतिक भोगवो रे ब्रह्मचारी गत सोग।
जिण जोगे तुझ ने जोऊँ रे, तिण जोगे जोवो राज।
एक बार मुझ ने जुवो रे तो सीझे मुझ काज।

लिए रथ पर जा रहे थे, पर पशुओँ की करुणा से लौटने लगे उस समय राजमती ने कहा था कि आपका मेरा इस जन्म का नहीँ, आठ पूर्व जन्मों का संबंध है। यह स्तवन राजमती की उक्ति है, बड़ी ही मार्मिक। वालही = वल्लभी, प्रिया। सगपण = संबंध। वालिम = प्रिय। मनरा = मन का। नारी = नारी के पक्ष में यह प्रेम फिर किसलिए है? ईश्वर० = महादेव ने तो पार्वती को अर्धांग मेँ धारण किया, आप मेरा हाथ भी नहीँ पकड़ते। पशु० = पशुओँ की करुणा। रिदय = हृदय मेँ। माणस नी = मनुष्य की। चतुराई को० = आप को

मोह-दसा धरि भावताँ रे चित लहे तत्व-विचार।
वीतरागता आदरी रे प्राणनाथ निरधार।
सेवकपिण ते आदरे रे तो रहे सेवक-माम।
आसय साथे चालिये रे, एहीज रूडूँ काम।
त्रिविध योग धरि आदर्यो रे नेमनाथ भरतार।
धारण पोषण तारणो रे नवरस मुगताहार।
कारण-रूपी प्रभु भज्यो रे गण्यो न काज अकाज।
कृपा करी प्रभु दीजिये रे आनँदघन-पद-राज॥

श्रीपार्श्वनाथ जिन-स्तवन] (२३) [सारंग

ध्रुव-पद-रामी हो स्वामी माहरा निःकामी गुणराय, सुज्ञानी।
निज-गुण-कामी हो पामी तूँ धणी, ध्रुव आरामी हो थाय।
सर्वव्यापी कहो सर्व जाणगपणे, पर परिणमन स्वरूप।

संवत्सरी = वर्ष भर। सेवक० = वर्ष भर द्रव्यादि दान देनेवाले तो वांछित पालेते हैं पर मैंने अपना जीवन आप को समर्पित कर दिया फिर भी आप विमुख हुए यह मेरा ही दोष है। सखी० = मेरी सखियाँ कहती थीं कि वे (नेमिनाथजी) साँवले हैं पर मैं तो आप का लक्षण श्वेत समझती थी। पर इस लक्षण से तो सखियाँ ही सच्ची ठहरीं। रागी सूँ० = संसार में लोग रागी से ही अनुराग करते हैं मैंने तो विरागी से भी अनुराग किया है। राग विना० = यदि मुक्ति सुदरी ही आप को रुची तो बिना राग के उसकी माँग कैसे देखेंगे? माग = माँग का मार्ग। गुह्य = गुप्त, रहस्यपूर्ण। एक० = आप का रहस्य भी छिपा न रह सका, सब जान गए। आप एक क्या अनेक (अनेकांत बुद्धि) के साथ रमण करनेवाले हैं। अच्छे ब्रह्मचारी हैं! रोगरहित = निर्विकार। जिण० = जिस दृष्टि से आप को देखती हूँ उसी से आप मुझे देखें। सीजे = सिद्ध हो। माम = मर्म, धर्म। रूडूँ = उत्तम, रूरा। त्रिविध = मन, वचन, कर्म से। तारण = उद्धार। नवरस = नूतन रस; नवम रस (शान्तोऽपि नवमो रसः)। मुगताहार = मोती की माला; मोक्षपद। कारण० = हेतुभूत। [२३] ध्रुव = अटल। जाण० = ज्ञातापन में। पर० = परवस्तु में परिणति।

परूपे करी तत्वपणूँ नही स्वसत्ता चिद्रूप।
ज्ञेय अनेकें हो ज्ञान अनेकता जल-भाजन रवि जेम।
द्रव्यएकत्वपणे गुणएकता निज-पद-रमताँ हो खेम।
परक्षेत्रें गत ज्ञेय नें जाणवे परक्षेत्री थयूँ ज्ञान।
अस्तिपणूँ निज क्षेत्रें तुमें कह्यो निर्मलता-गुण मान।
ज्ञेय-विनाशें हो ज्ञान विनश्वरु काल-प्रमाणे रे थाय।
स्वकाले करी स्वसत्ता सदा, ते पर रीते न जाय।
परभावे करी परता पामताँ, स्वसत्ता थिर ठाण।
आत्मचतुष्कमयी परमाँ नहि तो किम सहु नो रे जाण।
अगुरुलघु निज गुण ने देखताँ द्रव्य सकल देखंत।
साधारण गुण नी साधर्म्यता दर्पण-जल ने दृष्टांत।
श्रीपारस जिन पारस-रस समो पिण इहाँ पारस नाहिँ।
पूरण रसियो हो निज गुण-परसनो आनँदघन मुझ माहिँ॥

श्रीमहावीर-जिन-स्तवन] (२४) [धनाश्री

वीर-जिने-चरणे लागूँ वीर-पणूँ ते मागूँ रे।
मिथ्या-मोह-तिमिर-भय भागूँ जीत-नगारूँ वागूँ रे।
छउमथ वीरय लेस्या संगे अभिसंधिज मति अंगे रे।
सूक्षम थूल क्रिया ने रंगे योगी थयो उमंगे रे।
असंख्य प्रदेश वीर्य असंखे योग असंखित कंखे रे।
पुद्गलगण तिणे ल्यैसु विशेषे यथासकति मति लेखे रे।
उत्कृष्टे वीरय ने वेखे योगक्रिया नवि पेसे रे।
योग तणी ध्रुवता ने लेसे आतम-सगति न खेसे रे।

अन्य वस्तु में स्थिति। परूपे० = दूसरी वस्तुओं में परिणति आत्मरूप नहीं। आत्मा की सत्ता तो चिद्रूप है, परिणति अचित् है। थिर० = स्थिर स्थानवाली। पारस-रस = पारसमणि रूप। [२४] वागूँ = बजता है। छउमथ = छद्मस्थ। वीरय = वीर्य। अभि० = योगाभिसंधिजनित। कंखे = (कांक्षा) अभिलाष

काम वीर्य वशिँ जिम भोगी तिम आतम थयो भोगी रे।
सूरपणे आतम-उपयोगी थायेँ तेह नेँ अयोगी रे।
वीरपणूँ ते आतम ठाणे जाण्यूँ तुम ची वाणे रे।
ध्यान विनाणे सगति प्रमाणे निज ध्रुवपद पहिचाणे रे।
अक्षय दर्शन ज्ञान विरागे आनँदघन प्रभु जागे रे॥

करे। ल्यैसु = लेश्या, प्रकाश। पेसे = (पैसे = पैठे) प्रवेश करती। खेसे = (स्खलित) डिगती नहीँ। वाणे = वाणी। विनाण = विज्ञान।

आनंदघन-बहोत्तरी

चेतावनी] (१) [बिलावल

क्या सोवै उठ जाग बाउरे।
अंजलि-जल ज्यूँ आयु घटत है, देत पहरिया घरिय घाउ रे।
इंद चंद नागिंद मुनि चले, को राजा पति साह राउ रे।
भमत भमत भव-जलधि पाय कै भगवतभक्ति सुभाउ नाउ रे।
कहा विलंब करै अब बउरे, तरि भव-जलनिधि पार पाउ रे।
आनँदघन चेतनमय मूरति, सुद्ध निरंजन देव ध्याउ रे॥

(२) [एकताली

रे घरियारी बाउरे, मत घरिय बजावै।
नर सिर बाँधत पाघरी, तूँ क्या घरिय बतावै।
केवल काल कला कलै वै तू अकल न पावै।
अकल-कला घट मैं घरी, मुज सोई घरि भावै।
आतम-अनुभव-रस भरी, यामैं और न मावै।
आनँदघन अविचल कला, विरला कोई पावै॥

(३) [जाती ताल

जिय जानै मेरी सफल घरी री।
सुत वनिता यौवन धन मातो, गर्भ तणी वेदन विसरी री।

---

[१] पहरिया = घड़ियाल बजानेवाला। नागिंद = नागेंद्र। सुभाउ = स्वाभाविक। [२] पाघरी = पगड़ी। काल० = समय के विभाग की सूचना देकर। अकल = सब कलाओं से परे (ब्रह्म)। घट = शरीर; घड़ा। घरी = घटी। मुज = मुझे। रस = आनंद ; जल। न मावै = नहीं समाता। [३] गर्भ० = गर्भवास की। राचत = रचता है। नाहर = शेर। हारिल = [illegible]

सुपन को राज साच करि माचत, राचत छाँह गगन-बदरी री।
आइ अचानक काल तोपची, गहैगो ज्यूँ नाहर बकरी री।
अजहुँ चेत कछु चेतत नाहीँ, पकरि टेक हारिल लकरी री।
आनँदघन हीरो जन छाँरत, नर मोह्यो माया-कँकरी री॥

(४)

सुहागण! जागी अनुभव-प्रीत।
निंद अनादि अज्ञान की मेटि गही निज रीत।
घट मंदिर दीपक कियो, सहज सुज्योति सरूप।
आप पराइ आपु ही ठानत वस्तु अनूप।
कहा दिखाऊँ और कूँ, कह समजाऊँ भोर।
तीर न चूकै प्रेम का, लागै सो रहै ठोर।
नादविलुद्धो प्राण कूँ, गिनै न तृण मृग-लोय।
आनँदघन प्रभु प्रेम की अकथ कहानी कोय॥

(५)

अवधू नटनागर की बाजी, जाणैँ न बाँभण काजी।
थिरता एक समय मैँ ठानैँ, उपजैँ विणसैँ तब ही।
उलट पलट ध्रुव सत्ता राखैँ, या हम सुनी न कब ही।
एक अनेक अनेक एक फुनि, कुंडल कनक सुभावै।
जल-तरंग घट माँही रविकर, अगनित नाहि समावै।
है नाँही है वचन अगोचर, नय-प्रमाण सतभंगी।
निरपख होय लखै कोइ बिरला, क्या देखै मतजंगी।

जो चंगुल मैँ बराबर लकड़ी लिए रहता है। कँकरी = ककड़ी। [४] आप० = अपना पराया स्वयं मान बैठता है। ठोर = जहाँ का तहाँ। नाद० = नाद से मुग्ध। लोय = लोग, समूह। कोय = कोई (और ही)। [५] फुनि = पुनि। कुंडल० = प्रसिद्ध कनक-कुंडल न्याय। नय० = शास्त्रप्रमाण से सैकड़ों मुद्राओं वाला। निरपख = निष्पक्ष। मत० = सांप्रदायिक विवाद के युद्ध की रुचिवाला।

सवमयी सरवंगी मानै, न्यारी सत्ता भावै।
आनँदघन प्रभु-वचन-सुधारस, परमारथ सो पावै॥

साखी] (६) [रामगिरी

आतम-अनुभव-रसिक को, अजब सुन्यो बिरतंत।
निर्वेदी वेदन करै, वेदन करै अनंत।
माहारो बालुड़ो संन्यासी, देह-देवल-मठवासी।
इड़ा-पिंगला-मारग तजि जोगी, सूषमना-घर-वासी।
ब्रह्मरंध्र मधि साँसन पूरी, बाऊ, अनहद नाद*बजासी।
यम नीयम आसन जयकारी, प्राणायाम-अभ्यासी।
प्रत्याहार धारणा धारी, ध्यान समाधि समासी।
मुल उत्तर गुण मुद्राधारी, पर्यंकासन-वासी†।
रेचक पूरक कुंभक सारी, मन इंद्री जय कासी‡।
थिरता जोग जुगति अनुकारी, आपो आप विमासी।
आतम परमातम अनुसारी, सीझै काज समासी॥

(७) [आसावरी

जग आसा जंजीर की, गति उलटी कुल मोर।
झकस्यो धावत जगत मैं रह छूटो इक ठोर।
अवधू क्या सोवे तन-मठ मैं, जाग विलोक न घट मैं।
तन मन की परतीत न कीजैं, ढहि परै एकै पल मैं।

---

[६] निर्वेदी = वेद से परे, ब्रह्म। वेदन० = जाने। माहारो० = मेरा भोला-भाला। देह० = शरीर-रूप मंदिर का निवासी। बाऊ = वायु। समासी = समा जाता है। मुल = मूल गुण (यम)। उत्तर = उत्तर गुण (नियम)। कासी = भाल मैं दोनों भौहों के बीच का स्थान। विमासी = विचार करता है। सीझै = सिद्ध हो जाता है। समासी = समास मैं, थोड़े मैं। [७] जाग० = जगकर शरीर के भीतर क्यों नहीं देखता। चीन्हे० = घट के जल मैं

* तान। † बारी, चारी। ‡ कारी।

मठ मैं पंचभूत का वासा, सासा धूत खवीसा।
छिन छिन तोहि छलन कूँ चाहैं, समजे न बौरा सीसा।
सिर पर पंच वसे परमेसर, घट मैं सूछम वारी।
आप अभ्यास लखे कोइ विरला, निरखे ध्रू की तारी।
आसा मारि आसन धरि घट मैं, अजपा जाप जगावै।
आनँदघन चेतनमय मूरति, नाथ निरंजन पावै॥

(८) [धनाश्री, सारं

आतम-अनुभव-फूल की नवली कोऊ रीत।
नाक न पकरै वासना, कान गहै परतीत।
अनुभव नाथ कुँ क्यों न जगावै।
ममता-संग सो पाय अजागल-थन तैं दूध दुहावै।
मेरे कहे तैं खीज न कीजे, तूँ ऐसि ही सिखावै।
वहोत कहे तें लागत ऐसी, अँगुली सरप* दिखावै।
औरन के सँग राते चेत न, चेतन आप बतावै†।
आनँदघन की सुमति अनंदा, सिद्ध सरूप कहावै॥

विनय] (६)

नाथ निहारो आप मतासी।
वंचक सठ संचक सी रीतैं, खोटो खातो खतासी।

रमनेवाले की पहचान। सासा० = श्वास। धूत० = धूर्त और दुष्ट। समजे० = पागल अपने सिर पर आए इनको समझता नहीं। पंच० = पंचपरमेष्ठी (अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु)। वारी = जल। तारी = तारा। [८] वासना = गंध। कान० = अनाहत नाद सुनकर। अजागल० = बकरी के गले में लटकनेवाली स्तनाकार छीमियाँ। अँगुली० = सर्प जैसे उँगली दिखाने से फुफकारता है। औरन० = औरों (सांसारिक विषयों) से अनुरक्त होकर अचेत हो गया है पर अपने को ब्रह्म कहता है। [६] आप० = आप का मतानुयायी। संचक =

* सरग। † माते आप बतावे।

आप बिगूँवण जग की हाँसी, स्यानप कोण बतासी।
निज जन सुरिजन मेला ऐसा, जैसा दूध पतासी।
ममता दासी अहितकरी हरविधि विविध भाँति सँतासी।
आनँदघन प्रभु विनती मानो, और न हितु समता सी॥

(१०) [टोड़ी

परम नरम मति और न आवै।
मोहन गुन-रोहन गति सोहन, मेरी बेर ऐसे निठुर लखावै।
चेतन गात मनात न एते, मूल बसात जगात बढ़ावै।
कोइ न दूति दलाल बसीठी, पारखि प्रेम-खरीद बनावै।
जाँघ उघारि अपनी कहा एते, बिरह जार निस मोहि सतावै।
एती सुनि आनँदघन विनती और कहा कोउ डुंड वजावै॥

आत्मानुभव] (११) [मालकोश, विलावल

आतम-अनुभव-रीति वरी री।
मौर बनाय निजरूप निरूपम तिच्छन रुचि कर तेग धरी री।
टोप सनाह सूर को बानो, एकतारी चोरी पहिरी री।
सत्ता थल में मोह विदारत, ए ए सुरजन मुह* निसरी री।

संचय करने में लीन। खोटो० = मेरा खोटा खाता खतियाया जायगा। आप० = अपने को खोना। स्यानप = चतुराई। बतासी = बताएगा। सुरजन = सज्जन। मेला = मिलाप। पतासी = बताशा। सँतासी = सताएगी। हितु = हितकारी। समता० = समता के समान कोई दूसरा नहीं। [१०] परम० = दूसरों के लिए आप कोमल हैं। रोहन = रोहण। गुन-रोहन = गुणी। सोहन = शोभन। चेतन० = चेतन मेरे गात से अनुकूल नहीं होता। बसात = वस्तु। जगात = कर, टैक्स। बसीठी = (विसृष्ट) संदेश ले जानेवाली। कहा = क्या। एते = इससे। ज्वार = ज्वाला। डुंड = डंका। [११] वरी = वरण की। मौर =

* सुरिजन।

केवल कमला अपछर सुंदर, गान करे रसरंग-भरी री।
जीत-निसान बजाइ बिराजै, आनँदघन सर्वंग धरी री॥

साखी] (१२) [रामगिरी

कुबुधि-कुबजा कुटिल गति, सुबुधि राधिका नारी।
चौपर खेलै राधिका [रानी] जीतै, कुबजा हारी।
खेलै चतुर्गति चौपर प्रानी मेरो खेलै।
नरद गँजीफा कौन गिनत है, मानै न लेखे बुधिवर।
राग दोष [अरु] मोह के पासे, आप बनाए हित कर।
जैसा दाव परै पासे का, सारी चलावै खिलकर।
पाँच तलैं है दूआ भाई, छक्का तलैं है एका।
सब मिल होत बराबर लेखा, यह विवेक गिनवे का।
चउरासी माँहे फिरै नीली, स्याह न तोरी जोरी।
लाल जरद फिर आवै घर मैं, कबहुक जोरी बिछोरी।
भाव विवेक के पाव न आवत, तब लग काची बाजी।
आनँदघन प्रभु दाव देखावत, तो जीते जिय गाजी॥

मुकुट। तिच्छन = तीक्ष्ण। रुचि = इच्छा। तिच्छन रुचि० = तीक्ष्ण रुचि रूप तलवार हाथ मैं ले ली है। टोप = लोहे की टोपी, कूँड़ी। सनाह = कवच। बानो = वेश। एकतारी० = छाती पर पहनी जानेवाली एक तार की जाली। चोरी = चोली। सत्ता० = सत्ता के सभास्थल मैं। सुरिजन० = देवता स्वागत करते हैं। कमला = लक्ष्मी। अपछर = अप्सरा। [१२] चतुर्गति = चार प्रकार का। नरद = गोट। गँजीफा = ताश के पत्तों का एक खेल। सारी = गोटी। हित कर = प्रसन्न होकर। तलैं = नीचे। पाँच = पंचेंद्रिय। दूआ = द्वैतबुद्धि अथवा जैनधर्म की सात गतियाँ। छक्का = षड्दर्शन। एका = ब्रह्म। चउरासी = चौरासी लक्ष योनियाँ। नीली = नीली गोटी (जीव)। स्याह = काली गोटी तामसिक माया। जोरी = जोड़ी। जरद = पीली। पाव = पासे का वह दाँव जिसे पौ बारह कहते हैं। पाव = पैर। गाजी = गरजकर।

(१३)

अनुभव हम तो रावरी दासी ।
आई कहाँ तैं माया ममता, जानूँ न कहाँ की वासी।
रीज परे वाके सँग चेतन, तुम क्यूँ रहत उदासी।
वरज्यो न जाय एकंत कंत को लोक मैं होवत हाँसी।
समजत नाहि निठुर पति एती, पल एक जात छमासी।
आनँदघन प्रभु घर की समता,अटकलि और लबासी ॥

(१४)

अनुभव तूँ है हितू हमारो ।
आय उपाय करो चतुराई और को संग निवारो।
तिसना राँड़ भाँड़ की जाई, कहा घर करै सँवारो।
सठ ठग कपट-कुटुँब ही पोखै, मन मैं क्यूँ न विचारो*।
कुलटा कुटिल कुबुधि सँग खेलि कै अपनी पत क्यूँ† हारो।
आनँदघन समता घर आवै, बाजै जीत नगारो ॥

ज्ञानोदय] (१५)

मेरे घट ज्ञान-भानु भयो भोर ।
चेतन चकवा चेतना चकवी, भागो विरह को सोर।
फैली चहुँ दिस चतुर-भाव-रुचि, मिट्यो भरम-तम जोर।
आप की चोरी आप ही जानत, और कहत ना चोर।

---

[१३] रीज० = रीझ गए। पति = अर्थात् मन। घर० = आप की वास्तविक वस्तु समता है। अटकलि = आनुमानिक, काल्पनिक। लबासी = साज-सामान।
[१४] तिसना = तृष्णा। जाई = पुत्री। सठ = यह दुष्टा तृष्णा। पत = प्रतिष्ठा।
[१५] चतुर० = चातुर्यभाव का प्रकाश, ज्ञान की ज्योति। आप की = अपनी।

* उनकी संगति वारो। † पति ज्यूँ।

अमल कमल विकच* भये भूतल, मंद विषय-ससि कोर।
आनँदघन एक वल्लभ लागत, और न लाख किरोर॥

तोड़ी] (१६) [मारू

निसदिन जोऊँ (तारी) वाटड़ी घरे आवो न ढोला।
मुज सरिखी तुज लाख है मेरे तू ही ममोला।
जवहरी मोल करै लाल का, मेरा लाल अमोला।
जिसके पटतर को नहीं, उसका क्या मोला।
पंथ निहारत लोयणे, द्रग लागी अडोला।
जोगी सुरत-समाधि मैं, मुनि ध्यान झकोला।
कौन सुनै किनकूँ कहूँ किम माँडूँ मैं खोला।
तेरे मुख दीठे टल, मेरे मन का झोला।
मित्त विवेक वातैं कहैं सुमता सुनि बोला।
आनँदघन प्रभु आवसे सेजड़ी रँग रोला॥

जैजैवन्ती] (१७) [सोरठ गिरनारी

छोटा ने क्यूँ मारे छे रे, जाये काट्या डेण।
छोरो छे मारो वालो भोलो, बोले छे अंमृत वेण।

विकच० = खिले। कोर = किरण। वल्लभ = प्रिय। किरोर = करोड़। [१६] जोऊँ = देखूँ। वाटड़ी = मार्ग। आवो० = आते क्यों नहीं। ढोला = पति। ममोला = ममत्व के अधिष्ठान, प्रिय। पटतर = बराबरी का। लोयणे = नेत्र। द्रग = दृष्टि। अडोला = अचचल, निर्निमेष। सुरत = ब्रह्मप्रेम। झकोला = झकोर अर्थात् ध्यान की मस्ती। माँडूँ० = आँचल पसारूँ। दीठे = देखने पर। झोला = चंचलता। मित्त० = सुमति की ये बातें सुनकर उसका साथी विवेक कहने लगा कि। आवसे = आएँगे। सेजडी० = सेज पर रंगरेलियाँ होंगी। [१७] छोरा० = हे चेतन, इस बच्चे को क्यों मारते हो। जाए० = पुत्र से ही

* विकच नभतल।

लेय लकुटिया चालण लाग्यो, अब काँइ फुटा छे नेण।
तूँ तो मरण सिराणे सूतो, रोटी देसी कोण।
पाँच पचीस पचासा ऊपर, बोले छे सूधा वेण।
आनँदघन प्रभु दास तुमारो, जनम जनम के सेण ॥

मानापनोदन] (१८) [मालकोश, गो

रिसानी आप मनावो रे प्यारे बिच्च बसीठ न फेर।
सौदा अगम है प्रेम का रे परखन बूझै कोय।
ले दे वाही गम पड़ै प्यारे, और दलाल न होय।
दो बाताँ जिय की करो रे, मेटो मन की आँट।
तन की तपत बुझाइये प्यारे, बचन सुधारस छाँट।
नेक नजर निहालिये रे, उजर न कीजे नाथ।
तनक नजर मुज रे मिलै प्यारे, अजर अमर सुख साथ।
निसि अँधियारी घनघटा रे, पाऊँ न बाट को फंद।
करुणा करो तो निरबहुँ प्यारे, देखूँ तुम मुखचंद।
प्रेम जहाँ दुविधा नही रे, नहि ठकुराइत रेज।
आनँदघन प्रभु आइ विराजे, आपहि समता-सेज ॥

तो ऋण (अथवा ढेण = वार्द्धक्य) काटा जा सकता है। मारो = मेरा। वेण = वचन। काँइ० = अब तेरी आँखें क्यों फूट गई। सिराणे = सिरहाने। देसी = देगा। पाँच = जैन मत के पाँच महाव्रत। पच्चीस महाव्रतों की पच्चीस भावनाएँ। पचास = तपस्या के पचास भेद। ऊपर = इनकी साधना कर लेने पर। सूधा = सुधावत्, अमृत। सेण = (स्वजन, सजन, सयण, सैण, सेण) प्रिय या नाई, सेवक। [१८] आप = स्वयं। बिच्च = मध्यस्थ। बसीठ = दूत। परख० = परख से ही इसकी जानकारी हो सकती है। ले० = जो लेता देता है वही इसे समझता है। बाताँ = बातें। आँट = गाँठ। तपत = आग। छाँट = चुनकर। नेक = थोड़ा सा। निहालिये = देखिए। उजर = उज्र, विरोध। फंद = सुभाव, उपाय। ठकुराइत = स्वामीत्व। रेज = अंश मात्र, थोड़ा भी। [१९] दुवहन =

विबोधन] (१९) [बिलावल

दुलहन री तूँ बड़ी बावरी, पिय जागै तूँ सोवै।
पिया चतुर, हम निपट अज्ञानी, ना जानूँ क्या होवै।
आनँदघन पिय-दरस-पियासै खोल घुँघट मुख जोवै॥

सौभाग्य-प्राप्ति] (२०) [आसावरी, गोड़ी

आज सुहागन नारी, अवधू आज०।
मेरे नाथ आप सुध लीनी, कीनी निज अँगचारी।
प्रेम-प्रतीति राग रुचि रंगत, पहिरे जीनी सारी।
महिँदी भक्ति-रंग की राची, भाव अँजन सुखकारी।
सहज सुभाव चुरी मैं पैन्ही, थिरता कंकन भारी।
ध्यान उरवसी उर मैं राखी, पिय गुनमाल अधारी।
सुरत सिँदूर माँग रँगराती, निरतै वेनि समारी।
उपजी ज्योत उद्योत घट त्रिभुवन आरसी केवल कारी।
उपजी धुनि अजपा की अनहद, जीत-नगारेवारी।
झड़ी सदा आनँदघन वरखत, बन मोर एकनतारी॥

अनिर्वचनीयता] (२१)

निसानी कहा बताऊँ रे, तेरो वचन अगोचर रूप।
रूपी कहूँ तो कछू नाहीं रे, कैसे वँधे अरूप।
रूपारूपी जो कहूँ प्यारे ऐसे न सिद्ध अनूप।
सिद्ध सरूपी जो कहूँ रे, बंधन मोक्ष विचार।

बुद्धि। पिय = आत्मा। [२०] अँगचारी = सहचरी। जीनी = झीनी, पतली। उरवसी = माला मैं पहनने का एक गहना, पदिक। निरतै = निरति ही, निर्विकल्पावस्था। वेनि = वेणी। समारी = सँवारी हुई, गुही हुई। आरसी० = केवल दर्पण ही अंधकारयुक्त रह गया है; अज्ञान या माया का दर्पण। वन० = एकाग्रता ही मयूरी बनकर नाच रही है। [२१] रूपी = साकार। रूपारूपी० = साकार निराकार दोनों कहूँ तो यह विलक्षण बात भी सिद्ध नहीं

न घटे संसारी दसा प्यारे, पुन्य पाप अवतार।
सिद्ध सनातन जो कहूँ रे, उपजै बिणसै कौण।
उपजै बिणसै जो कहूँ प्यारे, नित्य अबाधित गौन।
सर्वांगी सब-नय-धणी रे, माने सब परवान।
नयवादी पल्लोग्रही प्यारे, करै लराई ठान।
अनुभव-गोचर वस्तु को रे, जाणवो यह ईलाज।
कहन सुनन को कछु नहिँ प्यारे, आनँदघन महराज॥

विचारी] (२२)

विचारी कहा विचारै रे, तेरो आगम अगम अपार।
बिनु अधार आधेय नहीँ रे, बिन आधेय अधार।
मुरगी बिनु ईँडा नहिँ प्यारे, इडा बिनु मुरग की नार।
भुरटा बीज बिना नहि रे, बीज न भुरटा टार।
निसि बिन द्योस घटै नहिँ प्यारे, दिन बिन निसि निरधार।
सिद्ध सँसारी बिना नहीँ रे, सिद्ध बिना संसार।
करता बिन करनी नहि प्यारे, बिन करनी करतार।
जामन मरण बिना नहि रे, मरण न जनम बिना स।
दीपक बिनु परकास न प्यारे, बिन दीपक परकास*।

होती। सरूपी० = स्वरूपवाला कहा जाय तो बंध और मोक्ष का विचार नहीँ घटता। सनातन० = अनादि कहूँ तो उत्पन्न और नष्ट कौन होता है? नित्य = शाश्वत। गौन = गमन, गति, स्थिति। नय० = अर्थात् ज्ञानी, शास्त्री। परवान = प्रमाण। पल्लो० = पल्लवग्राह्यपांडित्यशाली। इह० = इस संसार मेँ अनुभवगोचर वस्तु ही जानी जा सकती है। आप अगोचर हैँ। [२२] विचारी = विचारक। आगम = शास्त्र। अगम० = वहाँ तक पहुँचने या पार जाने की शक्ति जिसमेँ नहीँ। ईँडा = अंडा। भुरटा = (भृष्ट?) भुट्टा, बाल। द्योस = दिन। जामन = जन्म लेना। स = वह, पादपूर्त्यर्थ। परका॰

* बिनु दीपक परकास नहि रे, दीपक बिनु परकास।

आनँदघन प्रभु वचन की रे, परिणति धरि रुचिवंत।
सास्वत भाव बिचारते प्यारे, खेलो अनादि अनंत॥

बोधोदय] (२३) [आसावरी

अवधू अनुभवकालिका जागी गति मेरी आतम सूँ मिलन लागी*।
जाय न कबहुँ और ढिग नेरी, तोरी बिनता-वेरी।
माया चेड़ी कुटुँब करि हाथे, एक डेढ़ दिन घेरी।
जनम जरा मरनो वसि सारे, असर न दुनिया जेती।
मेटेव काय न वा गमै माया† किस पर ममता एती।
अनुभव-रस में रोग न सोगा, लोकवाद‡ सब मेटा।
केवल अचल अनादि अबाधित शिवशंकर का भेटा।
वर्षा-बुंद समुंद समानी, खबर न पावै कोई।
आनँदघन ह्वै ज्योति समावै अलख कहावै सोई॥

मिलन का अभिलाष] (२४) [रामगिरी

मुने म्हारो कब मिलशे मन मेलू।
मनमेलू विण केलि न कलियै वा ले कवल कोइ वेलू।
आप मिल्या थी अंतर राखे सुमनुष नहिं ते लेलू।
आनँदघन प्रभु मन मिलिआ विण,को नवि विलगे चेलू॥

सता = प्रकाशत्व। परिणति = तन्मयता। [२३] नेरी = निकट। बिनता = विवशता। वेरी = वेड़ी। चेड़ी = चेरी, दासी। वसि = वश में। मेटेव० = शरीर का अध्यास मिटा दिया, माया उसके पास तक जा ही नहीं सकती। [२४] मुने = मुझे। म्हारो = मेरा। मनमेलू = प्रिय। न कलियै = नहीं होती। वा० = चाहे कमल ले चाहे बेला का फूल। मिल्याथी० = मिलनेवाले से अंतर रखनेवाला। लेलू = (लेलिह) साँप। को० = कौन नहीं पृथक् चलता रहा।

* समरण लागी। † दे ढवकाय नवा गमैं मीयाँ। ‡ वेद।

सनेही संत] (२५)

क्या रे मुने मिलश्ये माहारो संत सनेही।
संत सनेही सुरिजन पाखे, राखे न धीरज देही।
जन जन आगल अंतरगत नी, बातलड़ी कहूँ केही।
आनँदघन प्रभु वैद्य-वियोगेँ किम जीवे मधुमेही॥

आत्मनिवेदन] (२६) [आसावरी

अवधू क्या मागूँ गुनहीना, वे गुन-गनन-प्रवीना।
गाय न जानूँ बजाय न जानूँ, ना जानूँ सुर-भेवा।
रीझ न जानूँ रिझाय न जानूँ, ना जानूँ पदसेवा।
वेद न जानूँ कतेब न जानूँ, जानूँ न लच्छण छंदा।
तरकवाद वेवाद न जानूँ, ना जानूँ कवि-फंदा।
जाप न जानूँ जुवाब न जानूँ, ना जानूँ कथवाता।
भाव न जानूँ भगति ना जानूँ, जानूँ न सीरा ताता।
ज्ञान न जानूँ विज्ञान न जानूँ, ना जानूँ भजनामा।
आनँदघन प्रभु के घरद्वारेँ, रटन करूँ गुणधामा॥

अलख की खोज] (२७)

अवधू राम राम जग गावै, विरला अलख लगावै।
मतवाला तो मत में माता, मठवाला मठ-राता।
जटा जटाधर पटा पटाधर, छता छताधर ताता।
आगम पढ़ि आगमधर थाके, मायाधारी छाके।
दुनियादार दुनी सें लागे, दासा सब आसा के।

[२५] सुरिजन = स्वजन। पाखे = पीछे। आगल = आगे। अंतर० = हृदय की बातलड़ी = बात। मधुमेही = मधुप्रमेहवाला रोगी। [२६] कतेब = कुरान। कथवाता = कथावार्ता। सीरा० = ठंढा गरम। [२७] अलख० = अलख ब्रह्म से ध्यान लगाता है। मठ० = मठ में अनुरक्त। पटा० = सिंहासनवाले।

बहिरातम मूढ़ा जग जेता, माया के फंद रहेता।
घट-अंतर परमातम भावै, दुरलभ प्राणी तेता।
खग-पद गगन मीन-पद जल मैं, जो खोजै सो बौरा।
चित पंकज खोजै सो चीन्है, रमता आनँद* भौरा॥

ज्ञानमधु] (२८)

आसा औरन की क्या कीजै, ज्ञान-सुधारस पीजै।
भटकै द्वार द्वार लोकन के, कूकर आसाधारी।
आतम-अनुभव रस के रसिया, उतरै न कबहुँ खुमारी।
आसा दासी के जे जाए, ते जन जग के दासा।
आसा दासी के जे नायक, लायक अनुभव-प्यासा।
मनसा-प्याला प्रेम-मसाला, ब्रह्म-अग्नि परजाली।
तन-भाठी अवटाइ पियै कस, जागै अनुभव-लाली।
अगम पियाला पियो मतवाला चीन्हि अध्यातम-वासा।
आनँदघन चेतन ह्वाँ† खेलै, देखै लोक तमासा॥

आत्मनिरूपण] (२९)

अवधू नाम हमारा राखै, सोई परम महारस चाखै।
ना हम पुरुष नहीं हम नारी, वरन न भाँति हमारी।
जाति न पाँति न साधन साधक, ना हम लघु नहिं भारी।
ना हम ताते ना हम सीरे, ना हम दीर्घ न छोटा।
ना हम भाई ना हम भगिनी, ना हम बाप न धोटा।
ना हम मनसा ना हम सबदा, ना हम तन की धरणी।
ना हम भेख भेखधर नाहीं, ना हम करता करणी।

ताता = तप्त। खग० = पक्षी के चरणों का चिह्न। [२८] खुमारी = नशा। परजाली = प्रज्वलित की। कस = आसव। वासा = स्थान। ह्वाँ = वहाँ। [२९] वरन = वर्ण (ब्राह्मणादि)। भाँति = भेद। ताते = तप्त। सीरे = ठंढे। धोटा =

* भ्रमर। † ते रंग में रोते।

ना हम दरसन ना हम परसन, रस न गंध कछु नाहीं।
आनँदघन चेतनमय मूरति, सेवक-जन बलि जाहीं॥

समता का रंग] (३०)

साधो भाइ ! समता-रंग रमीजै, अवधू ममता-संग न कीजै।
संपति नाहिं, नाहिं ममता में, रमता राम समेटै॥।
खाट-पाट तजि लाख-खटाऊ, अंत खाख में लेटै।
धन धरती में गाड़े बौरे, धूर आप मुख ल्यावे।
मूषक साँप होयगो आखर, तातें अलछि कहावे।
समता रतनाकर की जाई, अनुभव-चंद सु भाई।
कालकूट तजि भव में स्याणी† आप अमृत ले आई।
लोचन-चरण-सहस चतुरानन, इन तें वहुत डराई।
आनँदघन पुरुषोत्तम नायक, हित करि कंठ लगाई॥

जड़चेतन-विवेक] (३१) [श्रीराग

कित जान मते हो प्राणनाथ, इत आय मिहारो घर को साथ।
उत माया काया कवन जात, वह जड़ तुम चेतन जग-विख्यात।
उत करम भरम विष-बेलि संग, इत परम नरम मति मेलि रंग।
उत काम कपट मद मोह मान, इत केवल अनुभव-अमृत-पान।
आलि कह समता उत दुख अनंत, इत खेलहु आनँदघन वसंत॥

पुत्र। धरणी = वृत्ति। [३०] रमता = चंचल मन। खटाऊ = खटानेवाले, पैदा करनेवाले। खाख = राख, भस्म। अलछि = अलक्ष्मी। समता० = (लक्ष्मी नहीं प्रत्युत) समता रत्नाकर से उत्पन्न हुई है। सु = सो, सम। कालकूट = विप। भव = शिव; संसार। स्याणी = चतुर। लोचन-सहस = इंद्र। चरण-सहस = सूर्य। [३१] कित० = कहाँ जाने का विचार किया।

॥ ममता माँ मिस मेटे। † श्रेणी।

प्रेमोपालंभ] (३२) [रामेरी

पिया तुम निठुर भए क्यूँ ऐसैं।
मैं मन वच क्रम करी राउरी, राउरी रीति अनैसैं।
फूल फूल भँवर कैसी भाउँरी भरत हौ निवहै प्रीति क्यूँ ऐसैं।
मैं तो पिय तैं ऐसि मिली आली कुसुम-वास सँग जैसैं।
आछी जात* कहा पर एती, नीर नहैयै† भैंसैं।
गुन अवगुन न विचारौ आनँदघन, कीजियै तुम हो तैसैं॥

मिलन की आतुरता] (३३) [गौड़ी

मिलापी आन मिलावो रे, मेरे अनुभव मीठड़े मित्त।
चातक पिउ पिउ पीउ रटै रे, पीउ मिलावै न आन।
जिउ पीवन पिउ पिउ करै प्यारे, जिउ निउ आनय आन।
दुखियारी निसदिन रहूँ रे, फिरूँ सब सुध-बुध खोय।
तन की मन की कवन लहै प्यारे, किसैं दिखाऊँ रोय।
निसि अँधियारी मोहि हसै रे, तारे दाँत दिखाइ।
भादो कादो मैं कियो प्यारे अँसुअन धार वहाइ।
चित चाकी चहुँ दिसि फिरै रे,‡ प्राण मेदो करै पीस।
अवला सैं जोरावरी प्यारे, एती न कीजै रीस।
आतुर चातुरता नहिं रे, सुनि समता टुक वात।
आनँदघन प्रभु आय मिलैं प्यारे, आज घरैं हर भाँत॥

---

[३२] क्रम = कर्म। राउरी = आपकी। भैंसैं० = भैंस की सी ओछी जाति और नहीं, जो शरीर साफ कर देने पर भी कीचड़ मैं जा बैठती है। [३३] पीवन = प्रेमरस पीने के लिए। आन = और, अन्य। निउ = निज। आनय = ला, ले आ। तारे० = तारे रूपी दाँत। कादो = कर्दम, कीचड़। प्राण० = प्राणों को पीसकर मैदा किए डालता है। रीस = रिस, रोष। घरैं = घर मैं। भाँत =

* ऐंठी जान। † निबहियै। ‡ चित चातक पिउ पिउ करै रे।

नटनागर] (३४)

देखो आली नटनागर को साँग।
और ही और रंग खेलत तातें फीका लागत अंग।
ओरहनो कहा दीजे वहुत करि, जीवित है इह ढंग।
मेरे और विच अंतर एतो, जेतो रूपो राँग।
तनु-सुध खोय घूमत मन ऐसें मनु कुछ खाई भाँग।
एते पर आनँदघन नावत कहा और दीजै वाँग॥

विरह-व्यथा] (३५) [दीपक, कानड़ो

करे जा रे जा रे जा रे जा।
सजि सिणगार वनाय अभूषण गई तब सूनी सेजा।
विरह-व्यथा कछु ऐसी व्यापति, मानुँ कोइ मारती वेजा*।
अंतक अंत कहा लूँ लेगो प्यारे, चाहे जीव तूँ ले जा।
कोकिल काम चंद्र चूतादिक देन मतत हैं नेजा†।
नवल नागर आनँदघन प्यारे, आइ अमित सुख दे जा॥

(३६) [मालश्री

बारे नाह सँग मेरो यूँ ही जोबन जाय।
ए दिन हँसन खेलन के सजनी, रोते रैन विहाय।
नग भूषण सें जरी जात री, मो तन कछु न सुहाय।
इक बुधि जिय में ऐसि आवति है, लीजै री विष खाय।

भाँति, प्रकार। [३४] साँग = स्वाँग। ओरहनो = उलाहना। रूपे = चाँदी। राँग = राँगा। नावत = न आवत। बाँग = पुकार। [३५] सिणगार = शृंगार। बेजा = (वेध्य) बेझा, लक्ष्य। अतक = यम। लूँ = लौं, तक। अंत लेना = मार डालना। चूत = आम। देन० = भाला मारने का विचार कर रहे हैं। नेजा = भाला। [३६] बारे = बाल, छोटे। ह्वै कै = होकर। समजाय =

* नेजा। † चेतन मत है जेजा।

ना सोवत है लेत उसासन, मन ही में पछिताय।
योगिनि ह्वै कै निकरूँ घर तैं आनँदघन समजाय ॥

साधक योगी] (३७) [बिलावल

ता जोगे चित ल्याऊँ रे वहाला ।
समकित दोरी सील लँगोटी, घुलघुल गाँठ घुलाऊँ।
तत्व-गुफा मैं दीपक जोऊँ, चेतन-रतन जगाऊँ।
अष्ट-करम कडे की धूनी, ध्याना अगन जलाऊँ।
उपसम छनने भसम छणाऊँ, मलि मलि अंग लगाऊँ।
आदिगुरू का चेला होकर, मोह के कान फराऊँ।
धरम सुकल दोय मुद्रा सोहै, करुणा-नाद बजाऊँ।
इह विध योग-सिंहासन बैठा, मुगति-पुरी कूँ ध्याऊँ।
आनँदघन देवेंद्र से योगी, वहुरि न कलि मैं आऊँ॥

नटनागर से लगन] (३८) [मारू

मनसा नटनागर सूँ जोरी हो, मनसा० ।
नटनागर सूँ जोरी सखी हम, और सबन सैं तोरी हो।।
लोक-लाज सूँ नाहिन काजा कुल-मरजादा छोरी हो।
लोक बटाऊ हसो बिरानो अपनो कहत न को री हो।
मात तात अरु सज्जन जाती, वात करत हैं भोरी हो।
चाखैं रस की क्यूँ करि छूटै, सुरिजन सुरिजन टोरी हो।
औरहनो कहा कहावत और पै नाहिन कीनी चोरी हो।
काछ कछ्यो सो नाचत निबहै और चाचरी होरी हो।

(समझाय) उन्हें समझा। [३७] बहाला = (वल्लभ) प्रिय। समकित = समकृत्य । दोरी = डोरी। जोऊँ = जलाऊँ । अष्ट-करम = योग के अष्टांग (ध्यान, धारणा आदि)। उपसम = शांति के छनने से भस्म छान लूँ। सुकल = शुक्ल, स्फटिक की सी सफेद। [३८] हसो = चाहे हँसे। बिरानो = पराया। को = कोई। सज्जन = स्वजन। चाखैं = चखने के बाद। सुरिजन =

ज्ञान-सिंधु मंथित पाई है प्रेमपियूष-कटोरी हो।
मोदत आनँदघन प्रभु ससधर देखत दृष्टि-चकोरी हो ॥

मोह-माया] (३९) [जयजयवंती

तरस कीजइ दई कौं दई की सँवारी री।
तीछन कटाछ-छटा लागत कटारी री।
सायक लायक नायक प्रान को प्रहारी री।
काजर-काजन लाज वा जन कहुँ वारी री।
मोहनी मोहन ठग्यो जगत-ठगारी री।
दीजिये आनंदघन दाद* हमारी री ॥

प्रिय-माधुरी] (४०) [आसावरी

मीठो लागे कंतड़ो ने खाटो लागे लोक।
कंत-बिहूणी गोठड़ी ते, ते रण माँहे पोक।
कंतड़ा मैं कामणा, लोकड़ा मैं सोक।
एक ठामे किम रहे, दूध काँजी-थोक।
कंत विण चउगति आणूँ मानूँ फोक।
उधराणी सिरउ फिरउ नाणूँ खरूँ रोक।

विद्वान्। टोरी = टोली। औरहनो = उलाहना। ससधर = चंद्रमा। [३९] तरस० = तरस खाओ, दया करो। प्रहारी = हरनेवाला। दाद देना = न्याय करना। [४०] ने = और। खाटो = बुरा। गोठड़ी = गोष्ठी। रण = अरण्य, बन। पोक = रोना। कामणा = (कामना) आकर्षण। चउगति = चतुर्गति, चारों ओर। आणूँ = लाऊँ, समझूँ। फोक = (फोकट) व्यर्थ। उधराणी = लहना। सिरउ० = धक्का खिलानेवाला। नाणूँ = रकम। खरूँ = खरा। रोक = रोकड़ा, पास में। नाणूँ० = जो रकम पास में हो वही खरी। अबाहडा नी = प्रवाह की। नोक = पतली, पतली धार के रूप में बिखरा पानी। धोक द्यूँ = झुककर नमस्कार करूँ। अवर ने = औरों को। टोक द्यूँ = मना कर

* दाद।

कंत विण मति माहरी, अवाहडा नी वोक।
धोक घूँ आनंदघन ने अवर ने घूँ टोक* ॥

विरह-व्यथा] (४१) [बिलावल,

पिया बिन सुधि बुधि भूली हो।
आँख लगाई दुःख-महल के झरुखे झूली हो।
हँसती तबहुँ बिरानिया देखी, तन मन छीज्यो हो।
समजी तब एती कही, कोइ नेह न कीज्यो हो।
प्रीतम प्रानपिया विना, प्रिया कैसे जीवे हो।
प्रान-पवन विरहा-दसा-भुवंगिनि पीवे हो।
सीतल पंखा कुमकुमा, चदन कहा लावे हो।
अनल न विरहानल ये है, तन-ताप बढ़ावे हो।
फागुण चाचर एक निसा होरी सिरगानी हो।
मेरैं मन सब दिन जरै तन खाख उड़ानी हो।
समता-महल† विराजहै वाणी रस-रेजा हो।
बलि जाऊँ आनंदघन प्रभु ऐसे निठुर न ह्वे जा हो ॥

अमरत्व प्राप्ति] (४२) [सारंग, आसावरी

अब हम अमर भए न मरेंगे।
या कारण मिथ्यात दियो तज, क्यूँ कर देह धरेंगे।
राग-दोस जगबंध करत हैं, इनको नास करेंगे।
मर्यो अनंत काल तैं प्राणी सो हम काल हरेंगे।
देह विनासी हूँ अविनासी अपनी गति पकरेंगे।

दूँ, रोक दूँ। [४१] झरुखे = झरोखे में। झूली = टँग गई। हुँ = हौं, मैं। विरानिया = अन्य स्त्रियाँ। छीजो = क्षीण हो गया। प्रिया = प्रेमिका। कुमकुम = रोली। सिरगानी = सुलगी। रेजा = रंजित, युक्त। [४२] मिथ्यात = मिथ्यात्व। दोस = द्वेष। नासी० = नाश हो जायगी (देह)। समरे = (सँवरे)

* ढोक। † घर।

मर्‍यो अनंत वार विन समज्यो, अव सुख-दुख विसरैंगे।
आनँदघन निपट निकट अच्छर हो, नहिं समरे सो मरेंगे* ॥

प्रबोधन] (४३) [टोड़ी

मेरी तूँ मेरी तूँ काहे डरै री।
कहे चेतन समता सुनि आखर, और दोढ़ दिन जूठ लरै री।
पती तो हूँ जानूँ निहचै, रीरी पर न जराउ जरै री।
जव अपनो पद आप सँभारत, तव तेरे परसंग परै री।
औसर पाय अध्यातम सेली, परमातम निज योग धरै री।
सकति जगाइ निरूपम रूप की, आनँदघन मिलि केलि करै री ॥

प्रतीति] (४४)

तेरी हूँ तेरी हूँ पती कहूँ री।
इन वातन मैं दगो तूँ जाने, तो करवत कासी जाय गहूँ री।
वेद-पुरान कतेब कुरान मैं, आगम निगम कछू न लहू री।
चाचरि फोरि सिखाइ सवनि की,† मैं तेरे रस-रंग रहूँ री।
मेरे तो तूँ राजी चहिए, और के बोल मैं लाख सहूँ री।
आनँदघन वेगैं मिलो प्यारे, नाहिं तो गंग-तरंग बहूँ री ॥

याचना] (४५)

ठगो री भगो री, लगो री, जगो री।
ममता माया, आतम ले मति अनुभव मेरी ओर दगो री।

स्मरण किए। [४३] दोढ़ = डेढ़। जूठ = झूठ, व्यर्थ। रीरी० = पीतल से कहीँ जड़ाव जड़ा जाता है। सेली = (शैली) ढंग। सकति = (शक्ति) वल। [४४] करवत = करपत्र, आरा। कतेब = किताब, धर्मग्रंथ। राजी = प्रसन्न।

* यह 'द्यानत' कवि के 'द्यानतविलास' या 'धर्मविलास' में कुछ ही पाठभेद से ज्यों का त्यों मिलता है। [पाठभेद—या = तन। मर्‍यो० = उपजै मरै काल ते प्रानी ताते काल हरैंगे। अपनी गति = भेद ज्ञान। सुख = सव। आनँदघन = द्यानत।]

† वाचा रे फोर सिखाइ सेवन की।

आत न मात न तात न गात न, जाति न वात न लाग-तगो री।
मेरे सब दिन दरसन फरसन तान सुधारस-पान पगो री।
प्राननाथ बिछुरे की वेदन पार न पाऊँ अथाग थगो री।
आनँदघन प्रभु दरसन औघट घाट उतारन नाव मगो री॥

मोहराज-विजय] (४६)

चेतन चतुर चोगान लरी री।
जीत ल मोहराय को लसकर, मसकरि* छाँड अनादि धरी री।
नाँगी काढ ले ताड ले दुसमन लागे काची दोइ घरी री।
अचल अबाधित केवल मनसुफ पावे शिव-दरगाह भरी री।
और लराइ लरे सो बोरा, सूर पछारे भाउ* अरी री।
धरम भरम कहा बूझे औरे, रहै आनँदघन-पद पकरी री॥

विरह वेदना] (४७)

पिय बिन निसदिन झुरूँ खरी री।
लहुडी वडी की कानि मिटाई द्वार तें आँखें कब न टरी री।
पट भूखन तन भौकन ऊठे‡ भावे न चौकी जराउ-जरी री।
सिव-कमला अलि! सुख नउ पावत कौन गिनत नारी अमरी री।

---

[४५] दगो = प्रज्वलित। फरसन = परसन, स्पर्श। लाग-तगो = सबध-सूत्र। अथाग = अथाह। थगो = हुआ (वेदना का समुद्र)। मगो = माँगती हूँ। [४६] चोगान = मैदान, युद्ध। लसकर = सेना। मसकरि = हँसी, दिल्लगी, नकल, मिथ्या। नाँगी = नगी तलवार। काढ० = निकाल ले। ताड० = मार ले। काची० = पक्की नहीं, केवल कच्ची दो घडियाँ लगेंगी। मनसुफ = न्याय करनेवाला। दरगाह = दरबार। बोरा = पागल। भाउ = भाव, अस्तित्व। अरी = शत्रु। [४७] झुरूँ० = अत्यंत सतप्त रहती हूँ। लहुडी० = छोटे बडे की मर्यादा तोड दी। कब = कभी। भौकन = ज्वाला। चौकी = गले का एक गहना या सिंहासन। सिव० = मोक्ष लक्ष्मी, पार्वती। अमरी = देवांगना। निगोरी =

* मिसकर। † नाव। ‡ ओदे।

सास विसास उसास न राखे, नणदि निगोरी भोरी लरी री।
और तबीब न तपति बुझावे, आनँदघन पीयूष-झरी री॥

आत्मा की व्यग्रता] (४८) [मारू, जंगलो

मायड़ी मुने निरपख किणहि न मूकी।
निरपख रहेवा घणुँइ झूरी धीमेँ निज मति फूकी।
जोगिए मिली ने जोगण कीधी जतिए कीधी जतणी।
भगतेँ पकड़ि भगतणी कीधी, मतवाली कीधी मतणी।
राम भणी रहमान भणावी अरिहँत पाठ पढाई।
घर घर ने हूँ धंधे विलगी, अलगी जीव-सगाई।
कोइए मुंडी कोइए लोची, कोइए केस लपेटी।
कोइ जगावी कोइ सुती छोड़ी, वेदन किणहि न मेटी।
कोई थापी कोइ उथापी कोई चलावी कोई राखी।
एकमनोँ मैँ कोई न दीठो कोई नो कोई नवि साखी।
धीँगो दुरबल ने ठेलीजेँ ठीँगे ठीँगो वाजे।
अबला तेँ किम बोली सकिए बड जोधा ने राजे।
जे जे कीधूँ जे जे कराव्यू ते कहेताँ हूँ लाजूँ।
थोडे कहे घणूँ प्रीछी लेजो घर-सूतर नहि साजूँ।

निगोड़ी। भोरी = भोली, अज्ञान। तबीब = वैद्य। [४८] मायड़ी = माई। मुने = मुझे। निरपख = निष्पक्ष। नउ० = नहीँ छोड़ा, नहीँ रहने दिया। रहेवा० = निष्पक्ष रहने के लिए बहुत परेशान हुई। धीमेँ = धीरे धीरे। फूकी = जला डाली। कीधी = की। मतवाली = ज्ञानमस्त, खुदमस्त। मतणी = मस्त। राम० = राम कहा, फिर रहमान कहा। अरिहँत = जैन साधु। पढाई = पढ़ाई। विलगी = विशेष रूप से लगी। अलगी = पृथक् हो गई। लोची = केश लुचवाए। थापी = स्थापित किया। उथापी = उखाड़ी। राखी = रखा, रोका, बैठाया। एकमनोँ = एक मनवाला। नवि = नहीँ। धीँगो = बली। दुरबल० = दुर्बल को हरा देता है। ठीँगे० = बली से बली लड़ता है। जे जे० = जो जो किया जो जो कराया। थोडे० = थोडा कहने पर बहुत समझ लेना। घर-

आपवीती कहेताँ रीसावे, तेहि सूँ जोर न चाले।
आनँदघन प्रभु वाँहड़ी झाले बाणी सबली पाले॥

प्रियमिलन की याचना] (४६) [सोरठी

कंचन वरणो नाह रे, मोने कोइ मेलावो।
अंजन-रेख न आँखड़ी भावे मंजन सिर पड़ो दाह रे।
कोइ सयण जाणे पर-मन नी वेदन-विरह अथाह रे।
थर थर देहड़ी धूजे माहरी जिम वानर भरमाह रे।
देह न गेह न नेह न रेह न भावे न दूहा* गाह रे।
आनँदघन वहालो वाँहड़ी साही निसदिन धरूँ उछाह रे॥

प्रियप्राप्ति की कठिनाई] (५०) [धनाश्री

अनुभव! प्रीतम कैसे मनासी।
छिन निरधन सधन छिन निरमल समल रूप बनासी।
छिन मैं सक्र तक्र फुनि छिन मैं देखूँ कहत अनासी।
विरचन विच्च आप हितकारी निरचन जूँठ खनासी।
तूँ हितु मेरो मैं हितु तेरी अंतर काहि जनासी।
आनँदघन प्रभु आन मिलावो, नहितर करो धनासी॥

विरह-वेदना] (५१) [धमाल

भादूँ की राति काती सी बहे, छाती छिन छिन छीना।
प्रीतम सब छवि निरख के हो, पीउ पीउ पिउ कीना।

सूतर० = घर का सूत्र अर्थात् व्यवस्था ठीक नहीं है। वाँहड़ी० = वाँह पकड़ ले। सबली० = सारी बाजी जीत ली जाय। [४६] मोने = मुझे। मंजन = स्नान। सयण = स्वजन; सज्जन। कोई० = कोई स्वजन ही दूसरे के मन की व्यथा समझता है। धुजे = काँपती है। जिम० = जैसे बंदर नाचता है। रेह = रेख, लेख। दूहा = दोहा। गाह = गाथा। वाँहड़ी० = वाँह पकड़ी। वहालो = वल्लभ, प्रिय। [५०] मनासी = मनाएगा। सधन = धनी। समल = मल (विकार) युक्त। बनासी = बनाएगा। सक्र = इन्द्र। तक्र = मठा (तत्त्वहीन)।

* दुहा।

वाही विच चातक करे हो, प्रान हरे परवीना।
एक निसि प्रीतम नाउँ की हो, बिसर गई सुध नाउँ।
चातक ! चतुर विना रही हो, पिउ पिउ पिउ पिउ पाउँ।
एक समे आलाप के हो, कीने अडाने गान।
सुघर बपीहा सुर धरे हो, देत हे पिउ पिउ तान।
रात-विभाव विलात है हो, उदित सुभाव सुभान।
सुमता साँच-मते मिले हो, आए आनँदघन मान ॥

सर्वस्व आनदघन] (५२) [जयजयवंती

मेरे प्रान आनंदघन तान आनंदघन।
मात आनंदघन तात आनंदघन, गात आनंदघन जात आनंदघन।
राज आनंदघन काज आनंदघन, साज आनंदघन लाज आनंदघन।
आभ आनंदघन गाभ आनंदघन, नाभ आनंदघन लाभ आनंदघन ॥

वंशीवाला] (५३) [सोरठ मुलतानी, नट रागिणी

सारा दिल लगा है, वंसीवारे सूँ।
वंसीवारे सूँ प्रानप्यारे सूँ।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, पीतांवर पटवारे सूँ।

फुनि = पुनि, फिर। अनासी = अविनाशी। विरचन = विशेष प्रेम करना। विरचन० = प्रेमी के लिए तो हितकारी है। निरचन = अप्रेमी। निरचन० = अप्रेमी को मिथ्या लिख भेजेगा। जनासी = जनाएगा। नहितर = नहीँ तो। धनासी = धन्याश्री, प्रेमिका ; धनाश्री, रागिनी। [५१] काती = कटारी। बहे = लगती है। छबि = चित्र। परवीना = चतुर, प्रिय। बिसर० = अब तो नाम लेने की सुध भी भूल गई। चतुर = प्रिय। एक समे = संयोग में। अडाने = अडाना राग। सुघर = चतुर। बपीहा = पपीहा। विभाव = विगत-भाव, विरह की (रात)। सुभाव = सुंदर भाव, प्रेम (संयोग)। साँच० = सचमुच। [५२] तात = पिता। जात = पुत्र या जात-पाँत के। आभ = आभा। गाभ = गर्भ, मध्य। नाभ = नाभि, मूल। [५३] सारा = सब या

चंद चकोर सप प्रान पपइया, नागर नंददुलारे सूँ।
इन सखी के गुन गंद्रप गावे, आनँदघन उजियारे सूँ ॥

खंडिता] (५४) [प्रभाती, आसावरी

रातड़ी रमीने किहाँ थी आविया।
मूलड़ो थोड़ो भाई व्याजड़ो घणो रे, केम करी दीधो रे जाय।
तलपद पूँजी मैं आपी सघली रे, तोहे व्याज पूरूँ नवि थाय।
व्यापार भागो जल-वट थल-वटँ रे, धीरे नहीँ निसानी माय!
व्याज छोड़ावी कोई खंधा परठवे रे, तो मूल आपूँ सम खाय।
हाटड़ूँ माँड़ूँ रूड़ा माणक-चोक माँ रे, साजनिया नूँ मनड़ूँ मनाय।
आनँदघन प्रभु शेठ शिरोमणि रे, बाँहड़ी झालजो रे आय॥

आनंदघनतत्त्व] (५५) [धनाश्री

चेतन आप कैसें लहोइ*।
सत असत गुन परजय परनति, भाव सुभाव गति होइ†।
स्व पर रूप वस्तु की सत्ता, सीझै एक न दोइ।
सत्ता एक अखंड अबाधित, यह सिद्धांत-पख जोइ।

खूब, भली भाँति। गंद्रप = गधर्व। [५४] रातड़ी० = रात मैं रमण करके। किहाँ थी० = कहाँ से आए। केम० = कैसे दिया जाय। तलपद = खास, असल, मूल। मैं = मैं। आपी = दे दी। सघली = सब। तोहे = तो भी। नवि० = नहीं होता। जल-वट = जल के मार्ग से। थल० = स्थल के मार्ग से। धीरे० = उसकी निशानी भी नहीं मिलती। खंधा = किस्त। परठवे = ठहरा दे। आपूँ = दे दूँ। सम = कसम, सौगंध। हाटड़ूँ० = हाट लगाई। रूड़ा = सुंदर। साजनिया नूँ = साजन का। मनड़ूँ = मन। झालजो = पकड़ लीजिए। [५५] पख = पक्ष। जोइ = देख। अन्वय = कार्य-कारण का संबंध (हेतुसाध्ययोर्व्याप्तिरन्वयः)। व्यतिरेक = जहाँ साध्य का अभाव हो वहाँ हेतु का भी अभाव हो (यत्र साध्याभावस्तत्र हेत्वभाव इति व्यतिरेकव्याप्तिः)। हेतु =

* सफल विआपक होइ। † दोइ।

अन्वय अरु व्यतिरेक हेतु को, समजि रूप भ्रम खोइ।
आरोपित सब धम और हैं, आनँदघन तत सोइ॥

प्रिय का प्रत्यावर्तन] (५६)

वालुड़ी अबला जोर किश्यूँ करे, पिउड़ो पर-घर जाय।
पूरब दिसि पच्छिम दिसि रातड़ी, रवि अस्तंगत थाय।
पूनम ससी सम चेतन जाणियेँ, चंद्रातप सम भाण।
बादल-भर जिम दल-थिति आणियेँ, प्रकृति अनावृत जाण।
पर-घर भमताँ स्वाद किशो लहे, तन धन यौवन हाण।
दिन दिन दीसे अपयश वाधतो, निज जन न माने काण।
कुलवट छाँड़ी अवट ऊवट पड़े, मन मेहुवा ने घाट।
आँधो आँधे मिले बे जण, कोण देखाड़े वाट।
बंधु विवेकेँ पिउड़ो बूझव्यो, वार्‍यो पर-घर-संग।
आनँदघन समता-घर आणे, बाधे नव नव रंग॥

अपूर्व खेल] (५७) [आसावरी

देखो एक अपूरब खेला।
आप ही बाजी आप ही बाजीगर, आप गुरू आप चेला।

कारण। समजि० = रूप समझ ले। आरोपित = अर्थात् मिथ्या। तत = तत्त्व। [५६] वालुड़ी = बाला (कम वय की)। किश्यूँ = क्या। पूरब० = पूर्व दिशा रात की पश्चिम दिशा हो जाती है। पूनम० = पूर्णिमा का चंद्र, पूर्ण चंद्र। चंद्रातप = चाँदनी। भाण = ज्ञान, बोध। बादल० = बादल का घिराव। दल० = बादल के पटलों की स्थिति। बादल० = जैसे बादल के दल के दल चंद्र को ढक लेते हैं वैसे ही उस चेतन को अनावृत जानकर प्रकृति ढक लेती है। भमताँ = घूमते हुए। किशो = कैसे। हाण = हानि। बाधतो = बढ़ता हुआ। काण = मर्यादा। कुलवट = कुल का मार्ग। अवट = अमार्ग। ऊवट = उद्धत मार्ग। मेहुवा० = वर्षा-समय के घाट की भाँति। बे० = दो जने। देखाड़े = दिखाए। बंधु० = विवेक बंधु ने प्रिय को समझाया। वार्‍यो = छुड़ा लिया। बाधे = बढ़े। [५७] अलोक = लोकेतर। बाजी = संसार की बाजी (प्रपंच)।

लोक अलोक विच आप विराजित, ज्ञान-प्रकाश अकेला।
बाजी छाँड़ तहाँ चढ़ बैठे, जिहाँ सिंधु का मेला।
बागवाद खटनाद सहू में, किसके किसके बोला।
पाहाण को भार काँही उठावत, एक तारे का चोला।
षटपद-पद के जोग सिरीखस, क्योंकर गजपद तोला।
आनँदघन प्रभु आय मिलो तुम, मिट जाय मन का झोला॥

विरह-व्यथा] (५८) [वसंत

प्यारे आय मिलो कहा अंतै जात, मेरो विरह-व्यथा अकुलात गात।
एक पैसा भर न भावै नाज, न भूषण नहीं पट समाज।
मोहन पास न मूरति* तेरी आसी, मदन नो भय है घर की दासी।
अनुभव जइ के करो विचार, कद देखै वै बाकी तन में सार।
जाय अनुभव जहँ समजाए कंत, घर आए आनँदघन भए वसंत॥

प्रभुजन] (५९) [कल्याण

मोकूँ कोऊ कैसे हूँ तको।
मेरे काम एक प्रान-जीवन सूँ, और भावै सो बको।
मैं आयो प्रभु सरन तुमारी, लागत नाहीं धको।
भुजन उठाय कहूँ औरन सूँ, करहु जु कर ही सको।
अपराधी चित ठानि जगत-जन, कोरिक भाँत चको।
आनँदघन प्रभु निहचै मानो, इह जन रावरो थको॥

सिंधु = प्रेम-समुद्र। बागवाद = वाणी का विलास। खटनाद = ६ प्रकार के नाद। सहू० = सब में। पाहाण = (पाषाण) पत्थर। काँही = कैसे। एक तारे० = एक तार का बना हुआ। जोग = योग्य। सिरीखस = (सदृश) समता में। झोला = चंचलता। [५८] अंतै = अन्यत्र। एक० = कुछ भी। पट = वस्त्र। न आसी = यदि न आएगी तो। वै = वे (प्रिय)। बाकी = शेष। सार = तत्व अर्थात् प्राण। [५९] धको = धक्का। चको = आशंका करें।

*रास न दूसत।

निरंजनदेव] (६०) [सारंग

अब मेरे पति गति देव निरंजन।
भटकूँ कहा, कहा सिर पटकूँ, कहा करूँ जन-रंजन।
खंजन-दृगन दृगन लगावूँ, चाहूँ न चितवन अंजन।
संजन-घट-अंतर परमातम, सकल-दुरित-भय-भंजन।
यह काम-गवि यह काम-घट, यही सुधारस मंजन।
आनँदघन प्रभु घट वन-केहरि, काम-मतंग-गज-गंजन॥

जगत् की दासी] (६१) [जयजयवंती

मेरी सूँ तुम तैं जु कहा दुरी कहो न सवै बेरी री।
रूठे से देखि मेरी मनसा दु:ख-घेरी री।
जाके संग खेलो सो तो जगत की चेरी री।
सिर छेदी आगें धरे, और नहीं तेरी री।
आनँदघन की सौं, जो कहूँ हूँ अनेरी री॥

विरह-व्याल] (६२) [मारू

पिया बिन सुध-बुध मूँदी हो।
विरह-भुवंग निसा-समै, मेरी सेजड़ी खूँदी हो।
भोयण पान कथा मिटी, किसकूँ कहुँ सुद्धी हो।
आज-काल घर-आन की, जीव आस विलुद्धी हो।
वेदन-विरह अथाह है, पाणी नव नेजा हो।
कौन हबीब तबीब है, टारे कर करेजा हो।

रावरो० = आपका हिला, आपका ही। [६०] सजन = सज्जन, भक्त। काम-गवि = कामधेनु। काम-घट = कामना का घड़ा। मंजन = मार्जन, स्नान। घट = शरीर में। मतंग० = मतवाला हाथी। [६१] कहो न = चाहे जो कहें। जगत्० = माया। सिर० = जो सिर काट कर आगे रखे वही तेरी है, अन्य नहीं। अनेरी = विलक्षण बात। [६२] खूँदी = गड़बड़ कर दी, अव्यवस्थित कर दी। भोयण = भोजन। कथा = बात। सुद्धी = सुध, हाल। काल = कल। आन = आने। विलुद्धी = नष्ट हो गई। नव० = नौ भाले भर, नौ पोरसा,

गाल हथेली लगाय कें, सुर सिंधु समेली हो।
असुअन नीर वहाय के, सींचूँ कर-वेली हो।
श्रावण भादूँ घनघटा, विच वीज झबूका हो।
सरिता सरवर सब भरे, मेरा घट-सर सब सूका हो।
अनुभव बात बनाय कें, कहै जैसी भावै हो।
समता टुक धीरज धरै, आनँदघन आवै हो॥

व्रजनाथ] (६३)

व्रजनाथ सें सुनाथ विण, हाथो हाथ विकायो।
विच कों कोउ जन कृपाल, सरन नजर नायो।
जननी कहूँ जनक कहूँ, सुत सुता कहायो।
भाई कहूँ भगिनी कहूँ, मित्र सत्रु भायो।
रमणी कहूँ रमण कहूँ, राउ रज-उतायो।
सेवकपति इंद चंद, कीट भृंग गायो।
कामी कहूँ नामी कहूँ, रोग भोग मायो।
निसिपतिधर देह धरि, विविध विध धरायो।
विधि निषेध नाटक धरि, भेख आठ छायो।
भाषा षट् वेद चार, सांग शुद्ध पढ़ायो।

बहुत गहरा। हबीब = मित्र। तबीब = वैद्य। कर० = कलेजा करके, साहस करके (विरह हटाए)। सुर० = रोने की ध्वनि। समेली = डूब गई। कर० = हाथरूपी लता। बीज = (विद्युत्) बिजली। झबूका = चमक; रोने में झिझक उठना। [६३] बिच कों = बीच का अर्थात् दूसरा (कोई)। जन = व्यक्ति। सरन = (शरण्य) आश्रय देनेवाला। नायो = (न आयो) नहीं आया। रज० = रज (रजोगुण) से उत्पन्न। मायो = समाया, गड़ा हुआ, लिप्त, लिपटा निसिपतिधर० = शंकररूप (ब्रह्म) होते हुए भी अनेक शरीर धारण करके। धरायो = पकड़ा गया, बद्ध हुआ। भेख० = आठ वेश (अवस्थाएँ) कौमार, पौगंड, कैशोर, यौवन, बाल, तरुण, वृद्ध, वर्षीयान्। भाषा० = संस्कृत, महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, अपभ्रंश।

तुमसैं गजराज पाय, गर्दभ चढ़ि धायो।
पायस ग्रह को बिसारि, भीख-नाज खायो।
लीला भुँह टुक नचाय, कहो जू दास आयो।
रोम रोम पुलकित हूँ, परम लाभ पायो।
हरि पतित के उधारन तुम, कहि सो पीवत मामी।
मोसूँ तुम कब उधारो, क्रूर कुटिल कामी।
और पतित कैइ उधारे, करनी बिनु करता।
एक काइँ नाउँ लेउँ, जूठे विरुद धरता।
करनी करि पार भए, बहोत निगम साखी।
शोभा दइ तुमकूँ नाथ, अपनी पत राखी।
निपट अज्ञानी पापकारी, दास है अपराधी।
जानूँ जो सुधार हो, अब नाथ लाज साधी।
और को उपासक हूँ, कैसे कोइ उधारूँ।
दुविधा यह राखो मत, या वरी विचारूँ।
गई सो तो गई नाथ, फेर नहिँ कीजे।
द्वारे रह्यो ढींग दास, अपनो करि लीजे।
दास कौं सुधारि लेहु, बहुत कहा कहिये।
आनँदघन परम रीत, नाउँ की निबहिये॥

सांग = शिक्षा कल्पादि षडंग सहित। पायस = खीर। ग्रह = (गृह) घर। लीला० = किंचित् भृकुटि-विलास से। कहि = कहलाकर। पीवत० = (मेरी बार) साफ इनकार करते हो (कि हम पतित के उद्धारक नहीं हैं)। कैइ = कई। करनी० = विना (कोई अच्छी) करनी किए। एक० = एक पतित का भी क्या नाम लूँ, अनेक पतित आपके उधारे हैं। जूठे० = तो क्या आप झूठा विरुद (पतितोद्धारक) धारण करनेवाले हैं। निगम = वेद। पत = प्रतिष्ठा। साधी = साधकर, रखकर, बचाकर। और० = यदि यह समझते हो कि मैं और किसी का उपासक हूँ, इसका उद्धार कैसे करूँ। कैसे कोई = क्यों कर। या० = इस पतित का फिर विचार करूँगा (यह दुविधा मत रखो)। ढींग =

परमदेव] (६४) [वसंत

अब जागो परमगुरु परमदेव प्यारे मेटहु हम तुम बिच भेद।
आली-लाज निगोरी गमारी जात, मुहि आन मनावत विविध भाँत।
अलि, पर निर्मूली कुलटी कान, मुहि तुहि मिलन बिच देत हान।
पति मतवारे और रंग, रमे ममता-गणिका के प्रसंग।
जब जड़ तो जड़-वास अंत, चित्त फूले आनँदघन भय वसंत॥

परम विरह] (६५) [गोडी

साखी—रास ससी तारा कला, जोसी जोइने जोस।
रमता सुमता कब मिले*, भाँगे विरहा-सोस॥
पिया बिनु कौन मिटावै रे, विरह-बिथा असराल।
निंद नीमाणी आँख! तेरे नाठी मुज दुःख देख।
दीपक सिर डोले खरो प्यारे, तन थिर, धरे न निमेष।
ससि-सरिण तारा जगी रे, चिनगी दामिनी तेग।
रयणी दयण मते दगो प्यारे, मयण सयण बिनु वेग।

सठ-मुसंड, कुमार्गी (मिलाइए—अपनायो तुलसी सो धींग धमधूसरो)। [६४] गमारी = गँवारी। कान = कानि, मर्यादा। हान = हानि। जब० = जो जड़ है उसका वास अंततोगत्वा जड़ में ही होता है। [६५] रास = राशि। जोसी० = हे ज्योतिषी अपना ज्योतिष देखो। भाँगे = नष्ट हो। सोस = (शोष) शोषण। असराल = घोर, भयकर। निंद० = हे आँख! मेरा दुख देखकर तुझमें से अभागी नींद भी नष्ट हो गई (अब कष्टाधिक्य से नींद तक नहीं आती)।दीपक० = मेरे कष्ट से दीप-शिखा अत्यंत काँप उठती है। तन० = शरीर निश्चेष्ट है, आँखों ने निमेष का भी त्याग कर दिया है। ससि० = शशि (मुख) की शरण में तारा (नेत्र की पुतली) जग रही है और नेत्र में विरह की चिनगारी बिजली की तलवार सी चमक रही है। रयणी = (रजनी) रात्रि। दयण० = दगा देने का विचार कर रही है। मयण = मदन। सयण = (स्वजन)

* आतम मित्ता किम मिले।

तन पिंजर झूरे पड्यो रे, उड़ि न सके जिउ हंस।
विरहानल जाला जली प्यारे, पंख-मूल निरबंस।
उसासा सैं बढ़ाउ को रे, बाद बदे निसि राँड।
न मने उसासा मनी प्यारे, हटकै न रयणी माँड।
इहि विधि छे जे घर-धणी रे, उससूँ रहे उदास।
हर विध आय पूरी करे प्यारे, आनँदघन-प्रभु आस॥

आत्मदर्शन] (६६) [आसावरी

साधु भाइ अपना रूप जब देखा।
करता कौन कौन फुनि करनी, कौन माँगेगो लेखा।
साधु-संगति अरु गुरु की कृपा तैं, मिट गइ कुल की रेखा।
आनँदघन प्रभु परचो पायो, उतर गयो दिल-भेखा॥

ब्रह्मैकता] (६७)

राम कहो रहमान कहो कोउ, कान कहो महादेव री।
पारसनाथ कहो कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेव री।
भाजन-भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री।
तैसैं खंड कल्पना रोपित, आप अखंड सरूप री।
निज पद रमे राम सो कहिये, रहिम करे रहेमान री।
करसे करम कान सो कहिये, महादेव निर्वाण री।
परसे रूप पारस सो कहिये, ब्रह्म चिन्हे सो ब्रह्म री।
इह विध साधो आप आनँदघन, चेतनमय निःकर्म री॥

पति। पिंजर = पंजर; पिंजडा। झूरे = कष्ट भोग रहा है। जाला = ज्वाला। निरबंस = अर्थात् नष्ट। उसासा० = उसास और रात्रि मैं बढ़ने की होड़ लगी है। न मने० = यह अभागी उसास नहीं मानती। हटकै० = मानती नहीं। माँड = झगड़ा ठानकर। छे० = स्वामी है। आय = आयु, जीवन। [६६] फुनि = पुनि। परचो = परिचय। उतर० = आत्मा का मायिक वेश हट गया। [६७] कान = कान्ह। भाजन = पात्र। मृत्तिका = मिट्टी। रोपित = आरोपित। रहिम = रह्म, दया। करसे० = कर्म को खींचे (मिटाए)। निर्वाण = मोक्ष

साधु-संगति] (६८)

साधु-संगति बिनु कैसैं पैयै, परम-महारस-धाम री।
कोटि उपाय करै जो बौरो, अनुभव-कथा-बिसराम री।
सीतल सफल संत-सुरपादप, सेवै सदा सुछाँइ री।
वंछित फले टले अनवंछित, भव-संताप बुजाइ री।
चतुर बिरंचि विरंजन चाहै, चरण-कमल-मकरंद री।
को हरि भरम बिहार दिखावे, शुद्ध निरंजन चंद री।
देव असुर इंद्र पद चाहूँ न, राज न काज समाज री।
संगति साधु निरंतर पावूँ, आनँदघन महराज री॥

प्रीति की रीति] (६९) [अलहिया, बिलावल

प्रीत की रीत नहीं हो प्रीतम।
मैं तो अपनो सरव सिंगारो, प्यारे कीन लई हो।
मैं बस पिय के,पिय सँग और के,या गति किन सिखई हो।
उपगारी जन जाय मनावो, जो कछु भई सो भई हो।
बिरहानल-जाला अति हि कठिन है, मो पैं सही न गई हो।
आनँदघन यूँ सघन धारा, तब ही दे पठई हो॥

आत्मानुभव-रस] (७०) [वसंत, धमार

साखी—आतम-अनुभव-रस-कथा-प्याला पिया न जाय।
मतवाला तो ढहि परें, निमता परे पचाय॥
छबीले लालन नरम कहे, आली गरम करत बात।
मा के आगैं मामु की कोई, बरनन करइ गिँवार।

(शिव)। परसे = ब्रह्मरूप का स्पर्श करे। [६८] बुजाइ = बुझ जाए। बिरंचि = ब्रह्म। विरंजन = विशेष रंजन। हरि० = भ्रम दूर करके। [६९] सरव = (सर्व) सब। कीन० = दूसरी (प्रेमिका) खरीद ली। उपगारी = उपकारी। जाला = ज्वाला। सघन = मोटी। [७०] ढहि० = गिर पड़ता है। निमता० = मत्त न होनेवाला पचा लेता है। मामु = मामा। गिँवार = गँवार।

अजहूँ कपट के कोथरी हो, कहा करे सरधा नार।
चउगति महेलन छा रिही हो, कैसैं आत भरतार।
खानो न पीनो इन बात मैं हो,हसत भानत कहा हाड।
ममता-खाट परे रमे हो, और निँदे दिन-रात।
लेनो न देनो इन कथा हो, भोर ही आवत जात।
कहे सरधा सुनि सामिनी हो, एतो न कीजै खेद।
हरै हरै प्रभु आवही हो, बढ़े आनँदघन मेद॥

(७१) [मारू

अनंत अरूपी अविगत सासतो हो, वासतो वस्तु विचार।
सहज विलासी हासी नवी करे हो, अविनाशी अविकार।
ज्ञानावरणी पंच प्रकार नो हो, दर्शन ना नव भेद।
वेदनी मोहनी दोय दोय जाणियेँ हो, आयुखुँ चार विछेद।
शुभ अशुभ दोय नाम वखाणियेँ हो, नीच ऊँच दोय गोत।
विघ्न-पंचक निवारि आपथी हो, पंचम-गति-पति होत।
युग पद भावि गुण भगवंत ना हो, एकत्रीश मन आण।
अवर अनंता परमागम थकी हो, अविरोधी गुण जाण।

कोथरी = थैली। चउगति = चारौं ओर। छा० = कपट की थैली छाई हुई है। आत = आए। हसत० = प्रसन्नता से हाड़ चिचोरने मैं क्या धरा है। निँदे = निद्रामग्न। भोर = सबेरे ही आते जाते हो। सामिनी = स्वामिनी। हरै० = धीरे धीरे। मेद बढ़े = सुख के दिन आएँगे। [७१]सासतो = शास्ता, शासक। वासतो = वास्तविक। नवी = नहीँ। ज्ञानावरण = मति, श्रुत, अवधि, मन-पर्याय और केवल। दर्शनावरण = चक्षु अचक्षु, अवधि, केवल, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि। वेदनीय दोय = सत्, असत्। मोहनीय दोय = दर्शन, चारित्र। आयुखुँ = आयुष्य। चार० = नरक, तिर्यंक, मनुष्य, देव। विघ्न = अंतराय। पंचक = दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य। आपथी = स्वयं। पंचम = मोक्ष। युग० = दोनौं चरणौं का ध्यान। एकत्रीश =

सुंदर सरूपी सुभग शिरोमणि हो, सुण मुज आतमराम।
तन्मय तल्लय तसु भक्तेँ करी हो, आनँदघन पद ठाम॥

विरहाकुलता] (७२) [केदारो

मेरे माजी मजीठी सुण एक बात, मीठड़े लालन बिन न रहूँ रलियात।
रंगीन चूनड़ी लड़ी चीड़ा, काथा सोपारी अरु पान का बीड़ा।
माँग सिंदूर सँदल करे पीड़ा, तन-कठा डाँको रे विरहा-कीड़ा।
जहाँ तहाँ ढुँढूँ ढोलन मीता, पण भोगी नर बिण सब युग रीता।
रयणी विहाणी दहाड़ा थीता, अजहूँ न आवे मोहि छेहा दीता।
तन रँग, फूँद मखमली*, खाट चुन चुन कलियाँ बीनूँ† घाट।
रंग रँगीली फूली पहिरूँगी नाट, आवे आनँदघन रहे घर बाट॥

(७३)

भोले लोगा हूँ रहूँ तुम भला हाँसा,
सलूणे साजन विण कैसा घर-वासा।

---

३१ (ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ६, वेदनीय २, मोहनीय २, आयुष्य ४, नाम २, गोत्र २, विघ्न ५ = ३१) (इसके विस्तार के लिए देखिए उमा स्वामी कृत 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र')। [७२] माजी = सास। मजीठी = लाल अर्थात् परिपक्व। रलियात = हिलीमिली, प्रसन्न। चीड़ा = लाल काँच की छोटी गुरिया। काथा = कत्था, खैर। सँदल = चंदन। तन० = शरीररूपी काष्ठ में। डाँको = आरपार छेद कर दिया है। ढोलन = प्रिय, पति। पण = पर, किंतु। रयणी = रजनी। विहाणी = बीती। दहाड़ा = दिन। थाती = स्थित हुआ, आया, हुआ। छेहा = दु:ख, घाव। फूँद = फुँदना। घाट = अनेक रंग-ढंग से। पहिरूँगी = वस्त्राभूषण से सजूँगी। नाट = (नाट्य) मटकती हुई। रहे० = घर में रहे। [७३] रहूँ = रोती हूँ। हाँसा = हँसते हो। सुँहाली =

* मखमली। † बिछुँ।

सेज सुँहाली चाँदणी रात,
फूलड़ी वाड़ी और सीतल बात।
सघली सहेली करे सुख साता,
मेरा तन ताता मूआ बिरहा माता।
फिर फिर जोऊँ धरणी आगासा,
तेरा छिपणा प्यारे लोक तमासा।
न वले तन तैं लोही माँसा,
साँईड़ा नी वे धरणी छोड़ी निरासा।
विरह कुभाव सों मुज कीया,
खबर न पावो तो धिग मेरा जीया।
दही वायदो जो बतावै मेरा कोई पीया, [विना:]
आवे आनँदघन करूँ घर दीया॥

कुबुद्धि] (७४) [वसंत

या कुवुद्धि कुमरी कौन जात, जहाँ रीजे चेतन ज्ञान-गात।
कुत्सित साख विशेष पाय, परम सुधारस वारि जाय।
जीया गुन जानो, और नाँहि, गले पड़ेगी पलक माँहि।
रेखा छेदे वाही ताम, पढियैं मीठी सुगुण धाम।
ते आगैं अधिकेरी ताहि, आनँदघन अधिकेरी चाहि।

विरह-वेदना] (७५)

लालन बिन मेरो कुन हवाल, समजे न घट की निठुर लाल।
वीर विवेक जू माँजी माइ, कहा पेट दाई आगैं छिपाइ।

सुहावनी। फूलड़ी० = फुलवाड़ी। सघली = सब। सुख० = पूर्ण सुख। मूआ = मरा (गाली)। न वले=नहीं मिलता। लोही=लोहू, रक्त। दही०=दही खिलाने की शर्त। वायदो = वादा। करूँ = घर मैं दीपक जलाऊँ। [७४] कुमरी = कुमारी। रीजे = रीझे। साख = साक्षी सहारा। परम० = परमतत्त्व। वारि० = व्यर्थ चला जाय। गुन = डोर। रेखा = चिह्न। ताम = विकार, दोष। पढ़िय० =

तुम भावे जो सो कीजैं वीर, सोइ आन मिलावो लालन धीर।
अमरे करे न जात आधि, मन-चंचलता मिटे समाधि।
जाय विवेक विचार कीन, आनँदघन कीने अधीन॥

प्रेम सदेश] (७६)

प्यारे प्रान-जीवन ए साँच जान, उत बरकत नाँहिन तिल समान।
उनसैं न माँगू दिन नाँहि एक, इत पकरि लाल छरि करि विवेक।
उत शठता माया मान डुंब, इत रुजुता मृदुता जानो कुटुंब।
उत आसा तृष्णा लोभ कोह, इत शांत दांत संतोष सोह।
उत कला कलंकी पाप व्याप, इत खेले आनँदघन भूप आप॥

नाम की लगन] (७७) [रामग्री

हमारी लय लागी प्रभु-नाम।
अंबखास अरु गोसलखाने, दर अदालत नहीँ काम।
पच पचीस पचास हजारी, लाख किरोरी दाम।
खाय खरचे दीये बिनु जात है, आनन करि करि श्याम।
इनके उनके शिव के न जिउ के, उरज रहे बिनु ठाम।
संत सयाने कोय बतावे, आनँदघन गुनधाम॥

गुरु और शिष्य] (७८)

जगत गुरु मेरा मैं जगत का चेरा, मिट गया वाद-विवाद का घेरा।
गुरु के घर मैं नवनिधि सारा, चेले के घर मैं निपट अँधारा।

पढ़ने में उत्तम। अधिकेरी = बहुत। [७५] माँजी = सास। माइ = माया। अमरे० = मेरे किए तो। आधि = मानसिक क्लेश। [७६] डुंब = दंभ। रुजुता = ऋजुता, सरलता। दांत = दमनशील तपस्वी। [७७] अंबखास = आम-खास (महल के भीतर जहाँ बादशाह बैठते हैं)। गोसलखाना = वह स्थान जहाँ विशेष अवसर पर बादशाह विशेष व्यक्ति से मिलते हैं। दर = में। किरोरी = करोड़। दाम = द्रव्य। इनके० = न इधर के न उधर के, न इह-लोक के न परलोक के। शिव = ईश्वर। उरज = उलझ रहे हैं। [७८] सारा =

गुरु के घर सब जरित जराया, चेले की मढिया मैं छप्पर छाया।
गुरु मोहि मारे शब्द की लाठी, चेले की मति अपराधनी काठी।
गुरु के घर का मरम न पाया, अकथ कहानी आनँदघन भाया॥

दास की विनय] (७६) [जयजयवती

ऐसी कैसी घरवसी, जिनस अनेसी री।
याही घर रहिसैं, जगवाही आपद है एसी री।
परम सरम देसी, घर मैंऊ पेसी री।
याही तैं मोहनी मैसी, जगत सगैसी री।
कोरी सी गरज नेसी, घरजन* चखेसी री।
आनँदघन सु नोसी बंदी, अरज कहेसी री॥

निज परिचय] (८०) [सारंग

चेतन सुद्धातम कूँ ध्यावो।
पर - परचे धाम - धूम सदाई, निज परचे सुख पावो।
निज घर मैं प्रभुता है तेरी, पर - सँग नीच कहावो।
प्रत्यक्त रीत लखी तुम ऐसी, गहिये आप सुहावो।
यावत तृष्णा मोह है तुमको, तावत मिथ्या भावो।
स्वसंवेद - ज्ञान लहि करिबो, छंडो भ्रमक - विभावो।
सुमता चेतन - पति कूँ इण विध, कहे निज घर मैं आवो।
आतम उच्छ सुधारस पीये, सुख आनँद पद पावो॥

पूर्ण। शब्द = वचन। काठी = काष्ठ, जिस पर असर ही नहीं होता। [७६] घरवसी = रखेली। जिनस = वस्तु। जगवाही = जगनेवाली, जगत् वाली। सरम० = लज्जा देगी, लज्जा का कारण रहेगी; मैंऊ = मैं भी। पेसी = प्रविष्ट। मैसी = महिषी। सगैसी = संबंधवाली। नेसी = खास पत्नी; धर्म-पत्नी। कौरी० = (कौली) सूकरी सी (यह घरवसी माया)। नेसी = दाँतों-वाली। घरजन० = घर के लोगों को खा जायगी। [८०] परचे = परिचय, बोध।

* गरजन।

ज्ञान-विचार] (८१)

चेतन ऐसा ज्ञान विचारो।
सोहं सोहं सोहं सोहं सोहं अणु नवी या सारो।
निश्चय स्वलक्षण अवलंबी, प्रज्ञा-छैनी निहारो।
इह छैनी मध्य पाती दुविधा, करे जड़ चेतन फारो।
तस छैनी कर ग्रहियें जो धन, सो तुम सोहं धारो।
सोहं जानि, दटो तुम मोह, ह्वैहै सम को वारो।
कुलटा कुटिल कुबुद्धी कुमता, छंडो ह्वै निज चारो।
सुख आनंद पदे तुम बेसी, स्व पर कूँ निस्तारो॥

पार्श्वनाथ-स्तुति] (८२) [सूरति टोड़ी

प्रभु तो सम अवर न कोइ खलक मैं।
हरि हर ब्रह्मा विगूते सो तो, मदन जीत्यो तैं पलक मैं।
ज्यौं जल जग मैं अगन बुजावत, वड़वानल सो पीयै पलक मैं।
आनँदघन प्रभु वामा रे नंदन, तेरी हाम न होत हलक मैं॥

अंतर्यामी] (८३) [मारू

नि:स्पृह देश सोहामणो, निर्भय नगर उदार हो,
बसे अंतरजामी।
निर्मल मन मंत्रा बडो, राजा वस्तु-विचार हो।

भ्रमक० = भ्रम के विषय। उच्छ = ढालकर, उढेलकर। [८१] अणु = छोटा, तुच्छ। नवी = नहीं। या = यह। सारो = उत्तम, श्रेष्ठ। छैनी = छेनी, पत्थर तोड़ने का औजार। इह० = कुबुद्धि की छेनी। पाती = पत्ती, लोहा। फारो = तोड़कर पृथक् करती है, पृथक् भासित कराती है। तस = प्रज्ञा, सुबुद्धि की। ग्रहियँ = ग्रहण करने से। दटो = दबाओ। वारो = समय। चारो = आचरण। बेसी = बैठकर। [८२] खलक = दुनिया। विगूते = घर दबाया। ज्यौं० = जैसे आग बुझानेवाले जल को वड़वानल पी जाता है वैसे आप मदन को पी जाते हैं। वामा = पार्श्वनाथ की माता का नाम। हाम = हाँ। हलक = कंठ। तेरी० = अर्थात् तू अनिर्वचनीय है। [८३] सोहामणो = सुहावना। शिवगामी =

केवल कमलागार हो, सुण सुण शिवगामी।
केवल कमलानाथ हो, सुण सुण निःकामी।
केवल कमलावास हो, सुण सुण शुभगामी।
आतमा तूँ चूकीश माँ, साहेबा तूँ चूकीश माँ।
राजिंदा तूँ चूकीश माँ, अवसर लही जी।
दृढ़ - संतोष कामामोद सा, साधु-संगत दृढ़पोल हो।
पोलियो विवेक सु जागतो, आगम पायक-तोल हो।
दृढ़ - विश्वास वितागरो, सुविनोदी व्यवहार हो।
मित्र वैराग विहड़े नहीँ, क्रीडा सुरति अपार हो।
भावना बार नदी बहे, समता नीर गँभीर हो।
ध्यान चहिबचो भर्यो रहै, समपन भाव समीर हो।
उचालो नगरी नहीँ, दुष्ट दुःकाल न योग हो।
ईति अनीति व्यापै नही, आनँदघन पद भोग हो॥

लगन] (८४) [ईमन

लागी लगन हमारी, जिनराज - सुजस सुन्यो मैं।
काहू के कहे कबहूँ नहिँ छूटे, लोक - लाज सब मारी।
जैसें अमली अमल करत समै,लाग रही ज्यूँ खुमारी।
जैसें योगी योग-ध्यान मैं, सुरत टरत नहिँ टारी।
तैसैं आनँदघन अनुहारी, प्रभु के हूँ बलिहारी॥

कल्याण का अनुगामी साधक। चूकीश माँ = चूक मत। राजिंदा = (राजेंद्र) हे राजा। लही = पाकर। कामामोद = काम के आनंद। पोल = दरवाजा। पोलियो = पाहरू। जागतो = सचेत। पायक = सेवक। तोल = तुल्य। वितागरो = विदूषक। बिहड़े = पृथक् नहीँ होता। सुरति = उपास्य मैँ लगनेवाली वृत्ति। बार = द्वार पर। चहिबचो = चहबच्चा, पानी का बडा टाँका। समपन = समत्व। उचालो = गड़बड़। ईति = कृषि को हानि पहुँचानेवाले उपद्रव।
[८४] अमली = नशाबाज। अमल० = नशा करते समय। खुमारी = नशा।

विरह-वेदना] (८५) [काफी

वारी हूँ बोलड़े मीठड़े ।
तुम बिन मुज नहि सरे रे सूरिजन,लागत और अनीठड़े।
मेरे मनवाँ जक न परत है, बिनु तेरे मुख दीठड़े।
प्रेम-पियाला पीवत पीवत, लालन सब दिन नीठड़े।
पूछूँ कौन कहाँ लूँ ढूँढूँ, किसकूँ भेजूँ चीटड़े।
आनँदघन प्रभु सेजड़ी पाऊँ तो, भागे आन बसीठड़े ॥

प्रियागम की उत्कंठा] (८६) [धमाल

सलूणे साहेब आवेंगे मेरे, आलीरी वीर विवेक कहो साँच।
मोसूँ साँच कहो मेरी सूँ, मुख पायो के नाहिँ।
कहानी कहा कहूँ उहाँ की, हिँडो रे चतुरगति माँहि।
भली भई इत आवही हो, पंचम गति की प्रीत।
सिद्ध-सिद्धंत रसपाक की हो, देखे अपूरब रीत।
वीर कहे एती कहूँ हो, आप आप तुम पास।
कहे समता परिवार सूँ हो, हम हैं अनुभव-दास।
सरधा सुमता चेतना हो, चेतन अनुभव आँहि।
सँगति फोरवे निज रूप की हो,लीने आनँदघन माँहि।

सुरत = ध्यान में की तल्लीनता। हूँ = मैं। [८५] बोलड़े० = मीठे बोल पर। सूरिजन = जैनमत के विद्वान् साधु। और = अन्य। अनीठड़े = अनिष्ट। जक = चैन। दीठड़े = देखे। नीटडे = कठिनाई से बीते। लूँ = लौं, तक। चीठड़े = चिट्ठी, पत्र। आन = अन्य। बसीठड़े = दूत। [८६] सलूणे = सलोने, सुंदर। मेरी० = मेरी शपथ। के = कि। हिँडो = फिरते हो। चतुरगति = चारों ओर; चार प्रकार की गति (नरक, तिर्यक्, मनुष्य, देव)। पंचम गति = मोक्ष। सिद्धंत = सिद्धांत। सँगति = साथ। फोरवे =

परम की प्रीति] (८७)

विवेकी वीरा सह्यो न परे, वरजो क्यूँ न आपके मित्त।
कहा निगोड़ी मोहनी हो, मोहत लाल गमार।
वाके पर मिथ्या सुता हो, रीज पड़े कहा यार।
क्रोध मान बेटा भए हो, देता चपेटा लोक।
लोभ जमाई माया सुता हो, एह वढ्यो परमोक।
गई तिथि कूँ कहा बंभणा हो, पूछे सुमता भाव।
घर को सुत तेरे मते हो, कहा लौं करत वढ़ाव।
तब संमत उद्यम कीयो हो, मेट्यो पूरव साज।
प्रीत परम सूँ जोरिकैं हो, दीनो आनँदघन राज॥

विवेकराज] (८८)

पूछियेँ आली खबर नहीँ, आए विवेक वधाय।
महानंद सुख की वरनी को, तुम आवत हम गात।
प्रान जीवन-आधार की हो, खेम-कुशल कहो वात।
अचल अबाधित देव कूँ हो, खेम-शरीर लखंत।
व्यवहारी घटवध कथा हो, निहचें सरम अनंत।
बंध मोख निहचैं नहीँ हो, बिवहारे लख दोय।
कुशल खेम अनादि ही हो, नित्य अबाधित होय।
सुन विवेक मुख तैं नई हो, बानी अमृत-समान।
सरधा समता दो मिली हो, ल्याई आनँदघन तान॥

पलट लेगी। [८७] मोहनी = मोहनीय, जैनागम के अनुसार प्रकृति नामक बंधन के हेतु का एक भेद। मिथ्या० = मिथ्यात्व, क्रोध, मान, लोभ, माया 'मोहनीय' के अंतर्गत कषाय वेदनीय के भेद हैं। गमार = गँवार। वाके० = इतने पर भी। मान = अभिमान। चपेटा = चाँटा, थप्पड़। लोक = लोग। परमोक = परिमोक्ष, स्वच्छंदता। गई० = गए मुहूर्त को। बंभणा = ब्राह्मण, ज्योतिषी। पूरब० = पूर्वकृत कर्म। [८८] बधाय = बधाई। बरनी = वर्णन।

माया] (८९) [सोरठ

अणजोवंता लाख, जोवे तो एकज नहीँ।
लाधी जोबन-साख, व्हाला विण एलेँ गई॥
म्होटी बहुयेँ मन-गमतूँ कीधूँ।
पेट मेँ पेशी मस्तक रेहेँसी, वेरी साही स्वामीजी ने दीधूँ।
खोले बेसी मीठूँ बोले, काँइ अनुभव अमृत-जल पीधूँ।
छानी छानी छरकडा करती, छरती आँखेँ मनडूँ वींधूँ।
लोकालोक-प्रकाशक छैयूँ, जणता कारज सीधूँ।
अँगो-अँगेँ रँगभर रमताँ, आनँदघन पद लीधूँ॥

खण्डिता] (९०) [मारू

वारो रे कोई परघर-रमवानो ढाल,
म्हानो वहू ने परघर-रमवानो ढाल।
परघर रमताँ थइ जूठा-बोली, देशे धणीजी ने आल।
अलवे चाला करती हीँडे, लोकड़ाँ कहे छे छिनाल।
उलंभड़ा जण जणना लावे, हेड़े उपासे शाल।

गात = शरीर । बध = बढ़ । सरम = शांति । तान = खीँचकर । [८९] अणजोवंता = न देखने योग्य । एकज = एक भी । लाधी = पाई । व्हाला = प्रिय। एलेँ = व्यर्थ । म्होटी = बड़ी । बहुयेँ = बहू (माया) ने । मन० = मन-भाई की । पेट० = पेट मेँ पैठी हुई, मन मेँ आई हुई । मस्तक० = चेहरे पर झलक जाती है । वेरी = वैरी ने । साही = साची । दीधूँ = दिया । खोले = गोद मेँ । वेसी = बैठकर । काँइ० = क्या अनुभव किया । पीधूँ = पिया । छानी० = छिपी छिपी । छरकडा० = छटकती फिरती है। छरती = झरती, सरस । मनडूँ० = मन को वेध दिया । छैयूँ = छाया हुआ । जणता = जानते ही । सीधूँ = सीधा, सरल । [९०] वारो = रोको । ढाल = प्रवृत्ति । न्हानी = छोटी बहू (बुद्धि) को । रमताँ = रमते रमते । थइ = हो गई । जूठा-बोली = असत्य-वादिनी । देशे = देगी । धणी = पति को । आल = टालमटोल । अलवे० = इधर उधर फालतू बातेँ करती फिरती है। उलंभडा = (उपालंभ) उलाहना ।

बाइ रे पड़ोसण जुउने लगारेक, फोकट खाशे गाल।
आनँदघन प्रभु रंगे रमताँ, गोरे गाल झबूके झाल।

विरह-वेदना] (९१) [कानड़ो

दरिसन प्रानजीवन मोहे दीजे।
बिन दरिसन मोहि कल न परतु है,तलफ तलफ तन छीजे।
कहा कहूँ कछु कहत न आवत, बिन सेजा क्यूँ जीजे।
सोहूँ खाइ सखी काहू मनावो, आप ही आप पतीजे।
देउर देरानी सासु जेठानी, यूँही सब मिल खीजे।
आनँदघन बिन प्रान न रहे छिन, कोड़ी जतन जो कीजे॥

सिरमौर प्रिय] (९२) [सोरठ

मुने महारा माधविया ने मलवानो कोड।
मुने महारा नाहलियाने मलवानो कोड।
हूँ राखूँ माँडी, कोइ मुने बीजो वलेगो झोड।
मोहनिया नाहलिया पाँखे म्हारे जग सवि ऊजड़ जोड़।
मीठा बोला मन-गमता नाहजी विण तन मन थाए चोड।
काँइ ढोलियो खाट पछेड़ी तलाई, भावे न रेसम खोड़।
अवर सबे महारे भला रे भलेरा, महारे आनँदघन सिरमोड़॥

जण० = जन जन से। हैड़े = हृदय में। उपासे = चुभोती है। शाल = (शल्य) काँटा। बाइ = स्त्री। पड़ोसण = पड़ोसिन। जुउने = देखो। लगारेक = सहायक। फोकट = व्यर्थ। खाशे० = गाली खाएगी। झबूके = चमकती है। झाल = तरंग। [९१] सोहूँ = शपथ। काहू = कोई। कोड़ी = (क्रोटि) करोड़। [९२] मुने० = मुझे अपने माधव से मिलने का चाव है। नाहलिया ने = पति को। राखूँ० = लिखकर कहती हूँ। बीजो = दूसरा। वलेगो = लगेगा। झोड़ = झगड़ा-बखेड़ा, आफत। पाँखे = पक्ष में अर्थात् समक्ष। सवि = सब। ऊजड़० = उजाड़-तुल्य है। मीठा० = मिठबोला (प्रिय)। मन० = मनभाया। थाए = होए। चोड = चोट या सत्यानास। काँइ = कोई भी

विरहिणी] (६३)

निराधार केम मूकी, श्याम मुने निराधार केम मूकी।
कोइ नहीं, हूँ कोणशूँ बोलूँ, सहु आलंबन टूकी।
प्राणनाथ तुमें दूर पधारया, मूकी नेह-निरासी।
जण जण ना नितप्रति गुण गातां, जनमारो किम जासी।
जेह नो पक्ष लहीने बोलूँ, ते मन माँ सुख आणे।
जेह नो पक्ष मूकीने बोलूँ, ते जनम लगँ चित ताणे।
बात तमारो मन माँ आवे, कोण आगल जइ बोलूँ।
ललित खलित खल जो ते देखूँ, आम माल धन खोलूँ।
घटँ घटँ छो अंतरजामी, मुज माँ काँ नवि देखूँ।
जे देखूँ ते नजर न आवे, गुणकर वस्तु विसेखूँ।
अवधें केह नी वाटडी जोऊँ, विण अवधें अति झूरूँ।
आनँदघन प्रभु वेगे पधारो, जिम मन आशा पूरूँ॥

जिन-चरण-प्रशस्ति] (६४) [अलह्यो बिलावल

ऐसे जिनचरने चित ल्याऊँ रे मना,
ऐसे अरिहंत के गुन गाऊँ रे मना।
उदर भरन के कारणे रे, गौआँ वन में जाय।
चार चरे, चिहुँ दिस फिरे, वाँकी सुरति बछरुआ माँहे रे।

वस्तु। ढोलियो = पलंग। पछेडी = पलंग के पीछे का परदा। तलाई = बिछावन। सोड़ = रजाई। अवर = और सब लोग। भला रे० = अच्छे भले हैं। सिरमोड़ = सिरमौर। [६३] केम० = क्यों छोड़ी। सहु = सब। टूकी = तुच्छ। नेह० = स्नेह से निराश। जनमारो = जीवन, जन्म। लहीने = लेकर। जनम० = जन्म भर। चित० = खिंचा रहता है। आगल = आगे। जइ = जाकर। खलित = (स्खलित) पतित। आम = इस प्रकार। माल-धन = संपत्ति अर्थात् रहस्य। छो = हो। मुज० = अपने में ही आप को क्यों न देखूँ। अवधें = अवधि पर। वाटडी० = मार्ग देखूँ। जिम = जिस कारण से। [६४] चार =

सात पाँच साहेलियाँ रे, हिलमिल पाणी जाय।
ताली दिये खड़खड़ हसे रे, वाँकी सुरति गगरुआ माँहे रे।
नटुआ नाचे चोक में रे, लोक करे लख सोर।
बाँस ग्रही बरतँ चढ़े, वाको चित न चले कहूँ ठोर रे।
जूआरी-मन में जूआ रे, कामी के मन काम।
आनँदघन प्रभु यूँ कहे, तुमे ल्यो भगवंत को नाम रे॥

बाल पति] (९५) [धन्याश्री

अरी मेरो नाहेरी अति बारो, मैं ले जोबन कित जाऊँ।
कुमति पिता बँभना अपराधी, नउवा है वजमारो।
भलो जानि के सगाई कीनी, कौन पाप उपजारो।
कहा कहियें इन घर के कुटुँव तें, जिन मैरो काम बिगारो॥

पुद्गल] (९६) [कल्याण

या पुद्गल का क्या बिसवासा, है सुपने का वासा रे।
चमतकार बिजली दे जैसा, पानी बिच्च पतासा।
या देही का गर्व न करनाँ, जँगल होयगा वासा।
जूठे तन धन जूठे जोबन, जूठे हैं घर वासा।
आनँदघन कहे सब ही जूठे, साँचा शिवपुर बासा॥*

चारा। ताली० = ताली बजाकर। खड़खड़ = खिलखिलाकर। गगरुआ = घट। लख = देखकर। ग्रही = पकड़कर। बरतँ = (वरत्रा) रस्सी। मिलाइए--दीठि वरत बाँधी अटन चढ़ि आवत न डरात-बिहारी। [९५] नाहेरी = पति (जीव)। बारो = छोटा। बँभना = ब्राह्मण, पुरोहित। बजमारो = व्रज का मारा (गाली)। उपजारो = उत्पन्न किया। [९६] पुद्गल = स्पर्श, स्वाद, गंध और वर्ण से युक्त (रूपवान्) जड़ पदार्थ, प्रकृति (रूपिणः पुद्गलाः)। दे = के।

*इससे मिलता जुलता, पर दस पंक्तियों मे, 'भूधर' का एक पद उनके 'जैनशतक' में मिलता है।

विश्व-विधान] (९७) [आसावरी

अवधू सो जोगी गुरु मेरा, इन पद का करे रे निबेरा।
तरुवर एक मूल बिन छाया, बिन फूले फल लागा।
शाखा पत्र नहीं कछु उनकूँ, अंमृत गगनें लागा।
तरुवर एक पंछी दोउ बैठे, एक गुरू एक चेला।
चेले ने चुग चुग चुग खाया, गुरू निरंतर खेला।
गगन-मँडल के अधबिच कूवा, उहाँ है अमी का बासा।
सगुरा होवे सो भर भर पीवे, नगुरा जावे प्यासा।
गगन-मँडल में गउआँ वियानी, धरती दूध जमाया।
माखन था जो विरला पाया, छासैं जगत भरमाया।
थड़ विनुँ पत्र पत्र विनुँ तुंबा, विन जीभ्या गुण गाया।
गावनवाले का रूप न रेखा, सुगुरू सोहि बताया।
आतम-अनुभव विन नहिं जाने, अंतर ज्योति जगावे।
घट-अंतर परखे सोहि मूरति, आनँदघन पद पावे॥*

माया-विचार] (९८)

अवधू ऐसो ज्ञान विचारी, वामें कोण पुरुष कोण नारी।
बम्मन के घर न्हाती धोती, जोगी के घर चेली।

विच्च = बीच। पतासा = बताशा। जूठे = झूठे। [९७] निबेरा = विचार। तरुवर एक = मूल प्रकृति। फल = विश्व। बिनु० = मिलाइए—मूले मूलाभावादमूलं मूलम्—सांख्यसूत्र। तरुवर० = मिलाइए—द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥—मुंडकोपनिषत्। गुरु = आत्मा, ब्रह्म। चेला = जीव। चुग = चारा। गगन = ब्रह्मांड। सगुरा = गुरुमुख। नगुरा = निगुरा। गउआँ = सात्त्विक वृत्तियाँ। धरती = पिंडांड। माखन = ब्रह्मतत्त्व। विरला = ज्ञानी। छासैं = छाछ से। थड़ = डंठल। तुंबा = फल (मस्तक)। विन० = अजपाजाप करता है।

* मिलाइए—कबीर-ग्रंथावली पृष्ठ १४३, पद १६५ और बीजक, शब्द २४।

कलमा पढ़ पढ़ भई रे तुरकड़ी, तो आपही आप अकेली।
ससरो हमारो बालो भोलो, सासू बालकुँवारी।
पियुजू हमारे प्होढ़े पारणिए, तो मैं हूँ झुलावनहारी।
नहीं हूँ परणी, नहीं हूँ कुँवारी, पुत्र जणावनहारी।
काली दाढ़ी को मैं कोइ नहीं छोड्यो, तो हजुए हूँ बालकुँवारी।
अढी द्वीप में खाट-खटूली, गगन उशीकुँ तलाई।
धरती को छेड़ो, आभ की पिछोडी, तोयन सोड भराई।
गगन-मँडल में गाय बिआणी, वसुधा दूध जमाई।
सउ रे सुनो भाइ वलोणूँ वलोवे, तो तत्त्व अमृत कोइ पाई।
नहीं जाउँ सासरिये ने नहीं जाउँ पीयरिये पियुजू की सेज बिछाई॥
आनँदघन कहे सुनो भाई साधु, तो ज्योत सें ज्योत मिलाई॥

अवसर का ज्ञान] (६६)

बेहेर बेहेर नहिँ आवे, अवसर बेहेर बेहेर नहिँ आवे।
ज्यूँ जाणे त्यूँ कर ले भलाई जनम जनम सुख पावे।
तन धन जोबन सब ही जूठो, प्राण पलक में जावे।
तन छूटे धन कौन काम को, कायकूँ कृपण कहावे।
जाके दिल में साँच बसत हे, ताकूँ जूठ न भावे।
आनँदघन प्रभु चलत पंथ में, समरि समरि गुण गावे॥*

[६८] बिचारी = बिचारना, बिचारो। ससरो = ससुर (ब्रह्म)। सासू = प्रकृति। पियु = पति, जीवात्मा। प्होढ़े० = पालने पर पड़े रहते हैँ। परणी = (परिणीता) विवाहिता। कुँवारी = क्योंकि शुद्ध चेतन से न तो विवाह ही करती है और न अज्ञानों को छोड़ती ही है। पुत्र = अहंकार। काली० = युवक; कामासक्त सज्ञान। हजुए = अब भी। अढी = ढाई। उशीकुँ = तकिया। तलाई = बिछावन। छेड़ो = धोती। आभ = अभ्र, बादल। तोयन = जल। सोड = रजाई। गगन० = ब्रह्मांड। गाय = वृत्ति। वसुधा = पिंडांड। सउ = सब। वलोणूँ = बिलोना, मथना। [६६] बेहेर० = बेर बेर। कायकूँ = किस

* मिलाइए—कबीर-ग्रंथावली पृष्ठ १६६, पद २३१ और बीजक, शब्द ४४।

प्रिय ऋषभदेव] (१००)

मनु प्यारा मनु प्यारा, रिखभदेव मनु प्यारा।
प्रथम तीर्थंकर प्रथम नरेसर, प्रथम यतिव्रत धारा।
नाभिराया मरुदेवी को नंदन, जुगला धर्म निवारा।
केवल लइ प्रभु मुगतें पोहोता, आवागमन निवारा।
आनँदघन प्रभु इतनी विनती, आ भव-पार उतारा॥

शिक्षा] (१०१) [काफी

ए जिन के पाय लाग रे, तुने कहियें केतो।
आठोइ जाम फिरे मदमातो, मोह निँदरियाशूँ जाग रे।
प्रभुजी प्रीतम बिन नहिं [illegible] प्रीतम, प्रभुजी नी पूजा घणी माग रे।
भव का फेरा वारी, करो जिन चंदा, आनँदघन पाय लाग रे॥

प्रभुभजन] (१०२) [केरबो

प्रभु भज ले, मेरा दिल राजी रे।
आठ पोहोर की साठज* घड़ियाँ, दो घड़ियाँ जिन साजी रे।
दान पुण्य कछु धर्म कर ले, मोह माया को त्याजी रे।
आनँदघन कहे समज समज ले, आखर खोवेगा बाजी रे॥

मानवती] (१०३) [आसावरी

हठीली आँख्याँ टेक न मेटे, फिर फिर देखण जाऊँ।
छयल छबीली प्रिय छवि निरखत तृपित न होई।

लिए। [१००] मनु = मुझे। रिखभदेव = ऋषभनाथ। नाभि० = मनुवंशी महाराज नाभि (ऋषभदेव के पिता)। मरुदेवी = ऋषभनाथ की माता। नदन = पुत्र। निबारा = स्वरूप बतलाया। केवल = कैवल्य। मुगतें = मुक्त; मोती। [१०१] ए = अरे। कहियें० = कितना कहूँ। वारी = निवारण करके। करो० = जिन को अपना चंद्र बनाओ, उनके दर्शन करो। [१०२] पोहोर = प्रहर। जिन = जिनदेव के लिए। [१०३] नगोरी = निगोड़ी। माँगर = (मकर)

* चोसठ।

हठ करि ढक* हटकूँ कभी, देख नगोरी रोई।
माँगर ज्यौं टमाके रही, पीय-सबी के धार।
लाज डाँग मन मैं नहीँ, काने पछेरा डार।
अटक तनक नहीँ काहू का, हटक न इक तिल कोर।
हाथी आप मने अरे, पावे न महावत-जोर।
सुन अनुभव प्रीतम बिना, प्राण जात इह ठाँहि।
है जन-आतुर-चातुरी, दूर आनँदघन नाँहि॥

प्रबोधोदय] (१०४)

अवधू वैराग बेटा जाया, वाने खोज कुटुंब सब खाया।
जेणे ममता माया खाई, सुख-दुःख दोनौं भाई।
काम क्रोध दोनौं कूँ खाई, खाई तृष्णा बाई।
दुर्मति दादी मत्सर दादा, मुख देखत ही मूआ।
मंगलरूपी बधाई वाँची, ए जब बेटा हूआ।
पुण्य पाप पाडोशी खाए, मान काम दोउ मामा।
मोह-नगर का राजा खाया, पीछैं ही प्रेम तैं गामा।
भाव नाम धर्‍यो बेटा को, महिमा वरण्यो न जाई।
आनँदघन प्रभु भाव प्रगट करो, घट घट रह्यो समाई॥†

मगर, मछली। टमाके० = चपलता से फिरती रही। सबी = छवि की धारा मैं। डाँग = पहाड़, बोझ। काने० = कानि (मर्यादा) को पीछे डालकर। अरे = अड़ जाय तो। जन० = सेवक मैं यदि आतुरता का चातुर्य है तो। [१०४] माया = माता। बाई = स्त्री या बहन। बाँची = बाँची गई, पढ़ी गई। गामा = (ग्राम)

* करिंडक।

† कुंदकुंदाचार्य के समयसार नाटक का भाषांतर करनेवाले बनारसीदास के 'बनारसी-विलास' नामक संग्रह में यह उनके नाम पर कुछ परिवर्तनों के साथ मिलता है। [मुख्य पाठभेद यों है—अवधू = मूलन। जेणे = जन्मत। सुख दुःख = मोह लोभ। दोनौं कूँ = दोइ काका। पुण्य = पापी। रूपी = चार। बधाई बाँची = बधाए

भ्रमरगीत] (१०५)

किन गुन भयो रे उदासी भ्रमरा ।
पँख तेरो कारो मुख तेरो पीरो, सब फूलन को वासी ।
सब कलियन को रस तुम लीनो, सो क्यूँ जाय निरासी ।
आनँदघन प्रभु तुमारे मिलन कूँ, जाय करवत ल्यूँ कासी ॥

ज्ञान-विभव] (१०६) [वसंत

तुम ज्ञान-बिभो फूली वसंत, मन-मधुकर ही सुख सों रसंत ।
दिन बड़े भए वैराग-भाव, मिथ्यामति-रजनी को घटाव ।
बहु फूली फैली सुरुचि-बेलि, ज्ञाताजन-समता-संग केलि ।
द्यानत बानी पिक मधुर रूप, सुर नर पशु आनँदघन-सरूप ॥*

गाँव । [१०५] करवत = करपत्र, आरा । मोक्ष के लिए काशी में लोग आरे से अपने को चिरवाया करते थे । [१०६] द्यानत = दयानत, सत्यनिष्ठा ।

बाजे । नाम = अगुन । काम = करम । मोह = मान । पीछे० = फैल परो सब जाया । भाव = सूधो । बेटा = बालक । महिमा० = रूप बरन कछु नाई । आनँद० = नाम धरते पाँछे खाए, कहत बनारसी भाई ।]

* यह 'द्यानत' के 'धर्म-विलास' में ज्यों का त्यों मिलता है । इसके अंत में 'द्यानत' छाप है भी ।

परिशिष्ट

घनआनंद (प्रेमी कवि)

सुजानहित-प्रबंध

[बड़ी प्रतियों के शेष छंद]

कवित्त

बहुत दिनान के अवधि-आसपास परे,
खरे अरबरनि भरे हैँ उठि जान कौ।
कहि कहि आवन छबीले* मनभावन को,
गहि गहि राखत ही दै दै सनमान कौ।
झूठी बतियानि की पत्यानि तैं उदास ह्वै कै,
अब न घिरत घनआनँद निदान कौ।
अधर लगे हैँ आनि करिकै पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदेसो लै सुजान कौ ॥५४॥

तेरी बाट हेरत हिराने औ पिराने पल,
थाके ये बिकल नैन ताहि नपि नपि रे।
हिये मैं उदेग आगि लागि रही रातिद्यौस,
तोहि कौं अराधौं जोग साधौं तपि तपि रे।
जान घनआनँद यौं दुसह दुहेली दसा-
बीच परि परि प्रान पिसे चपि चपि रे।
जीबे तैं भई उदास तऊ है मिलन-आस,
जीवहि जिवाऊँ नाम तेरो जपि जपि रे ॥२९३॥

---

[५४] आस० = आशा का पाश। खरे = अत्यंत। अरबरनि = हड़बड़ी।

* सँदेसो।

[४५५] के लिए देखिए पृष्ठ १७२, सं० ७८।
[४५६] के लिए देखिए पृष्ठ १५२, सं० ६।

सवैया

सुनि बेनु को मादक नाद महा उनमाद सवाद छक्यौ न थिरै।
निसिद्यौस घुमेरिनि भौंरि पर्यौ अभिलाष-महोदधि हेरि हिरै।
घनआनँद भीजत सोचनि सूखत थाकनि दौरि सम्हारि गिरै।
तन तौ यहि लाज घिर्यौ घर में बन मैं मनमोहन-संग फिरै ॥४५७॥

कवित्त

बिरह की बेदनि तें गिरे जात सबै गात,
एक एक बात सुधि आएँ दुख दूनो है।
बिलखत छाँड़ी द्यौस चारिक चिन्हारी करि,
बारि दियौ हिये मैं उदेग को अभूनो है।
ऐसें कैसें को लौं रूँधि राखियै पपीहा प्रान,
जीवन दुहेलो घनआनँद बिहूनो है।
बसत हितू समाज काहू सौं न मोहिं काज,
आली वा बिसासी बिनु लागै ब्रज सूनो है ॥४५८॥

सवैया

दूरि भजौ कितनौऊ तजौ हियरा तें हटै नहिं हाय हितैबो।
लेखो कहा हमसों है तुम्हैं हमहीं है घरी जुग कोटि बितैबो।
पूरि परेखैं रह्यौ चित चातक ह्वै घनआनँद कैसें रितैबो।
आँखि बिसासिनि आस गही न तजै इतने पर बाट चितैबो ॥४५९॥

निदान = अंत में। [२६३] दुहेली = दुखद। [४५७] घुमेरिन० = बेसुध रूपी भँवर में [४५८] गिरे = शिथिल हो रहे हैं। गात = गात्र, अंग। अभूनो = आग। दुहेलो = दुःखमय। बिहूनो = विहीन, रहित। [४५९]

देखैं तुम्हैं तब लेखैं लिखैं लिखिबो लखिबैं भईं आहि अहा गति।
एक सी आँसुनि बाढ़ि बहैं न रहैं भरना लौं गहैं सु महा गति।
यौं दिनराति मरैं घनआनँद देखौ विचारि कै नेकु हहा गति।
आँखि दुखारिन की यह पीर लहौ नहीं प्यारे कहौ तौ कहा गति॥४६०॥

हौ सु भले हौ कहा कहियै हम आपने पूरन भाग लहे हो।
आँखि निगोड़िन ही यह दोष अजू तुम तौ गुन-गाँस-गहे हो।
आनँद के घन हौ रस-मूरति प्यास बढ़ाय किते उमहे हो।
ल मन बैठि रहे तब त्यौं अब क्यौं उर-अंतर पैठि रहे हो॥४६१॥

रूप-सुदेस को राज कस्यौ करौ छत्र-गुमानहिं सील धरे जू।
सुंदर साँवरे हौ दिन-दूलह चोप चहूँ दिसि चौर ढरे जू।
नीके लसौ बरसौ घनआनँद चातक-लोचन प्यास मरे जू॥
राचत हैं तुम्हैं जाचत यौं ब्रजजीवन रावरी आस करे जू॥४६२॥

तुम्हैं देखि जियौं पियौं रूप-अमी घनआनँद प्यारे सदा सौं कहौं।
मिलि जाहुँ तुम्हैं रँग नीर लौं पाय पै हाथ मिलौ नहीं तासौं कहौं।
यह रावरीयै रस-रीति अजू अपढार ढरौ इत यासौं कहौं।
सुनि ऊतर देत न तौऽब कहौ कि तुम्हारे सवादहि कासौं कहौं॥४६३॥

प्रीति के दाँवहि बैर सो लैन कौं ताकि रही भरि कै अभिलाखनि।
चातक-चोपनि चाहति ही घनआनँद अंग सवादिली चाखनि।
लाज-लपेटी लखावति क्यौं करि सील मैं साह तें सौगुनी साखनि।
फागुन आवत ही उघरी इहि ओर वहै हियरा धरि राखनि॥४६४॥

कमला तप साधि अराधति है अभिलाप-महोदधि-मंजन कै।
हित संपति हेरि हिराय रही नित रीझ बसी मन-रंजन कै।

हितैवो = प्रेम करना। [४६०] अहा गति = आनंद की स्थिति। महा गति = तीव्र चाल। हहा गति = हाय दुर्दशा। कहा गति = क्या वश!। [४६१] गाँस = फंदा। [४६२] दिन-दूलह = प्रतिदिन दूल्हा, सदा दूल्हा। [४६३] अपढार = कठिनाई से ढलना। [४६४] सवादिली = स्वादिष्ट। साख = प्रतिष्ठा।

तिहि भूमि की ऊरध-भाग-दसा जसुदा-सुत के पद-कंजन कै।
घनआनँद-रूप निहारन कौं ब्रज की रज आँखिन अंजन कै ॥४६५॥

नंद के आनँदकंद उदै ब्रजचंद वधाएँ सबै मिलि जाहीं।
नैन हियै सुनि ही कै जियैं अभिलाष-चकोरनि तें अधिकाहीं।
दूध दही रु मही की नदी वही गोकुल गाँव-गस्यारिन माँहीं।
आनँद को घन चोपन सौं अति ही बरसै सरसै हित-छाँहीं ॥४६६॥

गोकुल-घाँ तें कुलाहल की धुनि आवति ज्यावति प्रान सुछंद है।
रानि जसोमति-कोख उदै भयौ पूरब भाग अपूरब चंद है।
चाह-समुद्र सुनें सरस्यौ घनआनँद नैनन कौं रसकंद है।
आजु लखौ सजनी रजनी-दुति दीसति औरई ओप अमंद है ॥४६७॥

कवित्त

गोकुल-गस्यारिन मैं महा गहमह माँची,
गोपी-गोप उमहे वधाएँ ब्रज-ईस को।
कान्ह कुलमंडन प्रगट भए भूरि-भाग
भादौं कृस्न-पाख आठैं उदै रजनीस को।
पूरी है कुलाहल की धुनि-धारा चहूँ ओर,
आनँद को घन घोरै बोलत असीस को।
कामना-सुतरु छायो फूल-संग फल पायौ,
औसर अनूप आयौ उर-बकसीस को ॥४६८॥

मुकुट मनोहर मैं लटक-अटक भरि,
घूमरे बिलोचन चलावै काम-फटकै।
केसरि की खौरि रौरि पारत निहारैं मन,
दौरि दौरि अंग-संग रंगनि त्यौं भटकै।

---

[४६५] पद० = चरण कमलों से। [४६६] गस्यारि = छोटी गली। [४६७] घाँ = ओर। सुछंद = स्वच्छंद। पूरब० = पूर्वजन्म के भाग्य से। [४६८] गहमह = चहल-पहल। ब्रज० = नंद महर के यहाँ। उर० = हृदय को दान कर देने का।

कहा कहौं हेली मनमोहन अनूप रूप,
इते मान बाँसुरी हटावै लाज-हटकै।
देखैं घनआनँद रसीली मृदु मूरति कौं,
ऐसी कौन बावरी सयान लैन पटकै ॥४६९॥

सवैया

झुकि रूप-तरंगनि जाल परे गुनमाल बिसालनि लै फँदई।
उफनाय उठ्यौ रससिंधु हियौ मुखचंद लखैं अभिलाप छई।
घनआनँद औसर के बस ह्वै मति औ गति केतियौ सँग गई।
जित ही जित मोहन गौन कियौ अँखियाँ तित ही तित क्यौं न भई॥४७०॥

तीर ही जाके महाछवि-भीर सौं सोहै गुपाल को गोकुल गाँव री।
बासिन के दृग-तारन-पुंज की मूरति मंजु लसै तिहि ठाँव री।
ऐसैं रसामृत पूरित ह्वै भरिबोई करै अभिलाषनि भाँवरी।
है अमुना जमुना घनआनँद साँवरे-संगम रंगनि साँवरी ॥४७१॥

कवित्त

मन के मनोरथ-महोदधि-तरंगनि मैं,
अति ही तरल गति प्रबल प्रचंड है।
एक एक बीचि-बीच सायर असेष जहाँ,
सूखौ राखि बोरैं तीर दीरघ अखंड है।
पार परि कोऊ न सक्यौ है बिथक्यौ है ओज,
खोजैं सिद्ध चारन मुनीस महिमंड है।
सोई घनआनँद सुजान-रूप को पपीहा,※
सोभासीवँ जाके सीस मंडित सिखंड है ॥४७२॥

---

[४६९] लाज० = लज्जा की हिचक। पटकै = परेशान हो। [४७१] अमुना = इस प्रकार। [४७२] बीचि = लहर। सायर = सागर। महिमंड = महिमावान्।

※ सुरूप को पपीहा करि।

सवैया

यहै मन है हरि नाम तिहारो कहूँ कबहूँ सुधि भूलि न लीजै।
जु यौं नित नाथ बिसासनि मारत हाय तऊ तुमहीं लगि जीजै।
सुबास भरी घनआनँद है दुरि देखनि त्यौं खिसियौ हँसि दीजै।
जरी रसना सौं कहा कहियै बकि सोई उठै कितको कस कीजै ॥४७३॥

[४७४] के लिए देखिए पृष्ठ ४, संख्या ८।

नीकी नई गुन-रूप-जई अनुरागमई अति ओप बढ़ी है।
तोहि तकी फँदवारि फँदी फिरि चोपनि मोहन मंत्र पढ़ी है।
रीझनि भीजे सुधा-रत स्याम सदा घनआनँद पैंड़ अढ़ी है।
प्रीतम के पहुँचा पहुँची यह संपति राखियै हाथ चढ़ी है ॥४७५॥

प्रेम के पाले* परे जिय जाको धरै कल क्यौं अकुलानिमई है।
दीसत देखौ दसौ दिसि प्रीतम कौन अनूठियै ठान ठई है।
यौं घनआनँद छाय रह्यौ तव लाज सम्हारै सु बीति गई है।
जाहुँ कहाँ अहो नाहीं नहीं तुम ही सौं जहाँ तहाँ भेंट भई है ॥४७६॥

तीज के रंगनि संग अलीन लै झूलत फूल सौं प्यारे बनायनि।
सामुही ह्वै सधि बैठति द्वै इक झूलति आप गँसावति पायनि।
साँवरे छैल तहाँ रचि ताकहीं यौं मिहँदी लौं लग्यौ घुरि चायनि।
गीतनि भास भिदे घनआनँद रीझत भीजत भावते भायनि ॥४७७॥

[४७८--७९] के लिए देखिए पृष्ठ ४, संख्या ९-१०।

[४८०] के लिए देखिए पृष्ठ १५३, संख्या १०।

मोहन-मूरति की पहचानि सु आँखिन बीच निकेत ही राखौ।
बंसी बजावनि रीझि रिँगावनि पाननि ताननि खेत ही राखौ।

सिखंड = मोरपंख। [४७३] खिसियौ = रोष से हिचकती हुई भी। कस० = खींची जाय। [४७५] अढ़ी = लगी। [४७७] बनायनि = भली भाँति। घुरि =

* पानै।

एहो सुजान सुनौ घनआनँद चातक त्यौं अब हेत ही राखौ।
जाचै तुम्हैं अरु राचै कहूँ न जहाँ जब जैसैं सचेत ही राखौ ॥४८१॥

[४८२] के लिए देखिए पृष्ठ १५२, संख्या ८।

सूझ परै सुनि बूझि कछू कि चल्यौ कित कौं अरु आयौ कहाँ तैं।
सँग सदा तितकी सुधि हू न, रह्यौ अति भूलि महा भ्रम-नातैं।
ऐसे सचेत समीप अचेत अचंभे भरयौ लखि* ऊखिल-भाँतैं।
यौं घनआनँद-ओर उनै उघरै किनि रे मन! तू सब घाँ तैं ॥४८३॥

कबित्त

मोरे प्रान सोचन ही सूखत सदा हैं घन-
आनँद इते पै साखि सुनी प्रानपति है।
अंतर मैं रहौ पै न अंतर उघारत हौ,
देखन कौं आँखिन मैं नींद की सँपति है।
मिलन दुहेला सपने हू इहि भाँति भयौ,
भली लगै भावते तौ तुम जानौ अति है।
कहौ हाय बूझति हौं सूझति मलोलनि सौं,
मेरी कहा गति जो तिहारी यह गति है ॥४८४॥

सवैया

भरि-जोबन-रंग अनंग-उमंगनि अंगहि अग समोय रहे।
उर फागुन-दाँव को चाव रच्यौ सु मच्यौ खुलि खेलि जु गोय रहे।
घनआनँद चोपहि चोपनि लै उर चौचँद नेकु न सोय रहे।
दृग रावरे छैल खिलार महा कहा नीके गुलाल मैं भोय रहे ॥४८५॥

गोरे कपोलनि लाली गुलाल की भोय रही कछु पौं छैंऊ पाछैं।
दर्पन देखि हियैं हुलसै सुलसै छबि छ्वै मुसक्यौंहीं कटाछैं।

घुलकर। भास = ध्वनि। [४८१] रिंगावनि = चलाना। [४८३] ऊखिल = अपरिचित। घाँ = ओर। [४८४] साख० = मर्यादा, प्रतिष्ठा [४८५] चौंचद =

* भभै भरयौ लेखिय।

ओठ पै मानिक-ओप अनूठियै चाहि चकी जु हुती तन-काछैं।
चोपनि चातक ह्वै घनआनँद प्राननि तोखति पोखति आछैं ॥४८६॥

कन-स्वेद भयौ सु विराजत यौं *उडुपौ नभ†-तारनि संग भयौ।
मद लाली चढ़ै अति ओप बढ़ै मुख चंद तैं प्रात-पतंग भयौ।
भयौ आदिहि कंज कुमोदनि के, रति-अंत चहैं भ्रम-भंग भयौ।
घनआनँद ओज मनोज-उमगनि अंगनि अद्भुत रंग भयौ ॥४८७॥

लाल के तोही मैं प्रान बसैं तुहूँ जानति प्रीति की रीति सयानी।
ज्यौं ब्रजजीवन जीवत तो बिन त्यौं कहा मीन मरै बिन पानी।
तो हित-प्यास भस्यौ घनआनँद आस पपीहन तैं अधिकानी।
राधे हठीली कहै किनि हे, कब तैं यह रूठनि है मनमानी ॥४८८॥

मुख देखत ही पलकौ न लगै अँखियानि मैं जागनि-जोति खिलै।
हिय की गति हाय कहा कहियै तिन त्यौं तब ही कबहूँ को हिलै।
घनआनँद रोमहि रोम भिजै रसरंग-समोवनि अंग झिलै।
उनसौं मिलि जौ बिछुरै सजनी सु न जानति हौं किहि भाँति मिलै॥४८९॥

परदेस बसे बस ह्वै विधि के जिय जीवत यौं कछु नाहिं नई।
जु परै सु सहैं कित कासौं कहैं जग दीसि पस्यौ सब सुंनिमई।
घनआनँद जान मिले न कहूँ इहि हेत सम्हार अचेत भई।
यह तौ सुधि भूलि गयौ बिछुरैं कबहूँ सुधि भूलि न मीत लई ॥४९०॥

नित हौ चित हौ हित हौ कित हौ इत हौ इतने पै उदगे दहैं।
बरसौ सरसौ दरसौ न कहूँ घनआनँद कासौं बिथाहि कहैं।
बसि एकहि वास बिसास करौ बस नाहिं बिसासी बनी सु सहैं।
हम संग किधौं तुम न्यारे रहौ, तुम संग बसौ हम न्यारी रहैं ॥४९१॥

बदनामी। भोय० = डूब रहे। [४८६] पौंछैं ऊ० = पौंछने पर भी। काछैं = पास। [४८७] उडुप = चन्द्र। पतंग = सूर्य। [४८९] तिन० = उनकी ओर होकर तृण की भाँति तभी से न जाने कब का हिल रहा है। झिलै = कष्ट सह

* उदयौ। † नव।

देखि बिचारि बिचारै सँचारहि कौनहीँ कौन सवाद पग्यौ तू।
राचि पच्यौ बहु प्रीति सुरीतिनि लाग लच्यौ अलगाय लग्यौ तू।
यौँ भ्रम भूलि पर्‌यौ स्रम कै,अब लौँ सुधि ना बिनबोध ठग्यौ तू।
चोपनि चातक ह्वै चित रे घनआनँद लौँ जड़ क्यौँ न जग्यौ तू॥४६२॥

करि बैर बिसासिनि बाँसुरिया सब ही कुल मैंड़ की ऐंड़ दली।
मँडराति रहै धुनि* कानन मैँ मन प्रान पगे रहैँ रंग रली।
घनआनँद क्यौँ बचियै भटभेर अचानक होत गस्यारैँ गली।
कित जाहिँ कहा करैँ कैसैँ रहैँ मन मोहन† गोहन लागि छली॥४६३॥

रूप-निकाई अनूप कहा कहौँ अंगनि जोति सुरंगनि जागति।
है घनआनँद जीवनमूल पपीहा कियें पिय लोचन पागति।
और सिँगारनि की सब ही रहौ याहि बिचारत ही मति रागति।
पायनि तेरे रची मिहँदी लखि सौतिन के तरवानि तें लागति॥४६४॥

ब्रज की छबि हेरि हर्‌यौ हिय होत, खिली मिलि जूथनि जूथ जूही।
घन घोरि घुरे‡ चहुँ ओरनि तैँ बरसैँ परसैँ सरसैँ सु फुही।
तिहि कुंजन मैँ रसपुंज-भरे बिहरैँ हरि-राधिका चोप उही।
घनआनँद नैन-पपीहन कौँ नित ही रसरासि रहौ समुही॥४६५॥

कवित्त

भले हौ रसीले अरसीले सुनि हूजियै न,
गुननि तिहारे उरभ्यौ है मन गाय गाय।
काननि सुनी है. तैसैँ आँखिन हू देखैँ जातैँ
दीखत नहीँ औ सब ठावँ रहे छाय छाय।

रहा है। [४६२] लच्यौ = नमित। [४६३] भटभेर = मुठभेड़। गस्यारैँ = गरियारा, छोटी गली मैँ। [४६४] तरवानि० = पैरौँ से आग लगती है, नख से सिख तक भस्म होने लगती है"। [४६५] फुही = सीकर, हलकी वृष्टि। उही = वही।

* पुनि। † ब्रजमोहन। ‡ जुरे।

ऐसें घनआनँद अचंभे* सौं भरे हौ भारी,
खोए से रहत जित तित तुम्हैं पाय पाय।
एकवास बसे सदा बालम बिसासी, पै न
भई क्यौं चिन्हारि कहूँ हमैं तुम्हैं हाय हाय ॥४९६॥

सवैया

सुनि कै गुन रावरे बावरे लौं उरझानि सुरूप की बानि परी।
दरसे बरसे सरसे परसे घनआनँद रीझ बिकानि परी।
प्रगट्यौ न कहूँ अब यौं उघरे गति जानि परी जु न जानि परी।
रसदानि सुनौ इन प्रान-पपीहनि बाँट पुकारनि आनि परी ॥४९७॥

घातनि ठानत बातनि छानत† चायनि दायनि जाचि रहे हौ।
यौं घनआनँद चाँचरि देत न हाथ लगौ छल बाचि रहे हौ।
छाय तऊ ‡ उघरेई परौ हित-काचे तऊ पन पाचि रहे हौ।
फाग सो खेलत डोलत लाल जहाँ तहाँ रंगनि राचि रहे हौ ॥४९८॥

ठगई धरि कै लगई जु करी न गई अजहूँ करौ घातैं पढ़े।
पचि कै रचि कै सचि ल्यावत हौ ब्रजमोहन ऐसियै+ बातैं पढ़े।
बिन लेखे मिलौ न बड़े लिखधार× कहौ हित मूरति कातैं पढ़े।
घनआनँद छावत आवत हौ दिन पारि इतै उत रातैं पढ़े ॥४९९॥

रंग भर्‌यौ उन सूखति हौं उन सौंधो रच्यौ भई हौं नकबानी।
नैन गुलाल भरे कि जगे निसि मो दृग आवत है भरि पानी।

समुही = समुख। [४९६] बालम = प्रिय। [४९७] बाँट = हिस्से में। [४९८] छानत = बाँधते हो। [४९९] दिन० = बुरे दिन डालकर। रातैं = रात्रि; अनुरक्त होना। [५००] सौंधो = सुगंध। नकबानी = नाक में दम होना।

* अमेद। † बानत। ‡ ढाँपे तऊ। + ओखियै। × खिलदार।

आँच तचे हम सीरी परैं* पिय मो हिय खोंप गुली† सुखदानी।
आनँद के घन होरी नई यह माची उतै इत राचनि ठानी ॥५००॥

आए हौ फाग मनाय कै लाल कियौ जित नेह नयौ थपनौ जू।
आछे निचोय भिजै पठए फगुआ मन-मानतो लै अपनौ जू।
भूलि परैं सुधि मेरियौ लीनी किधौं कछू देखति हौं सपनौ जू।
भाग खुले उनए घनआनँद प्रान-पपीहनि तैं तपनौ जू ॥५०१॥

कबित्त

अपबस होहु तौ हमारियै बसाय प्यारे,
सुबस बसौ बिसासी तहीं बस और के।
कहा जानौं कितहूँ कसक है कि नाहीं तुम्हैं,
भौंर से भुलाने‡ देखियत ठौर ठौर के।
साँचिली बिचारी भोरी हेरत हिराय गई,
चतुर सनेही दुरि अंतर की भौर+ के।
क्यौं हौ घनआनंद पपीहनि की गति कहा,
मन भए पंगु ये तिहारी एक दौर के ॥५०२॥

[५०३-५०४] के लिए देखिए पृष्ठ १७१, संख्या ७६-७७।
[५०५] के लिए देखिए पृष्ठ १७०, संख्या ७४।

प्रेमपत्रिका

चांद्रायण

कान्ह तेरी पाती तुमहीं सुनाइहौं,
हाय हाय फिरि कहूँ जौ तुम्हैं पाइहौं।

खोंप = छिद्र। गुली = डाली। [५०२] साँचिली = सच्ची।

* पैंचत चीन्हब सीच परै। † पुली। ‡ लुभाय। + रौर।

कटुक प्रीति को स्वाद मिठास-भर्यौ महा,
छ्वै रसना करि किलक कहौ वरनै कहा ॥ १ ॥

जानै विरही प्रान और कैसैं बनै,
तीखी तरल सुबात कहत रसना छुनै।
अब न सहैं ते और, लहै पर-पीर को,
धनि धनि है ब्रजनाथ तिहारे धीर को ॥ २ ॥

सुखी रहौ सुखदैन, हमारी हम भरैं,
बाँको वार न होय असीस सदा करैं।
अकथ कथा की पाती छाती है भई,
नेकु लागि पिय बाँचौं दूरि भए हई ॥ ३ ॥

बिसरि गई बिसवासी सरक सनेह की,
मुरली-बेधनि बेधी गति मन देह की।
धरी दूरि पहचानि निकट की को कहै,
सुधि भूले सब भाँति परेखनि ज्यौ दहै ॥ ४ ॥

वृंदावन घन कुँजें देखति हैं जबै,
पात फूल फल डार विराजत हौ सबै।
ढिग ह्वै यौं दुख देत दूरि तें दूरि से,
हाथ न लागत हाय रहे हौ पूरि से ॥ ५ ॥

बिवस बिसूरि बिसूरि राति दिन बीतई,
सब विधि हारी हाय बिरह-बल जीतई।
चेटक चितहि लगाय निचीते हौ भले,
जुवती-जन-मन-गंजन घातनि ही पले ॥ ६ ॥

परमेसुर कौं करौ निवारि अनीति कौं,
प्रेम परम परवीन एकरस रीति कौं।

---

[१] किलक = पुकार। [२] छुनै = छिद जाती है। [४] सरक = मच-

जानि बूझि आनाकनी नहिँ दीजियै,
दुखिया जिय को जतन कछू तौ कीजियै ॥ ७ ॥
या बिधि ब्रज बसि रहे बिसासी साँवरे,
तुम ही देहु बताय सबै बिधि भाँवरे।
कँवलनैन-वह चितवनि सालति है दई,
बेध्यौ हियौ दुसार सुसार कपटमई ॥ ८ ॥

अब पिय निपट न करियै हरियै कदन कौँ,
पाय डारि कित मूँड़ चढ़ावत मदन कौँ।
सुंदर रसिक सजीवन तुम ही तैं जियैँ,
तुम बिन कहूँ न रहैँ कहैं सौँ हैँ कियैँ ॥ ९ ॥
आँखिन कहा दिखावैँ मन बैठे रहौ,
निकसि गए तजि नेह प्रान पैठे रहौ।
धरी धरोहरि पिय की प्रान सुदाम हैँ,
जब चाहौ तब लेहु जगावति जाम हैँ ॥ १० ॥

लीला

सदा सुखी सुख देत रहौ दुख पावत नाहीँ,
कीरति-जोन्ह सु जगमगै जसुदासुत माहीँ।
मंगलि मूरति सबनि कौँ सुख लै बिसतारौ,
हम निपटै रावरी हैँ आसरौ तिहारौ ॥ ११ ॥

तुम्हरी कुसर-कुसर सदा ब्रज मैँ नित है हो,
और भाँति कहि को सकै प्रीतम सौँ लै हो।
नित सुहाग-पागी रहैँ ब्रजनाथ गुसाईँ,
आनँदघन उनए रहौ निसिवासर छाँईँ ॥ १२ ॥

पान। [६] निचीते = निश्चिंत। [८] भाँवरे = चक्कर काटनेवाले, भौंरे। दुसार = दुःशल्य, अधिक कष्ट देनेवाला काँटा। सुसार = प्रवेश करके। [९] कदन = कष्ट, पीड़ा। पाय० = पैरों पर गिराकर। [१०] सुदाम = द्रव्य।

चांद्रायण

तुम चाहौ सु करौं जु सही कछु बनि कहैं,
आनँदघन रसरासि चातकी ह्वै रहैं।
या पाती को देखि पथिक प्रानै लहै,
आसा-निगड़-समेत चलन उनयो रहै। ...

प्रकीर्णक

कवित्त

मरम भिदै न जौ लौं मरम न पावै तौ लौं,
मरमहिं भेदै कैसें सुरनि घँघोइबो।
राग ही तें राग के सरूप सों चिन्हारि होति,
नैनहीन काननि असूझ टकटोइबो।
अकथ कथा है क्यौंऽवगाहियै अथाहै तान,
व्यौरिबो बृथा है वादि औसरहि खोइबो।
प्रेम-आगि जागें लागें झर घनआनँद को,
रोइबो न आवै तौ पै गाइबो हू रोइबो ॥ ८० ॥

गोपिन की ससक कसक जौ न आई मन,
रसिक कहाएँ कहा रस कछू औरई।
समझि समझि बातें छोलिबो न काम आवै,
छावै घनआनँद सु जौ लौं नेह-बौरई।

---

[१२] कुसर = कुशल। [१३] निगड़ = वेड़ी।

[८०] मरम = मर्मस्थल। मरम = तत्त्व। घँघोइबो = मैला करना, बिगाड़ना। राग = अनुराग। राग = संगीत का राग। नैन = मानस नेत्र। क्यौंऽवगाहियै = कैसे थहाया जाय। व्यौरिबो = विवेचन करना। [८१]

कान्ह ब्रजमोहन सौँ जौ पन-परनि परी,
ताहि अवगाहत ही थकै मति दौरई।
मिलि बिछुरे को दुख बिछुरि मिले को सुख,
तिनहीँ मैँ ब्यापौ ठौर ठौर भरि रौरई ॥ ८१ ॥

नाम को न नेम बाँध्यौ प्रेम सौँ सुलेखो कहा,
धायौ नहीँ धाम लीला-माधुरी बिभूति कौँ।
जनम जनम तैँ अपावन असाधु महा,
अपरस पूति सौँ न छाँड़ै अजौँ छूति कौँ।
भूलि मोह-मेहै राच्यौ भ्रम-धूम-धूँधरि सौँ,
केवल कलंकी-रूप जननी-प्रसूति कौँ।
करुना-निधान कान्ह आपने गुनैँ सम्हारौ,
मेरी गति कौन जौ बिचारौ करतूति कौँ ॥ ८२ ॥

ऐसी कृपा कीजियै कृपानिधि निवारि भ्रम,
भरिबो करौँ सदाई ब्रज-बन-भाँवरी।
ठौर ठौर सोभा छकि जमुना के तीर थकि,
चकि जकि चाहि रहौँ वहै छबि साँवरी।
आनँद के घन हौ पपीहा प्रान पोखियै जू,
हित-छाँह छाय मैटौ सोच घाम-ताँवरी।
छोरि सब ओर तैँ सुदेस लै बसैयै हाहा,
मोहन रसीले यौँ गसैयै मोह-दाँवरी ॥ ८३ ॥

सवैया

अब सो करियै ब्रजमोहन जू जु करौँ बिनती कर जोरि यही।
सब ठौर तैँ दौर थकै मन की कि तिहारियै पौरि पै देहुँ ढही।

ससक = सिसक। बौरई = पागलपन। रौरई = कोलाहल। [८३] ताँवरी = मूर्छा। यौँ गसैयै० = अपने प्रेमबंधन मैँ ऐसा बाँधिए। [८४] देहुँ ढही =

घनआनँद दीन पपीहनि के तुम ही घन जीवन-मूल सही।
जिय की गति जानत हौ सुखदैन कहौ जू कहा कहिबे की रही ॥८४॥

मोहन-मूरति की पहचानि सु आँखिन बीच निकेत ही राखौ।
बंसी-बजावनि रीझि रिंगावनि प्राननि ताननि खेत ही राखौ।
पहो सुजान तुम्हैं घनआनँद चातक-त्यौं अब हेत ही राखौ।
जाचै तुम्हैं अरु राचै कहूँ न जहाँ जब जैसें सचेत ही राखौ ॥८५॥

कवित्त

करुना की रासि सदा सोहै मृदु हासि,
घनआनँद की निधि बिधि मूरति सुठान की।
रूप-चतुराई सुभसील औ गुराई ऐसी,
भई है न ह्वै है कहियै धौं को समान की।
अति ही उदारता की सीवाँ, उर आनि जानि,
गही एक टेक रावरेई गुनगान की।
काहू सौं न कछू कहौं अपनी ही सोचि रहौं,
मोहिं आस तैयै क्यौं लड़ैती वृषभान की ॥८६॥

अगम अगाध अदभुत औरै ओर अति,
मति-गति थकित, न होत क्यौं हू आवरे।
सिव बिधि सक्र सनकादिक सहसमुख,
बदत बदत बेदौ भेद भए बावरे।
आँनँद के अंबुद रसाल महा रोचक हैं,
सब ही के हिये मैं बढ़ाय देत चाव रे।
सुनत गुनत अभिलाखत उरझि बानी,
गावत गनत न बनत गुन रावरे ॥८७॥

पड़ा रहूँ। [८५] रिंगावनि = (अचेत प्राणों को) सचेत करनेवाली। [८७] न होत० = शिव आदि (मति के थकित होने पर भी) उसके वर्णन से विमुख नहीं होते। आवरे = मलिन, यहाँ विमुख। सक्र = इंद्र। सहसमुख = शेष

सुनि सुनि रावरे गुननि बावरे हैं कान,
लोचन उतावरे ह्वै लोचैं हाय कैसे हौ।
साधनि मरत प्रान आसा लागि जीवत हैं,
वारनैं तिहारे कहा रंक, प्यारे जैसे हौ।
दीजियै दिखाई ब्रजमोहन छबीले कहूँ,
परी घर घेरि तुम निधरक ऐसे हौ।
छाए घनआनँद रसीले रहौ दिनरैन,
दरसौ न दैया देखे उघरि अनैसे हौ ॥८८॥

जहाँ राधा-मोहन की केलि को कुलाहल ही
माच्यौई रहत बन बेलिन सरस है।
सुंदर सरोवरनि घाट पनघट भेंट,
नैन-सैन दैन-चैन चाहतो परस है।
बानक सुठौन सहजैं ही देखैं बनि आवै,
आनँद को अंबुद मनोरथ-बरस है।
दीठि चातकी ह्वै जौ लगै तौ सौंह आँखिन की,
आँखिन को फल ब्रजभूमि को दरस है ॥८९॥

छप्पय

छायौ सरस सुदेस, बिबिध सुख कौं बिस्तारत।
निरखे अमित उछाह, ताप तन मन को टारत॥
सब रितु साज-समाज, सदा जमुना-तट लहियै।
सुंदर स्याम सुजान, छटा याकी छबि कहियै।
अपनी मनि अनुपम अमल, राजत है सुखमा-सदन।
दंपति चातक जुगल हित, बृंदावन आनंदघन ॥९०॥

कबित्त

बृंदाबन सोभा नई नई रसमई गोभा,
कहत बनै न स्याम-नैन पहचानहीं।

राग। [८८] लोचैं = बिचारते हैं। [८९] सुठौन = सुंदर। [९१] गोभा =

राधिका-दरस को सुदेस आदरस याहि,
चाह्यौई करत जब जब जैसैं जानहीं।
ऐसे रंग-मूरति बसे हैं एक संग दोऊ,
रूप की मरीचैं घनआनँद-वितानहीं।
जमुना के तीर देखौ प्रगट दुरयौ है अनि,
निगम अगम ताहि लेखैंई बखानहीं ॥९१॥

ब्रज वृंदावन गिरि गोधन जमुन-तीर,
सुबस सुदेस पुर बन सुख-साधा को।
जाकी भूमि-भागहि सिहात हैं गिरीस ईस,
धूरि रसमूरि हरै दुख सब बाधा को।
एकरस बिहरत दोऊ महारस भीजे,
आनँद-पयोद प्रीति परम अराधा को।
स्याम के सरूप को कछुक निरधार होय,
तौ कछु कह्यौ परै अगाध प्रेम राधा को ॥९२॥

स्याम यामैं बसैं यह बसै स्याम हियैं सदा,
तामैं फिरि राधा बसें क्यौंऽब सो निहारियै।
यही वृंदावन देखौ प्रगट दुरयौ है एक,
मोहन की दीठि ईठि भएँ ही चिन्हारियै।
नैन बैन मनसा रमाय राख्यौ बड़भागी,
तिनही की कृपा को सु अंजन बिचारियै।
महा अचरज-धाम मोहिं ऐसैं दीसि पर्यौ,
दीसत न काहू बिन दीसें लाल-प्यारियै ॥९३॥

याहि दीसैं स्याम दीसैं दीसैं स्याम दीसै यह,
ऐसो वृंदावन कहौ कैसैं करि दीसई।

अंकुर, प्रस्फुटन, शोभा का विकास। मरीचैं = किरणैं। घन० = आनंद के बादलरूपी चँदोवे पर। [९२] गोधन = गोवर्धन। आनंद० = आनंद के घन।

दीसत दुर्यौ सो स्यामसुंदर-सुभाव लियैं,
हर्यौ मति हरै हरि हरि बिसे बीसई।
परैं तें परैं है भयो हाय यहै बृंदाबन,
राचैं रज जाचैं ईस हू से बकसीसई।
ताहि दौरे जात पाय लियौ है सबनि सूधौ,
मधुर त्रिभंगी जो लौं कृपा न परीसई ॥६४॥

बृंदाबन-माधुरी अचंभे सौं भरी है, देखैं
स्याम को अनूप रूप त्यौं ही याहि देखियै।
अंग-रंग-सग एक एक ह्वै रह्यौ सदाई,
तातैं भोगवती राधारानी अवरेखियै।
सुबन बन्यौ है सुख-सन्यौ है कालिंदी-कूल,
आनँद को घन रस-मूरति बिसेखियै।
देखत दुर्यौ है, अवनी पै अति ऊँचो आहि,
सरस कृपा ही तें परस-गुन पेखियै ॥६५॥

बृंदाबन पाइबे की गैल कौं गहै न जौ लौं,
पायहू गए तें रस या रस क्यौं पाइयै।
राधा-पिय-केलि की कलानि कौं सकेलि नीकें,
सुभर भर्यौ लै जौ लौं उर न बसाइयै।
रहनि कहनि एक टेक टकटकी ही सौं,
भानुजा-चरन-रज-आँखिन अँजाइयै।
निगम बिसूरि थाकैं पदई परम दूरि,
आनँद के अंबुद कौं थकि थकि धाइयै ॥६६॥

राधा हरि आरति मरोरि मींड़ि मारति है,
या विधि जीवई जिय-दसा करै औरई।

४] हर्यौ = हराभरा। बिसे० = पूर्णतया। बकसीस = प्रसाद, उपहार।

वन उपवन व्रज बाखर खरिक खोरि,
गिरि गह्वर उफनाति प्रेम दौरई।
कहा जानौं कैसी है कहा है दुहुँनि की लाग,
रंचक बिचारैं अति बाढ़त है बौरई।
रमन रँगीली भूमि आनँद को घन भूमि,
रमड़ि रमड़ि दरसत ठौर ठौरई ॥९७॥

सवैया

व्रजमोहन राधिका की रहठानि सदा अनुराग सुहाग भर्‌यौ।
कहि आवत क्यौं निरखेई बनै गिरि गोधन मैं जु कछू लै धर्‌यौ।
भरि भोवन नैन हियैं दिनरैन सहेटन भेटन टारि टर्‌यौ।
सु कलिंदी के कूल अनंदनि-मूल सनेह को देस है दीसि पर्‌यौ ॥९८॥

कवित्त

बिभाकर-कुँवरि तमालन की पाँति बीच,
बीचिनि मरीचैं जागि लागति जगमगी।
भावना भरनि हिंय, गहर भँवर परै,
एकरस राग धुनि रंगनि रँगमगी।
चातकी भई है चाहि आनँद के अंबुद कौं,
वन घन ढूँढ़ै रीझि डोलति डगमगी।
प्रेम की पसीजनि प्रवाह-रूप देखियत,
सदा स्याम के सिंगार-सार सौं सगमगी ॥९९॥

स्याम-अंग-संगिनी बिसाल-रस-रंगिनी,
अनूपम तरंगिनी कृपा सौं रही भोय है।

परीसई = स्पर्श करते। [९७] आरति = लालसा। बाखर = घर। खरिक = पशुओं के रहने का स्थान। खोरि = गली। रमड़ि = छाकर। [९८] रहठानि = निवास-स्थान। [९९] बिभाकर० = सूर्य की पुत्री, यमुना। बीचिनि = लहरौं

जमुना जननि मोदकारिनि महा उदार,
जग-ताप-हारिनि पुनीत तेरो तोय है।
तीर पर्‍यौ आनि दीन हीन जानि मानि लै री,
बिनती करत हाहा हठि हारि रोय है।
आनँद के घन सौं पपीहापन पालै क्यौंहूँ,
बासना मलीन मेरे अंतर को धोय है ॥१००॥

मोहन के बदन मिठास-भरी तानैं भिदि,
मीठियै लगति जब मिलै सब डाटि लै।
भोरी ब्रजगोरिन की लाज पाज तोरि तोरि,
गिलै करि देत खेद बाधा खाय आटि लै।
ऐसी बिसवासिनि बजाय बैर बाढ़ति है,
काढ़ति धरन तैं उपायनि उचाटि लै।
बाँसुरी की बाजनि बिराजै बन ब्यापक ह्वै,
देखौं गति जमुना की राखी राग पाटि लै ॥१०१॥

सवैया

हाथ चढ़ी हरि के जब तैं हरिबोई करै कछुवै न बिचारै।
हाथ कियौ मन सो धन हेली इतै पर हाथ कौं पाय पसारै।
लैहै कहा अब सोच महा परियै रहै गोहन साँझ सवारै।
मोहन की बिसवासिनि बाँसुरी तानन मैं बिष-बाननि मारै ॥१०२॥

रीति या चेटक ही सौं भरी धुनि मैं करै धीरज-दोहन बाँसुरी।
घेरि लै आनि बसावै बनैं ब्रजगोरिन के परी गोहन बाँसुरी।

मैं। सगमगी = सज्जित। [१०१] डाटि लै = डटकर चख लेती है (मीठी होने से)। पाज = तालाब का बाँध। गिलै० = निगल जाती है। आटि = डाट, रोक। बजाय = डके की चोट, कह बदकर। गति० = राग से पाटकर इस बाँसुरी ने यमुना की गति भी रोक रखी है। [१०२] हाथ० = हाथ में और

रीझि भिजै घनआनँद कौं मुँह लागि दहै हिय छोहन बाँसुरी।
हाथ लिये रहैं रैनदिनाँ मनमोहन की मन-मोहन बाँसुरी ॥१०३॥

बंसी मैं मोहन-मंत्र बजाय कै मोहि लईं बपुरी अबला सब।
जो कछु राग रच्यौ अनुराग सौं को बरनै रु सुन्यौ किनहूँ कब।
व्यापि रही चर थावर लै घनआनँद घोर घमंडन की भव।
कानन मूँदेऊ तैसियै बाजति क्यौं भरियै करियै सु कहा अब ॥१०४॥

कवित्त

पूरी लगी लाग राग-बस भई भली भाँति,
थकित चली है गति गही सुचि रलिका।
हरि बनमाली करि हरित भयौ है हियो,
कैसैं रह्यो परै खिली लालसानि कलिका।
चातकी सु है जु व्रजगोरी घनआनँद की,
इते मान तान-बान करी है बिकलिका।
कथनि कही न परै प्रेम-मतवारिन की,
काहू की न सुनी ऐसैं सुनी है मुरलिका ॥१०५॥

लाल पाग बाँधे, धरे ललित लकुट काँधे,
मैन-सर साँधे सो करन चित-छाय को।
जोवन झलक अंग रंग तकि रंक, छूटी
कुटिल-अलक-जाल जिय अरुझाय को।
गरे गुंजमाल उर राजत बिसाल नख-
सिख लौं रसाल अति लोनो स्याम काय को।
करत अधीर बीर जमुना के तीर तीर,
टोना भर्यौ डोलत ढुटौना नंदराय को ॥१०६॥

कुछ ले लेने के लिए पैर फैलाए हुए है (डटी है)। [१०४] थावर = स्थावर। भव = ध्वनि। [१०५] रलिका = क्रीड़ा। [१०६] मैन = मदन,

रसिया रँगीलो ब्रजमोहन छबीलो छैल,
राधा-रूप-आसव छक्यौ रहै महा अछेह।
बाँसुरी बजाय राग पूरै अनुराग ही को,
ताननि घुमाय घूमै पुलकि पसीजै देह।
नेही-सिरमौर और कौन ये सवाद जानै,
आनँद को घन चोप चातक ह्वै भूल्यौ गेह।
सुनि री सहेली तू हितू है समझाय हाहा,
हौं तौ हारि परी पै घटै न कहूँ याको तेह ॥१०७॥

राधा-रूप-साधा साधिबे की महा चिंतामनि,
गोरी गाय चायनि च्वै साँवरो सम्हारई।
गैंवड़े आय टेरत है, नेह सौं निबेरत है,
जातें भरि पावत है भाव भरि ग्वारई।
धौरी ढार ढौरी लै बुलाय बालि सौंपि देत,
काजर कुरंगनैनी चोपनि चितारई।
दोहन करत ब्रजमोहन मनोरथनि,
आनँद को घन रंग-झलनि झमारई ॥१०८॥

सवैया

जब तें डफ-बाज सुनी सजनी तब तें मति कौं कछु बौरई सी।
मन के पन की गति जोऽब लखौं रितु और भई रति औरई सी।
मचिहै जब फाग कहा करिहौं अब हो करी कान्हर खौरई सी।
घनआनँद छावत गारिनि गावत आवत पारत रौरई सी ॥१०९॥

रोक्यौ रहै अब क्यौं करिकै मिलि खेलनि हौंस को ओज बढ्यौ है।
राख्यौ दुराव दुराइ हियैं अनुराग सु बाहिर आनि कढ्यौ है।

काम। छाय = छेद। ढुटौना = पुत्र। [१०७] अछेह = अपार। तेह = तीखापन। [१०८] गैंवड़े = गाँव की बस्ती के निकट। निबेरत = पृथक् करता है। धौरी = सफेद गाय। चितारई = लगाती है। झला = वृष्टि। झमारना = झाँवरा कर देना। [१०९] खौरई = खलभली। रौरई = शोरगुल, कोलाहल।

साँवरे छैल गम्वारनि गारिनि गाय कै दोहरा एक पढ्यौ है।
चोपनि चौगुनियै पुट लागिहै आजु तौ सौगुनो रंग चढ्यौ है ॥११०॥

कवित्त

रुपे हैं गुपाल ग्वाल-मंडली लगौंहीं संग,
सजे खेल साजनि सौं उपमा न सरसी।
इतै राधा नागरि बिनोद बिजै मूरति,
सहेलिन के जूथ फूली रूप-कंज-सरसी।
धूँधरि-धमारि कीच माची कही परै कैसैं,
कोटि काम कटक कै धसकै धौंसर सी।
आनंद के घन की गरज हो हो बोलनि मैं,
होति है परसपर पैजनी-पसर सी ॥१११॥

कान्हर खिलार मोद-मूरति उदार रूप,
जोवन को मतवार होरी-खेल खग्यौ है।
अवसर सरस बखान आय खेल माँड्यौ,
दरस के फल ताको उमँगनि पग्यौ है।
कहा कहौं कठिन दुलार भरी भावती के
रोम रोम राग भाग फाग जगमग्यौ है।
सखिन समाज दामनीन पुंज फैलि परे,
आनँद के घन पै विनोद-झर लग्यौ है ॥११२॥

खेलत खिलार गुन-आगर उदार राधा,
नागरि छबीली फाग राग सरसति है।
भाग-भरे भावते सौं औसर फब्यौ है आनि,
आनँद के घन की घमंड दरसति है।

---

[११०] पुट लगना = रंग चढ़ना। [१११] उपमा० = उपमा स्फुरित नहीं हो रही है। सरसी = छोटा तालाब। धसकै० = फैला रही है। धौंसर = धूलि

औचक निसंक अंक चाँपि खेल-धूँधरि मैं,
सखिन त्यौं सैननि ही चैननि सिहात है।
केसू रंग वोरि गोरे करि स्याम सुंदर कौं,
गोरी स्याम-रंग बीच बूड़ि बूड़ि जाति है ॥११३॥

सवैया

घनआनँद प्यारे कहा जिय जारत छैल ह्वै फीकियै खोरनि सौं।
करि प्रीति पतंग को रंग दिनाँ दस दीसि परै सब ठौरनि सौं।
यह औसर फाग को नीको फब्यौ गिरिधारी हिले कहूँ टौरनि सौं।
मन चाहत है मिलि खेलन कौं तुम खेलत हौ मिलि औरनि सौं ॥११४॥

बात कही उन रातिन की अब ही तैं कहौ दिन कैसें बितैयै।
चातकी ह्वै घनआनँद ओर चकोरी भएँ ब्रजचंद चितैयै।
बाढ़ि परी अभिलाष-नदी अति, कौन बनाव की नाव बनैयै।
चीर लिये सु हिये हरि हेली दिये न दिये घर लै कहा जैयै ॥११५॥

मित्र के पत्रहि पावत ही उर काम-चरित्र की भीर रची है।
सीस चढ़ावति आँखिन लावति चुंबन की अति चोप मची है।
हाय कही न परै हित की गति कौन सवाद अचौनि अची है।
छाती सौं छ्वावत ही घनआनँद भीजि गई दुति-पाँति नची है ॥११६॥

['घन-आनंद' से]

पिय को मन है चलिबे कौं उठ्यौ जिय बैठी यहै न सह्यौ परिहै।
चित तौ चपट्यौ तिन जात लियैं यह बावरो कैसें गह्यौ परिहै।
घनआनँद पावस आय लगो बिन धीरज क्यौं निबह्यौ परिहै।
करिहौ सु कहा कहि री सजनी बदरान लखैं न रह्यौ परिहै ॥११७॥

का आवरण। [११२] खग्यौ० = लगा है। [११४] केसू = किंशुक, पलाश। [११५] खौरनि = चंदन का मस्तक पर लगा टीका। टौर = घात, दाँवँ। [११६] अचौनि = आचमन, पीना। [११८] अवासे = आवास, घर। बिरहा० =

भई बन-बेलिन की गति और सुहाने ते कुंज भयानक भासे ।
जे रूख भजावत भूख हुते तेइ दीसत हैं जियरान के प्यासे ।
हिये सियरात मिले घनआनँद लौटत ओटत हाय अवासे ।
बसैं लगि काहि सखी बिरहा ब्रज हाथ कियौ किधौं पाय-निकासे ॥११८॥

धनि वै बन-बेलि जिन्हैं परसौ पुहुपावलि गूँथि गरैं सु धरौ ।
फल लागि रह्यौ सुखमूल तिन्हैं जिनके फल लै रसपान करौ ।
घनआनँद सींचत डोलौ सबै बड़भाग की रासि रसीली भरौ ।
हम सूखतिं ये पन-प्यास-भरी ब्रजजीवन जीव की जानि ढरौ ॥११९॥

पल ओट भए पन-प्यास-भरी, अकुलानि महा हिय पीसति है ।
तुम दीसि परौ न इते पर प्यारे तिहारियै आवनि दीसति है ।
घनआनँद प्रान चितौनि हमारी हमैं दुख-बान कसीसति है ।
नित नीके रहौ हित-मूरति जू मनसा दिनरात असीसति है ॥१२०॥

ब्रजमोहन रूप-छके मन नैन महा मतवार प्रमानियै ते ।
घनआनँद भीजे रहैं निसिद्यौस पपीहन लौं अनुमानियै ते ।
उर आनियै ते जिय जानियै ते सनमानियै ते सुखदानियै ते ।
जो दुराव-लखाव न जानत है इकसार सनेह बखानियै ते ॥१२१॥

आवैं कहूँ मनमोहन मो गली पूरब:भागनि को ब्रत ऊजै ।
हाय कछू न बस्याय तबै दुरि देखिबो दूभर, छाँह क्यौं छूजै ।
माँगति हौं बिधना पै बड़े खन, जौ कबहूँ जिय आसहि पूजै ।
चौथि को चंद लखैं ब्रजचंद सौं लागै कलंक तौ ऊजरे ह्वजै ॥१२२॥

काहे कौं सूल सहौं सजनी अरु क्यौं हियराहि उदेग दहौंगी ।
जीवन-मूल मिले घनआनँद सो सुख काहू सौं कैसैं कहौंगी ।

उन्होंने यहाँ से पैर क्या निकाले ब्रज को विरह के हाथ सौंपते गए । [१२०] कसीसति० = खींचती है । मनसा = इच्छा । [१२२] ऊजै = पूर्ण होता है । बड़े० = ब्रह्मा के से बड़े क्षण । ऊजरे० = गौरवान्वित होऊँ । [१२३] कुटीचर =

जोवन बैर पर्यौ है कुटीचर काम पै वाहु अनेक चहौंगी।
लैहौं हियैं लपटाय पियैं अरु हौं पिय के हिय लागि रहौंगी ॥१२३॥

आनि मिलौ दुरि आपुनि गौं फिरि जारत जू जियराहि बिछोहन।
कौन सवाद पर्यौ तुमकौं चित चाहत ही करि लेत हौ दोहन।
चोपनि छावत हौ घनआनँद आय वढ़ावत हौ इत छोहन।
जानि परे गुन रावरे नाम के मोहन जू तनकौ कहूँ मोह न ॥१२४॥

व्रजमोहन गोहन छाड़त नाहिं चढ़े चित बैरहि लेत रहैं।
दिन-रैन समीप, बियोग धौं कैसो, कहा जौ दिखाइ न देत रहैं।
झर लाय रहे घनआनँद यौं नित प्रान-पपीहा अचेत रहैं।
भरि हेत रहैं करि चेत रहैं, तजि खेत रहैं रसमेत रहैं ॥१२५॥

पाय परै गति रावरी कैसैं मिलैं अमिलौ रहि मोहत मो ही।
जीवन हौ जग के घनआनँद या बिधि क्यौं तरसावत मोही।
लालसा लागी रहै मिलिबे की मिलैं ढँग ये घर-माँझ बटोही।
मोहन जू बसि एकहि बास कहौ रहौ काहे तैं ऐसैं अमोही ॥१२६॥

अनचाहेऊ चाहैं खिजेऊ हँसैं, जगि बोले बिना दुख-नींद खगैं।
बिन काज ही हार से होत फिरैं, जितहीं चलियै तित संग लगैं।
घनआनँद यौं घुरि घेरि लई मुरली-सुर मैं रसबाद जगैं।
कहि क्यौं मरियै करियैऽब कहा नियरेई रहैं अति दूर भगैं ॥१२७॥

अति तीखे परेखनि सौं व्रजमोहन नातौ नहीं कटि जायहै जू।
घनआनँद प्रान-पपीहा-जिवावन आप कहा घटि जायहै जू।
मन कौन धरे जु बियोग की आँचनि ताचि तनौ लटि जायहै जू।
कबहूँक तिहारी औसेर दरेरनि हाय हियौ फटि जायहै जू ॥१२८

कपटी। [१२४] छोह = ममत्व। [१२५] हेत = प्रेम। रसमेत = रसमय
[१२८] ताचि = पककर। तनौ = शरीर भी। लटि० = क्षीण हो जायगा

फागुन मैं उनयौ घनआनँद हेरि हरी है वियोग की तौंसनि।
छैल खिलार महा व्रजमोहन खेलत भावनि चोपनि सौंसनि।
गोरिनि घात के घेर पर्यौ रस चाव बचाव टर्यौ कछु गौंसनि।
दाव बन्यौ सु गहाव भएँ हियरा भरि आँखि अँजैवे की हौंसनि ॥१२६॥

सौंधे सनी अलकैं बगरीं मुख जोबन-जोन्ह सौं चंदहि चोरति।
अंगनि रंग-तरंग बढ़ी सु किती उपमानि के पानिप ढोरति।
मोहन सौं रस-फाग मची सु भली भई हौं कब तैं ही निहोरति।
आनँद को घन रीझनि भीजि भिजै पठई कहा चीर निचोरति ॥१३०॥

खेलत फाग फिरै जित ही तित बातनि घातनि बंकबिहारी।
छैल महाछल सौं बल सौं कल सौं गल सौं लपटौ बनवारी।
आनँद के घन गौं उनए सरसौ बरसौ तरसावत भारी।
रंग तिहारे निहारे अनेक अनूपम एक हौ लाल खिलारी ॥१३१॥

कवित्त

सींचे रस-रंग अंग फूलि फैलि छवि दवि,
देखि देखि मालती-लतानि उकसति है।
आछे काछे मधुप-कुमार कोटि ओटि कीजै,
अलक छबीली मन छूटियौ कसति है।
कहा कहौं राधे घनआनँद पिया के हिय,
बसि रसि जैसी मेरी आँखिनि ससति है।
कौन धौं अनूठो अमी प्यावै जिय ज्यावै भावै,
ए री तेरी हसनि बसंत कौं हसति है ॥१३२॥

गलिन मैं छली, रली तिनहीं सौं चली भली,
धोखे बावरे ह्वै हियरा रे परतीति है।

औसेर = प्रतीक्षाजन्य वेदना। [१२६] गौंसनि = घात से। [१३०] सौंध = सुगंध से। पानिप = पानी, शोभा। ढोरति = बहा देती है। [१३२] ओटि० =

आजु लौं लला हो काहू बाम सौं न काम पर्‍यौ,
देती जो सिखाय होरी खेलिबे की रीति है।
गाल क्यौं बजावौ घनआनँद डरावौ कहा,
आवौ गावँ ग्वैंड़े जानि परै हारि जीति है।
आन हमैं बाबा बृषभानु की अरैं न टरैं,
गई करैं धरैं तौ अबै ही सबै बीतिहै ॥१३३॥

कियौ है कहा री तैं बिहारी कौं निहारी जब,
तीखी अँखियानि हियो बँध्यो न कसरि कै।
पिचका लियेंई रहे रह्यौ रंग तोहि देखैं,
रूप की घसक लागें थके हैं थसरि कै।
तोहि बनि आई सु तौ तोहि बनि आवै राधे,
बिधना बनाई तुहीं सकै कोऽब सरि कै।
कैंधि घनआनँद कौं भिजयौ हसनि ही मैं,
हाथ कियौ लालहि गुलालहि मसरि कै ॥१३४॥

सवैया

चारिक द्यौस रचे चिकनाय कै दीसत नेह-निबाहन-रूखे।
भूमि झमारहि दै घनआनँद राखत हाय बिसासनि सूखे।
छैल छबीले भरे छल-छंद ढरौ ढब ही अनदोख ह्व दूखे।
रावरे पेट की बूझि परै नहीँ रीझि पचाय कै डोलत भूखे ॥१३५॥

बसि नैन हिये दुरि दूरि लसौ सुखदैन सदाई सहायक हौ।
कितहूँ दरसौ गति को समझै मन की, तुम तौ पनपायक हौ।

छिपाने पड़ते हैं। ससति० = समा जाती है। [१३३] गई० = पीछे की बातें न भूल जायँ। [१३४] थसरि० = शिथिल होकर। सरि = बराबरी। मसरि = मसल-कर, मलकर। [१३५] झमार = वृष्टि का झौंका। अनदोख० = (रूप में) निर्दोष होकर भी (मन में) सदोष हो। रीझि० = मेरी रीझ को पचाकर भूखे घूमते हो। मेरी रीझ की तो चिंता नहीं करते, पर दूसरों से मिलने-जुलने की ताक में

जित भूमि झरौ तित भाग भरौ घनआनँद जू रसनायक हौ।
ब्रजमोहन छैल छबीले सुनौ कहियै तौ कहा सब लायक हौ ॥१३६॥

मुख देखि जियौं अनदेखे मरौं मुख चाहि मरौं तौ जियौं सु करौ।
ब्रजजीवन आनँद के घन होय न दीन पपीहनि प्रान हरौ।
झर पै झर लाय दवाइयै लाय बलाय लै पाय परौं कि ढरौ।
अब औसर है सुखदैन सुनौ इक बार जिवाइ कै जीबौ करौ ॥१३७॥

सखि जौ लौं गुमान हो जोबन रूप को कान्ह सौं तौ लगि मान सज्यौ।
घुरि घेरि कै कानि बढ़ोरि कै लाजहि नीरस नेम लै प्रेम तज्यौ।
घनआनँद बाँसुरिया सुर छाकि हिये तें सबै डर भीजि भज्यौ।
अब डारतो मारि सयान हठी जौ पै लेती बौरानि जिवाय न ज्यौ ॥१३८॥

सब ओर तें ऐंचि कै कान्ह किसोर मैं राखि भलैं थिर आस करैं।
ब्रजनाथ-प्रियानि कृपानि समोय सदा मन कौं अनयास करैं।
घनआनँद छाय रहे निसिद्यौस मनोरथ रास-बिलास करैं।
ब्रज-बीथिनि भोर निसीथिनि सो उनमाद-सवाद सौं बास करैं॥१३९॥

सीतल सुंदर मोहन-मंदिर कंदन-केलि-कलानि बिसेखौ।
गोबिंद गोधन ग्वारनि कौं घनआनँद छावत भावत देखौ।
फूलन कै फल कै दल कै जल कै ललकै भरि भाव असेखौ।
लै मन हाथ रहै हरि को हरि-हाथ रहै गिरिनाथ सु लेखौ ॥१४०॥

कवित्त

कहाँ लौं तिहारे गुन गुनियै गसीले स्याम,
सुखिया सुतंतर हौ अंतर पिराय कै।

रहते हो। [१३६] पन० = पन को पी जानेवाले। [१३७] लाय = आग। [१३८] बढ़ोरि = बढ़ाकर। सयान = चतुरता। ज्यौ = जी। [१३९] थिर० = आशा को स्थिर कर लें। अनयास = श्रमरहित, स्वस्थ। निसीथिनि० = रात्रि। [१४०] कंदन = मूल। असेखौ = अखंड। गिरिनाथ = गोवर्धन। लै० = मन

भोर भएँ डोलत रसीले ब्रजमोहन जू,
कबहूँ न कहूँ नेह थाप्यौ है थिराय कै।
मीठी मीठी बातैं कहि दैया बिष भोवत क्यौं,
निधरक बैठे मन मोहन फिराय कै।
बरसौ बिसासी घनआनँद कहा है बस,
हमैं यौं जरावौ हाय औरनि सिराय कै ॥१४१॥

गति लेत प्यारी न्यारी न्यारीयै लहक जामैं,
लोने अंग रंगनि लगै निकाइयै झरी।
मुसकानि-आभा-फैल छाकत छबीलो छैल,
सील-भीज चाहनि रसीली बरुनी हरी।
मुरली बजाय कै नचावै रिझवार प्यारो,
सुरति लगौंही डटि भौंह भेद सौं भरी।
ढोरक पै ललिता ललित आँगुरीनि ढोरै,
छायौ घनआनँद चटक चोख है परी ॥१४२॥

कोप बिष-भोप सुधा सींचत निहारनि मैं,
बिषम अन्यारे प्यारे लागैं पैठि प्रान हैं।
पानिप सौं पूरे जोति जगैं, चकचौंधी होति,
उज्जल ढरारे हरैं मोतिन के मान हैं।
घनी बंक बाँकनि की झाँकनि झुकौंहैं घन-
आनँद उमहि दाबे धीरज सयान हैं।
छैल ब्रजमोहन टरै न परि गोहन ये,
जोहन तिहारे करैं ऊलट उठान हैं ॥१४३॥

मोहन अनूप बने रूप ठगी आँखैं इतै,
इनकी उरझ की छबीले येई साखियै।

अपने हाथ मैं हरि को ले और हरि के हाथ मैं गोवर्धन हो, मन गोवर्धनधारी का ध्यान करे।[१४१] गसीले = गाँस से भरे, छली। अंतर = चित्त। [१४२] ररी = रटती है, व्यक्त करती है। ढोरक = ढोलक। ढोरै = चलाती है। चोख = तीव्र।

पीवति अघाय प्यास बाढ़िये रहति महा,
अहा अचरज कहौ कहा कहि भाखियै।
जानमनि जीवन उदार रिझवार छैल,
जसुधा-कुँवार गुन गहि अभिलाखियै।
चोप चातकी ह्वै भई आनँद के घन हौ जू,
सुदरस-रस दै रसीले रस राखियै ॥१४४॥

लगैगी तुम्हैं हूँ, कहूँ कबहूँ सनेह-चोट,
मेरी सी दुहेली पीर अंतर पिरायहौ।
कहा जानौं ऐसो दिन होयगो कबै धौं दैया,
विषम बिछोह द्यौसरातिहि बितायहौ।
छैल ब्रजमोहन छबीले घनआनँद जू,
मोहिं फिरि आपनै हू दुखनि दुखायहौ।
तातैं तुम सुखी रहौ हौं ही दहौं, कहौ कब
लपटनि ताती छाती लपटि सिरायहौ ॥१४५॥

कौनैं हरि देव सो बतायो हरि देव हाहा,
नावँ हरिदेव पै हियौ हू हरि लेत हौ।
गिरिवर-कंदरानि मंदिर में बसौ लसौ,
साँवरे सलोने साधु से दिखाई देत हौ।
आनँद के घन झूमे रहत सदाई इतै,
घेरौ अबलानि दान माँगौ धरि हेत हौ।
गायनि चरावत हौ चायनि चतुर छैल,
भरे भेद-भायनि सौं दायनि समेत हौ ॥१४६॥

सवैया

लहाछेह कहा धौं मचाय रहे ब्रजमोहन हौ सुख-नींद भरे हौ।
मिलि होति न भेंट, दुरे उघरौ, ठहरैं ठहरानि के लाले परे हौ।

---

[१४३] चाँक० = हाथ पर पहना जानेवाला एक गहना। [१४५] दुहेली = दुःखद। [१४६] हरि देव = हरण करके किसे दे देते हो। नावँ० = नाम से तो

बिछुरैं मिलि जात मिलैं बिछुरैं यह कौन मिलाप के ढार ढरे हौ।
घनआनँद छाय रहौ नित ही हित-प्यासनि चातक जात मरे हौ॥१४

छप्पय

अच्छर मन कौं छरै बहुरि अच्छर ही भावै।
रूप अच्छरातीत ताहि अच्छरै बतावै॥
अच्छर को यह भेद कौन जानैं बिन मानै।
अच्छर हू मैं मौन मिलै सारदा सु ठानै॥
अच्छर मौन सवाद-रस आनँदघन बरसत रहै।
तत्वबोध बौरानि मैं अच्छरगति अच्छर लहै॥१४८॥

ब्रजबासिन की सहज होय जैं प्रापति मन कौं।
पैहै आस बिसास राखि पालै हित-पन कौं।
नितलीला-रगमगे नैन थाकनि-सँग डोलै।
जमुन-तीर तरु-बेलि केलि-रस झेलि कलोलै।
अहोभाग कहियै कहा आनँदघन अभिलाष उर।
क्यौं लगै फूल आसा-लतैं, फूल-सहित ऐसो सुघर॥१४६॥

छंद

ब्रजमोहन जू मन लागि पर्यौ जो लागि परौ ते लेखै है।
नाहीं तौ हाहा जनम निगोड़ो यौं ही जात परेखै है।
जिन तरसावौ रस बरसावौ जग छायौ सुजस विसेखै है।
आनँदघन प्यारे प्रान-पपीहै पल पहार बिन देखै है॥१५०॥

तीखी तरल सोच हूकनि हिय हाय हाय कौ लौं छनिहै जू।
धुनि धुनि सीस दीन जियरा पुनि कब लौं दुखनि हारि हनिहै जू।

हरकर 'देने'वाले हो पर हृदय तक को हर लेनेवाले हो। [१४७] लहाछेह = शीघ्रता। [१४८] अच्छर = (अक्षर) वर्ण; अक्षरब्रह्म। छरै = छलता है।

ऐसैं ही ऐसैं आनँदघन कैसैं तुम्हैं बिना बनिहै जू।
औधि अनेक भाँति बितई हरि अंत लेत फिरि को गनिहै जू ॥१५१॥

चौपाई

जो सवाद आवै हरि रस को। मन तें मिटै सोच को धसको।
मिलै सजीवन बाढ़ै चसका। आनँदघन झर लगै दरस को ॥१५२॥

बरवै

श्री बृंदावन आवै सो मन और।
ऐसैं भटकै मन की केतिक दौर ॥१५३॥

महाबरवै

सुनहु लड़ैती राधे कीजै करुना-डीठि।
मन सनमुख करि लीजै दीजै कब लौं पीठि ॥१५४॥

सोरठा

जासौं अनबन मोहि, तासौं बनक बनी तुम्हैं।
हियो परेखनि पोहि, कहा झुलावत गुन-भरे ॥१५५॥

दोहा

व्रजवासिन की अगम गति क्यौं लखि सकै न कोय।
नंदराय के बास बसि, जौ व्रजवासी होय ॥१५६॥
व्रजमोहन सुख नित नयो, तिहूँ समय रसरूप।
बिन बूझे मति सूझई, अतुलित प्रेम अनूप ॥१५७॥

—['श्री शंभुप्रसाद बहुगुना' से प्राप्त]

---

[१४९] जौं = यदि। [१५१] छनिहै = बँधा रहेगा। [१५५] पोहि = गुहकर।

स्फुट

'कान्ह' की रट]　　　　(२७)　　　　[कल्याण

कान्ह कान्ह की रट लागी मेरी रसना कैँ।
जब तैँ बनवारी वन गए तब तैँ ये अँखियाँ इकटक उत ही कौँ झाँकैँ।
मुरली-धुनि सुनिबे की साध दुसाधन प्रान बसेरो कानन धाँ कैँ।
वे आनँदघन इत चित-चातक को जानै कित कौँ धावैँ औ आवैँ
　　　　　ह्वै अब मारग सूधे बाँ कैँ॥

विरहिणी]　　　　(२८)　　　　[कान्हरा

तेरे नाल लगी हो ज़िंद निमानी।
कित बल कूँ काँ कोई नहिँ सुनदा साडी दरद - कहानी।
जो सुन वेखाँ तोसी जीवाँ मान न कर वे गुमानी।
आनँदघन हूँ तू तरसावी वारी वारी ओ दिलजानी॥

टेर]　　　　(२९)　　　　[ललित

तुमकौँ टेरत हौँ कहाँ न।
श्री बृंदाबन-ओर जात है रूप-रासि की खाँन।
टेरन के लगि हेरन लागी हेरन लागि हेराँन।
आनँदघन रसमत्त पपैया ज्यौँ जल बिन मुरझाँन॥

लगन]　　　　(३०)

लागि रह्यौ मन राधाबर सौँ, और कहँ कछु और उपर सौँ।
दिन रतियाँ अँखियाँ आगे मेरी ठाढ़े रहैँ कछु रूप सुघर सौँ।
आनँदघन प्रभु लागे नेहा प्रेम रँगौंगी मैँ गिरिधर सौँ॥

---

[२७] दुसाध = दुस्सह उत्कंठा। धाँ = ओर। [२८] नाल = लिए, वास्ते। ज़िंद = ज़िंदगी। निमानी = अमानी। बल = ओर। साडी = हमारी। वेखाँ =

(३१) [मालव

आइयै आइयै लालन, अंग संग रंग के
तरंग उपजै री जव सब निसा जगाई।
सव ही कौं मनमथ, सब तिय जानति नीके कै रस-वस आनँदघन
सौतिन गाजनी गाई ॥
—['व्रज भारती' से]

देखूँ। [२६] पपैया = पपीहा। [३०] उपर० = ऊपर से। [३१] गाजनी = गर्जन, हर्ष।

बहोत्तरी

अभिलाष] (१०७) [बिलावल

मेरे ए प्रभु चाहिये नित्य दरिसन पाऊँ।
चरण-कमल सेवा करूँ, चरणे चित लाऊँ।
मन-पंकज के मोल मैं, प्रभु - पास बिठाऊँ।
निपट नजीक हो रहूँ मेरे जीव रमाऊँ।
अंतरजामी आगले, अँतरिक गुण गाऊँ।
आनँदघन प्रभु पास जी मैं तो और न ध्याऊँ॥

प्रिय निरंजन] (१०८)

निरंजन यार मोय कैसे मिले।
दूर देखूँ मैं दरिया डुंगर ऊँचे बादर नीचे जमी यूँ तले।
धरती मैं घडुता न पिछानूँ अगनि सहुँ तो मेरी देही जले।
आनँदघन कहे जस सुनो बाताँ ये ही मिले तो मेरो फेरो टले॥

शरीर भर्त्सना] (१०६) [आसावरी

अब चलो संग हमारे, काया अब चलो संग हमारे।
तोँये बहोत यत्न करि राखी,काया अब चलो संग हमारे।
तोँये कारण मैं जीव सँहारे बोले जूठ अपारे।
चोरी करी परनारी सेवी, जूठ परिग्रह धारे।

---

[१०७] नजीक = नजदीक, निकट। अँतरिक = आंतरिक। [१०८] डुंगर = पहाड़। जमी = भूमि। घडुता = घटनत्व, गढन। जस = यशोविजय।

पट आभूषण सुंघा चूआ अशन पान नित न्यारे।
फेर दीने खटरस तोंये सुंदर, ते सब मल करि डारे।
जीव सुणो या रीत अनादि, कहा कहत बारंबारे।
मैं न चलूँगी तोंये सँग चेतन, पाप पुण्य दो लारे।
जिनवर नाम सार भज आतम, कहा भरम संसारे।
सुगुरु वचन परतीत भए तब, आनँदघन उपगारे॥

रहस्य] (११०) [विहाग

कंथ चतुर दिलज्ञानी–हो मेरो कंथ चतुर दिलज्ञानी।
जो हम चहेनी सो तुम कहेनी, प्रीत अधिक पीछानी।
एक बुंद को महेल बनायो, तामेँ ज्योत समानी।
दोय चोर दो चुगुल महेल मेँ, बात कच्छु नहि छानी।
पाँच अरु तिन त्रिया जो मंदिर मेँ, राज्य करे रजधानी।
एक त्रिया सब जग वश कीनो ज्ञान-खड्ग-वश आनी।
चार पुरुष मंदिर मेँ भूखे, कबहूँ त्रिपत न आनी।
दश असली एक असली बूजे, बूजे ब्रह्मज्ञानी।
चार गती मेँ रुलता बीते, कर्म की किणहु न जाणी।
आनँदघन इस पद कूँ बूजे, बूजे भविक जन प्राणी॥

(१११)

तज मन कुमता कुटिल को संग।
जाके सँग तैं कुबुद्धि उपजत है, पड़त भजन में भंग।

०९] परिग्रह = दान। सुंघा = सुगंध। चूआ = चोवा। लारे = पीछे। उपगार = उपकार। [११०] कथ = कंत, पति। छानी = छिपी। बुंद =

परिशिष्ट

कौवे कूँ क्या कपूर चुगावन, श्वानही न्हावत गंग।
खर कूँ कीनो अरगजा लेपन, मर्कट आभूषण अंग।
कहा भयो पयपान पिलावत, विषहु न तजत भुजंग।
आनँदघन प्रभु काली काँबलियाँ चढ़त न दूजो रंग ॥*

—['आनंदघन-पद-संग्रह' से]

वीर्य । महेल = शरीर । रुलता = भटकता । भविक = भावुक, भक्त ।
[१११] खर = गधा । मर्कट = बंदर ।

* यह पद 'सूरदास' का है। मिलाइए—'सूरसागर', वेंकटेश्वर प्रेसवाला संस्करण १।२११ ।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३	१७	और	औ
४१	९	अँगार	अँगारनि
		निमगारि	मगारि
४१	२३	निमगारि	मगारि
४३	२	साधि	सोधि
४५	२०	देखि	देखी
४६	५	हरतार	हटतार
४८	२८	सिधि	रिधि
५१	४	असा	आसा
५४	५	चित-चाव	वित चाव
५७	३	प्यारे	प्यारी
६६	२६	देखना	देखा
६९	२०	सादर	आदर
७१	११	छबि	छकि
७१	१७	मीत	मीच
७१	१८	छटा न	छटान
८०	१९	रिहोरत	निहोरत
८२	२८	लहराते	लहलहाते
८५	२४	अपट	कपट
८७	६	भोगलात	-भोग जात
८९	१	अवसर	औसर
९०	२६	अत.पुर	राधा का जन्म-स्थान

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९६	२१	व्यर्य	व्यर्थ
९६	२२	रौंका	टौंका
१०२	१९	प्यारे	प्यार
११०	१५	मनि विन्नु	मन बिनु
११०	२७	सातिकत्त्विक	सातिक
११०	२७	साभाव	सात्विक भाव
११७	१५	छार	छीर
१४१	२२	साधन दैन	साधन लैन
१४६	१५	जीव	जीभ
१४६	२२	चिरस्थायी	चिरस्थायी या आग
१४७	१०	प्रात	प्रान
१४७	२०	धारि	धरि
१४८	७	तक	तैं
१४९	१०	घरनि	घरनि
१५०	२१	ललल	ललक
१५१	१०	छलताई	छैलताई
१५१	२०	कौं	धौं
१५२	१	आरति	गारति
१५३	१८	की	को
१६०	२४	झीना झपटी	छीनाझपटी
१६८	८	मन	तन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६८	१०	अमीत	अनीत
१७१	६	वधिक	बधिर
१७६	१३	अरिल्ल	अरल
१८२	१	वेपन	वेखन※
१८४	१८	वरन	चरन
२२४	१९	प रस्त	परस्त
२६०	२०	मीठ	रस = मीठा
२६४	२४	मंदीर, वधावा	मर्दल वाजा
२६४	२५	(मंदीर)	मर्दल
२६६	८	निकसत	निकसन
२६८	४	मैंटन	भैंटन
२९४	२६	धूम	ऊधम
२९४	२७	धूष्ट	धृष्ट
३०४	६	झटपत	झपटत
३०८	१४	नन्दबानी	नकबानी
३१५	१७	निहूँरै	बिहूँरै
३३६	१७	किय	किम
३४९	२६	अपू	अप्
३४९	२६	तेज,अग्नि	तेज (अग्नि)
३५८	१	सवमयी	सर्वमयी
३७४	२४	नोक	बोक
४०४	११	मिलाई ॥	मिलाई ॥※
४०४	१८	गावे ॥※	गावे ॥
४२४	२२	अपनी मनि	अवनीमनि
४३०	१३	वालि	वोलि

सूचना

(१) मात्राओं के टूटने से होनेवाली अशुद्धियों का उल्लेख वृथा है।

(२) पृष्ठ १४८ पर पदसंख्या २७ के उपरांत किसी किसी प्रति में ये दो चरण और मिलते हैं—

यही आवै अजू प्यारे अँदेसौ।
रह्यौ पहचानि को ही मैं न लेसौ॥